3

नाडी

त्वचा के रोग
(Diseases of the Skin)

त्वचा की रचना :-

त्वचा, वहिश्चर्म (Epidermis) तथा अन्तश्चर्म (Dermis या Corium) इन दो स्तरों से बनी हुई है। इनमें से बहिश्चर्म केवल सेलों की कुछ तहों से बना है, तथा उसमें रक्तवाहिनियां नहीं होतीं। करतल तथा पादतल में यह स्तर अति स्थूल और कठोर होता है। वहिश्चर्म के सबसे अन्दर की तरफ स्तम्भाकृति (columnar) सेलों की स्तर को चर्म जनक स्तर (Germinal Layer) कहते हैं, क्योंकि इस स्तर के सेलों के विभाजन (Mitosis) से वहिश्चर्म उत्पन्न होता है। इस स्तर के कुछ एक शाखाओं वाले सेलों के जिन्हें Melanoblasts कहते हैं Cytoplasm में त्वचा के रंग (Melanin) के दाने उत्पन्न होते हैं। Tyrosine नामक अमीनोएसिड से Tyrosinase की उपस्थिति में इस रंग की उत्पत्ति होती है। Ultra Violet किरणों से Tyrosinase अधिक क्रियाशील हो जाता है।

इस चर्मोत्पादक स्तर के बाहिर गोलाकृति या बहु (cuboidal) पार्श्वीय सेलों से बना वहिश्चर्म का प्रधान एवं स्थूल स्तर होता है जिसे श्लेष्मिक स्तर (Mucus Layer) कहते हैं। इसके सेल परस्पर कंटकाकृति प्रवर्धनों से जुड़े रहते हैं। इसलिये इसे कण्टकी सेलों की तह (Prickle Cell Layer या Retemalpighii) भी कहते हैं। इन सेलों के बीच बीच में सूक्ष्म लसिका वाही स्रोतें (Lymphchannels) होते हैं जिसमें लसीका के दाने तथा रंग के दाने (Pigment Granules) भी रहते हैं।

इस श्लेष्मिक स्तर के बाहिर तकुए के आकार के सेलों की (2-3 आती सेतनी) एक तह होती है जिनके अन्दर प्रोटोप्लाज़्म Eleidin (जो Keratin) के दानों के रूप में होता है जिससे इसे Granular Layer कहते हैं। इसके बाहिर बिना मींगियों (nuclei) का एक श्वेत वर्ण स्तर होता है। जिसे Stratum Lucidum कहते हैं। इन सेलों का Eleidin एक शीशे के तुल्य पदार्थ Karatohyalin में बदल गया है। करतल, पादतल, में यह स्तर स्थूल होता है। इसके बाहिर की ओर तथा त्वचा के पृष्ठ पर चपटे कठोर सेलों की (अनेक तहों) स्तर है जिसे शुष्क स्तर (Horny Layer या Stratum Corneum) कहते हैं। इसके सेलों का प्रोटोप्लाज़्म कठोर होता अर्थात् केलाटिन या केराटिन नामक पदार्थ में परिवर्तित हुआ होता है। इस

शुष्क स्तर के कारण वाह्य शीत उष्ण अथवा विषैले एवं विद्योभक पदार्थों का कोई दुष्प्रभाव निम्नस्तरों पर नहीं हो पाता ।

अन्तश्चर्म (Dermis) सैलों से दृढ़ बन्धन होकर स्नायु तन्तु (Connective Tissue) से जो कि Hyaluronic Acid का कम्पौण्ड है बना हुआ है । इसमें लचकीला अवयव (Elastic Fibres) भी होता है । जिससे यह नमदे की तरह लचकीला परन्तु पर्याप्त दृढ़ भी होता है। अन्तश्चर्म में रक्तवाहिनियां, लसीकावाहिनियां तथा नाड़ियां पर्याप्त मात्रा में रहती हैं । अन्तश्चर्म स्थान स्थान पर स्तम्भों के रूप में वहिश्चर्म के अन्दर धंसा होता है । इन उभारों को Papillae कहते हैं । इन उभारों में से प्रत्येक में सूक्ष्म रक्तवाहिनी का एक मोड़ पाया जाता है तथा बहुत सों में स्पर्श वाहिनी वात नाड़ियों के सिरे (Tactile Corpuscle) भी पाये जाते हैं । इस प्रकार अन्तश्चर्म के बाहिर के भाग को इन उभारों के कारण Papillary Layer कहते हैं । अन्तश्चर्म के गहरे भाग को स्नायुतन्तुओं की प्रधानता के कारण Reticular Layer कहते हैं । इसमें रक्तवाहिनियों तथा लसीका वाहिनियों के जाल (Sub-papillary Vascular and Lymphatic Plexuses) रहते हैं । जिनमें से सूक्ष्म शाखायें उभारों (Papillae) के सिरों तक तथा रोम कूपों में विद्यमान रोम मूलों तक जाती हैं । इस स्तर में स्पर्श वाहिनी नाड़ियों (Cutaneous Nerves) के जाल भी रहते हैं । जिनके सिरे Papillae में समाप्त होते हैं । Non-Medullated Nerve सूत्र, बाहिर वहिश्चर्म में, रोंगटों में, तथा स्वेद ग्रन्थियों में आते हैं । कर पाद तलों में ये Papillae तथा इनके अन्दर स्पर्श ज्ञान के वाहक Tactile Corpuscles बहुत अधिक होते हैं ।

रोम तथा केश (Short and Long Hair) भी त्वचा का ही एक भाग हैं जो त्वचा के अन्दर एक गढ़े, रोम कूप (Hair Follicle) में धंसे हुए रहते हैं । रोम कूप के दीवार का बाहर का स्तर अन्तश्चर्म तथा अन्दर का स्तर वहिश्चर्म से बना हुआ है । वहिश्चर्म के स्थान स्थान पर अंतश्चर्म में धंस जाने से ये रोम कूप बने हुए हैं । रोम कूप के मूल के समीप इसमें एक दो स्नेह ग्रन्थियों (Sebaceous Glands) की प्रणालियां खुलती हैं + जिनका स्नेह स्राव (Sebum) लोम कूप में होकर वहिर त्वचा पर आ जाता और उसे स्निग्ध रखता है + तथा पानी में घुले जीवाणुओं व विषों से उसे बचाता है । प्रत्येक रोम मूल का एक सूक्ष्म रक्तवाहिनी द्वारा पोषण होता है, यह ऊपर कहा ही जा चुका है । तेल, घृत आदि स्नेहों में घुले पदार्थ इन्हीं स्नेह प्रणालियों द्वारा Dermis में पहुंच जाते हैं ।

स्वेद ग्रन्थियां :- (Sweat Glands):-

अन्तश्चर्म के अन्दर के मेदोमय स्तर (Sub-Cutaneous

Tissue) में रहती हैं । जिनकी प्रणालियां बाहिर बहिश्चर्म पर खुलती हैं ये वहिश्चर्म को आर्द्र रखने का कार्य करती हैं । इनमें रक्त पर्याप्त मात्रा में पहुंचता रहता है ।

नख :- (Nails)

नाखून मूल (विद्यमान त्वचा (Nail fold) की Horny layer से नख बन गये हैं या यों कहें कि

नख भी त्वचा की स्वच्छ स्तर Stratum Lucidum जिसके सैल, Keratin या जैलाटीन से मिलते जुलते Eleidin नामक स्वच्छ पदार्थ से बने हुऐ हैं (बन गये हैं) ~~यों कहें कि नख इसी स्वच्छ स्तर के मोटे हो जाने से बन गये हैं~~ । ~~ये भी~~, नख भूमी (Nail Matrix) भी में से जो श्लेष्मिक स्तर ही है, उत्पन्न होते हैं । नख के मूल की त्वचा (Nail fold) की Dermis तथा Epidermis से बनती है ।

ऊपर कहा गया है कि त्वचा का वर्ण, चर्म जनक स्तर (Germinal Layer) के अन्दर विद्यमान वर्णजनक सैलों (Melanocytes या Melanoblasts) में बनने वाले Melanin नामक द्रव्य के ऊपर निर्भर रहता है । यह सूर्य की Ultra Violet किरणों के दुष्प्रभाव से हमारे शरीर को बचाने का काम करता है ।

त्वचा का कार्य :-

त्वचा की वाह्य शुष्क स्तर वाह्य विषों से शरीर को बचाने का कार्य करती है ।

२.. त्वचा में बहुत अधिक रक्तवाहिनियां रहती हैं जिनमें लगभग एक सेर रक्त हर समय रहता है । जो बाहिर से प्रविष्ट विषैले द्रव्यों को नष्ट करने का तथा जब जब अन्य किसी अंग को अधिक रक्त [redacted] की आवश्यकता होती है तब तब उन्हें रक्त प्रदान करने का कार्य करता है। स्वेद के द्वारा शरीरस्थ विष द्रव्य शरीर से बाहिर हो जाते हैं । पारा, सौमल आदि अनेक विष द्रव्य स्वेद द्वारा शरीर से निकलते हैं । साधारणत: प्रतिदिन १ सेर के लगभग स्वेद त्वचा में से निकलता है । श्रम करने पर यह कई सेर तक निकलता है । जब जब शरीर में अग्नि कर्म या पक्व कर्म (Metabolism) बढ़ता है, स्वेद की मात्रा भी बढ़ जाती है । Sympathetic नाड़ी मण्डल की Cholinergic Fibres स्वेद ग्रन्थियों में आती हैं । इनकी उत्तेजना से स्वेद में वृद्धि हो जाती है ।

जब बाहिर शीत अधिक होता है तब त्वचा की रक्तवाहिनियां संकुचित हो जाती हैं । जिससे शरीर की ऊष्मा नष्ट हो जाने से बच जाती है । जब शरीर के अन्दर ऊष्मा की वृद्धि हो जाती है तब त्वचा की रक्तवाहिनियां शिथिल हो जाती हैं । जिससे शरीर में से [redacted] ऊष्मा के विनाश की मात्रा बढ़ जाती है एवं शरीर उससे होने वाली हानियों से बच जाता है । त्वचा में Cholesterol बनता है जो फिर विटामिन डी में परिवर्तित हो जाता है ।

पामा :- Eczema. (Ek=out, Zes=Boil).

त्वचा पर पिन के नके जितने कचे, उभार या विस्फोट निकल आयें जिनमें दाह और कण्डू विशेष हों या कण्डू दाह युक्त लाल चकत्ता ही निकलें तो उसे पामा कहते हैं ।

शरीर के खुले प्रदेशों की जैसे चेहरे, शाखाओं के निम्न भाग, ग्रीवा के पिछले पृष्ठ आदि की त्वचा के वहिश्चर्म (Epidermis) के सेलों में विशेषत: Prickle सेलों में या इनके नीचे की रक्त वाहिनियों में जब वाह्य विदाहिक द्रव्यों को सहन करने की स्वाभाविक शक्ति कम हो जाती है तब इनमें एक त्वक् शोथ (Dermatitis) की प्रतिक्रिया होती है । जिसे पामा (Eczema) कहते हैं । कुछ एक में पितृ परम्परा से ही पामा के होने या श्वास रोग के होने की प्रवृत्ति आती है । साधारण त्वचा रासायनिक विदाहिक द्रव्यों जैसे साबुन, क्षार, गन्धक, बालों पर लगाये जाने वाले पदार्थों आदि या कठोर ऊनी वस्त्र, धूप आदि से विदग्ध नहीं होती। परन्तु इस रोग में ये द्रव्य त्वचा के लिये विदाहिक हो जाते हैं (इसे Contact Dermatitis कहते हैं)। बहुत सम्भवत: अजीर्ण या मलबन्ध आदि के कारण उत्पन्न हुआ कोई विष द्रव्य आंत में से पहले त्वचा में पहुंचता है - जिसे हम Allergen कह सकते हैं । उसके कारण त्वचा के सेल पहले ही विदग्ध होते हैं । ऐसी अवस्था में सामान्य वाह्य विदाहिक द्रव्य का सम्पर्क होने पर उनमें शोथ होकर यह रोग प्रकट हो जाता है । दूध, अण्डे आदि के द्वारा भी यह रोग हो सकता है । मधुमेही में मीठे के कारण भी यह हो सकता है (अर्थात् Hyperglycaemia ...)। शरीर के किसी देश में विद्यमान पूय भाव (Septic Focus) से भी यह विष त्वचा में पहुंच सकता है । इसीलिये कभी कभी किसी दांत के आसपास पामा का रोग हो जाता है । क्रोध आदि तीव्र मानसिक आवेशों से Hypothalamus में विद्यमान Autonamic-Nerve सेन्टर्स के विदग्ध हो जाने पर त्वचा की नाड़ियों (Nerves) में उत्पन्न होने वाले Acetylcholine नामक द्रव्य के दुष्प्रभाव से भी त्वचा के सेल विदग्ध हो सकते हैं । ऐसी अवस्था में साधारण से वाह्य विदाहिक द्रव्य के द्वारा भी यह रोग प्रकट हो जाता है । बहुधा भोजन में उचित परिवर्तन करने और रेचन दे देने से इस रोग में लाभ हो जाता है । जिससे पता लगता है कि आंतों से ही बहुधा त्वचा में कोई विदाहिक द्रव्य पहुंचता है और उसे विदाहशील करने का कारण होता है । कभी कभी मन में छिपी हुई चिन्ता पामा के रूप में प्रकट होती है अर्थात् दु:ख के आंसू नेत्रों से न निकल के स्रावी पामा के रूप में वहिश्चर्म से निकलने लगते हैं । वस्तुत: वहिश्चर्म नाड़ी मण्डल (N.System) का वह भाग है जो शरीर को चारों तरफ से ढांके हुए है ।

विकृति विज्ञान :-

इस विदाहशील प्रदेश के अन्तश्चर्म (Dermis) में

विद्यमान रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं । उनके आसपास Lymphocytes बड़ी मात्रा में जमा हो जाते हैं । रक्त में से रक्त द्रव का परिस्रवण अधिक मात्रा में होने लगता है । इस बढ़े हुए रक्त द्रव के वहिश्चर्म में के मालपीजियन सेलों के बीच बीच के प्रदेशों में तथा सेलों के अन्दर अधिक भर जाने से (Inter तथा Intracellular Oedema) से वहिश्चर्म फूल जाता तथा देखने में रक्त वर्ण हो जाता है । अर्थात् उस प्रदेश में रक्त संचय (Congestion) और शोथ (Oedema) के लक्षण होते हैं । दूसरे शब्दों में वहां की त्वचा कुछ रक्त वर्ण एवं उभरी हुई दीखती है । पामा की इस प्रथम रक्त मण्डल की अवस्था को (Erythematous Stage) कहते हैं ।

वहिश्चर्म की श्लैष्मिक स्तर या मालपीजियन स्तर में द्रव के अधिक भर जाने से सेल एक दूसरे से दूर हो जाते हैं । अर्थात् इनके परस्पर जोड़ने वाले सूत्र टूट जाते हैं । कुछ सेल द्रव के भर जाने से द्रव रूप (Lequefied) हो जाते हैं । इस द्रव के भर जाने से यह स्तर स्पंज की तरह हो जाती है । इसलिये इसे Spongiosis की प्रक्रिया कहते हैं । इस घुंघाले से द्रव के वहां अधिक भर जाने पर उस प्रदेश पर सूक्ष्म सूक्ष्म पिड़िकायें पृथक पृथक समूहों में दीखने लगती हैं जिनकी छत केवल बाह्य स्तर (Horny Layer) से बनी होती है । इसे इस रोग की पिड़िकावस्था (Vesicular Stage) कहते हैं ।

वहिश्चर्म के इस द्रव के कण्डूकारक अर्थात् विदाहक होने से शीघ्र ही इन पिड़िकाओं की छत छिल जाती है । जिससे फिर उस पृष्ठ पर से यह द्रव अतिमात्रा में बहने लगता है । इसलिये इस अवस्था को स्रावी पामा (Weeping या Exudative Eczema) कहते हैं । यह स्राव गाढ़ा तथा चिपचिपा होता है । इसके लगने से कपड़ा भी अकड़ जाता है ।

फिर यह स्राव मात्रा में कम हो जाता है तथा निकल कर वहीं पृष्ठ पर सूख कर हलके पीले से रंग के छिलकों के रूप में जमने लगता है । जब तक वहिश्चर्म में उत्पन्न शोथ शान्त नहीं होता तब तक ये छिलके वहां बनते रहते हैं, क्योंकि वहां शोथ के रहने से मालपीजियन सेलों का प्रोटोप्लाज़म केराटीन या जेलाटीन में जैसे साधारणत: परिवर्तित हो जाना चाहिये, वैसा परिवर्तित नहीं होता जिससे इन सेलों में केराटीन कम बनता है । इन सेलों के न्यूक्लिआई भी बने रहते हैं । अर्थात् वहिस्तर (Horny Layer) के सेलों में Keratosis की प्रक्रिया ठीक नहीं होती । इसलिये इसे अनुचित केराटोसिस (Para Keratosis) की प्रक्रिया कहते हैं । इन अनुचित सेलों से बनी वहिस्तर में बाहिर की गर्मी को तथा हवा को सहन करने की शक्ति नहीं होती। इस अवस्था को जिसमें वहिस्तर के सेल गीले और अपूर्ण परिणत होने के कारण

परस्पर एक दूसरे से चिपके रहते हैं एवं एक एक करके झड़ने के स्थान पर समूहों या छिलकों के रूप में झड़ते हैं । इसे Scaly या Squamous Eczema कहते हैं । यदि रोग का कारण शान्त न हो, खुजली बनी रहे तो खुजलाते रहने से वहिश्चर्म की वाह्य शुष्क स्तर तथा श्लेष्मिक स्तर (Prickle Cell की तह) के सेलों में अति वृद्धि हो जाने से वह अधिक स्थूल हो जाती है । साधारणतः इन सेलों में फिर वृद्धि (Mitosis) नहीं हुआ करती परन्तु त्वक् शोथ की अवस्था में इनमें अति वृद्धि होती है । इसे Acanthosis की प्रक्रिया कहते हैं । इस अवस्था को जिसमें वहिश्चर्म स्थूल, शुष्क, कुछ श्याम वर्ण, तथा झड़ने वाले छिलकों से युक्त, होता है । चिरस्थायी पामा Chronic या Lichen-ified या Desquamative Eczema कहते हैं । इस अवस्था में भी अन्तश्चर्म (Dermis) में विद्यमान रक्तवाहिनियां शिथिल एवं अधिक फैली हुई होती हैं । और पूयपूर्ण स्फोट भी इस रोग में हो जाते हैं तब इसे Pustular Eczema कहते हैं ।

लक्षण :-

अत्यधिक कण्डु दाह या स्रावी पिडिकाओं से युक्त विषम आकृति के रक्त वर्ण, स्पर्श में किंचित कर्कश, चकत्तों को देखकर पामा रोग का सन्देह करना चाहिये । कण्डु लगातार रहती या ठहर ठहर के उठती है तथा खुजलाने से ही शान्त होती है । चिरस्थायी रोग हो तो खुजली और छिलके से उतरने के लक्षणों को देखकर इस रोग का सन्देह होता है । ये चकत्ते शरीर के वाह्य संघर्ष में आने वाले पृष्ठों, अग्रबाहुओं के वाह्य पृष्ठ, ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ, मुख आदि पर विशेषतः देखे जाते हैं । पर सर्व शरीर की त्वचा पर भी यह रोग होता है । तब सारी त्वचा कुछ रक्त वर्ण, रूक्ष, कण्डु और दाह से युक्त होती है । खुजलाने से या गर्म जल, धूप, साबुन आदि वाह्य विक्षोभों से ये लक्षण और बढ़ जाते हैं । रोग पुराना हो तो चकत्ते पर रूक्षता और शुष्कता के लक्षण विशेष होते हैं ।

करतल पामा :- (Eczema of the Palms and Soles)

बड़ी आयु के व्यक्तियों की करतल की त्वचा में भी यह रोग होता है । जिससे करतल का वाह्य शुष्क स्तर अधिक शुष्क हो जाता है । करतल की लकीरें अधिक स्पष्ट दीखती हैं । करतल में स्वेद भी नहीं आता तथा रोगी को करतल में कण्डु विशेष रहती है । नखों के तल (Matrix) में रोग के हो जाने से कभी कभी नखों में भी रोग हो जाता है । जिससे नख खुर्दरे, भंगुर तथा बदरंग हो जाते हैं ।

शिशु पामा :- (Infantile Eczema)

एक दो वर्ष के शिशुओं के गाल, मस्तक या ठोडी पर पामा का रोग होकर वहां अस्पष्ट रूप में पिडिकायें निकलती हैं

फिर शीघ्र ही वहां की त्वचा रक्त वर्ण, फटी हुई, रुक्ष तथा क्लिश हो जाती है । बालक उसे खुजलाता भी है । इसके कारण शिशु रात को बेचैन सा रहता है । बहुत सम्भवत: दूध, खाण्ड या घृत के अधिक मात्रा में अन्दर जाने से इस रोग का कोई विष अन्दर उत्पन्न होता है जो विक्षोभक साबुन, धूप, गर्म जल या ऊनी कपड़े की रगड़ से प्रकट हो जाता है । कभी कभी शिशु के सिर पर पामा रोग होता है जो बड़ों के Seborrhic पामा के सदृश होता है । इसे Eczema capitis या Dermatitis seborrhica कहते हैं।

स्पर्शज पामा (Contact Eczema) नाना रासायनिक द्रव्यों के संसर्ग से होने वाले रोग को स्पर्शज पामा कहते हैं । Seborrhoic Eczema सिर पर तथा कान के पीछे होने वाली छिल्कों से युक्त पामा को अर्थात् ललाट पामा को कहते हैं । Infections Eczematoid Dermatitis व्रण के समीपमेंहोने वाली पामा को कहते हैं ।

चिकित्सा :-

आभ्यन्तर चिकित्सा :-

कोई बाह्य विक्षोभक स्पर्शक द्रव्य इसका कारण हो तो उसे दूरकरना चाहिये । आभ्यन्तर विक्षोभक द्रव्य कारण हो तो उसके निवारण के लिये दो दिन का लंघन कर लिया जाय या Saline का एक विरेचन ले लिया जाय या तीन दिन केवल उबले हुए चावल और कम नमक वाले किसी सब्जी के रसे पर या कम नमक वाले रुक्ष दलिये पर ही रह लिया जाय तो रोग शान्त होने लगता है। किसी अवस्था में भी भोजन में विद्यमान तीक्ष्ण द्रव्यों जैसे चाय, मद्य, गर्म मशाले, खटाई, गुड़, मिठाई आदि तथा धूप का परहेज करना चाहिये । दूध, अण्डे, खाण्ड आदि में से किससे हानि होती हैं पता लगाना चाहिये । Saline के अतिरिक्त Vinum-Antimony १० बून्द दिन में तीन बार देने से रोगी को कुछ आराम प्रतीत होता है । पाचन को ठीक करने के लिये Acid Hydrochlor.Dil. ३ बूंद एक चम्मच शर्बत के साथ प्रति भोजन देना चाहिये । रात को निद्रा के लिये १,१½ ग्रेन Phenobarbitone दे सकते हैं । Antihistamine (Phenergan) औषधियों में से भी लाभ होता है। Cortisone २५ मिलिग्राम या Prednisolone ५ मिलि० या Dexamethasone (Millicorten) •५ मिलि० या Triamcinalone ४ मिलि० की मात्रा में ६-६ घन्टे बाद दो तीन दिन देने से भी तीव्र रोग का वेग दो तीन दिन में ही शान्त होता है । फिर इस औषधि की मात्रा दिन में एक बार कर दी जाती है । चिरस्थायी रोग में इस औषधि का प्रभाव स्थायी नहीं होता । विस्फोटों में पूय भाव हो जाय तो किसी उचित Antibiotic का प्रयोग करना चाहिये ।

फुन्सियों को रोकने के लिये Autohaemotherapy अर्थात् अपना ही रक्त ५ सी०सी० मात्रा में मांस द्वारा प्रति सप्ताह दे दिया जाता है। Calcium या (Calci.Glucon. या Calcibronat, (Calciostelin, Ostocalcium) तथा Vitamin "B" Complex (Becozym, Vibelan Plebex) के प्रयोग से, त्वचा की सहन शीलता बढ़ने पर भी यह रोग शान्त हो जाता है। मानसिक शान्ति या Emotional Tension को दूर करने से भी बहुधा लाभ प्रतीत होता है। इसके लिये रात को Dichloral Phenozone १५०-३०० मिलि० दिया जा सकता तथा दिन में Phenobarbitone स्वल्प मात्रा में दिया जा सकता है।

वाह्य चिकित्सा :-

पामा के कारण त्वचा पर लाल कत्ता हो गया हो तो उस पर शीतल चूर्ण Dusting Powder जैसे Boric Acid १०, Salicylic Acid २ भाग, Talc Powder ८८ भाग मिलाकर बनाया पाउडर या कपूर २, Zinc Oxide १६, Starch ८२ भाग मिलाकर बनाया पाउडर लगाना चाहिये।

कत्ते में से कुछ स्राव भी होता हो तो शीतल द्रव लगाने चाहियें + जिनमें चिकनाई अधिक न हो। चिकनाई से जल का उड़ना बन्द हो जाता है। इसके लिये Lead Lotion अर्थात् उबाल कर ठण्डे किये Distilled वाटर में सवा प्रतिशतक Strong Solution of Lead Subacetate मिला कर बनाया जल २०-३० मिनट दिन में तीन चार बार लगाना चाहिये या Alumininm Subacetate १-५ प्र०श० सोल्यूशन (Burow's Solution या केलामीन लोशन (Boric Acid ५, केलामीन, जिंक औक्साइड १५-१५, ग्लिसरीन १०, जल या Aquacalcis lotion १५५ भाग मिलाकर बनाया लोशन) या Crook's Colossal Calamine या Lead Calamine Lotion अर्थात् Lime Water १ औंस में Liquor Plumbi Subacetatis Dil. १ ड्राम, Prepared Calamine १ ड्राम, ग्लिसरीन १ ड्राम मिलाकर बनाया लोशन या स्टार्च लोशन (Starch २४, Zinc Ox. २४, ग्लिस० १२, Lime Water १२० ग्राम) इसी प्रकार लगाना चाहिये। Calamine Liniment अर्थात् Lime Water १ औंस, जैतून तेल १ औंस मिलाकर उसमें Lanolin ५ ग्रेन Acid Oleic ३ बुन्द, Calamine २ ड्राम मिलाकर बनाया लेप या Zinc Ox. १०, कुछ जैतून तेल, Lime Water १२० ग्राम तक बनाया लोशन या Zinc Cream अर्थात् Zinc Oxide १ ड्राम, Lanolin १ ड्राम, को Lime Water तथा जैतून के तेल १ औंस के मिक्सचर में मिलाकर बनाई क्रीम या Zinc Paste अर्थात् Zinc Oxide २ ड्राम, Starch २ ड्राम, Lanolin २ ड्राम, Soft Paraffin १ औंस से मिलाकर बनाया लेप लगा सकते हैं।

इस अवस्था में Gelfoam Powder, Terramycin (१ ग्राम में १०० मिलि०) Achromycin (३ %) Neosporin के Powders भी लगाये जा सकते हैं।

जब पामा के चकते में खुजली विशेष हो तो उसके हटाने के लिये उपर्युक्त लोशन, क्रीम तथा पेस्ट में Liquor Carbonis Detergens. १ औंस, में ३ बुन्द, (५-६ प्रतिशतक) या Acid Carbolic या Menthol या Ol; Menth.Pip; या Chloretone १ प्रतिशतक के हिसाब से मिला दिये जाते हैं।

चिर स्थायी पामा रोग में वहिश्चर्म सूजा होता है। छाये हुए छिलकों की मात्रा अधिक होती है। इसलिये उस पर केवल शीतल लेप के लगाने से लाभ नहीं होता। उस पर कुछ गर्म और तीक्ष्ण लेप (Stimulant) तथा छिलके उतारने वाले (Keratolytic) द्रव्यों की आवश्यकता होती है। इस प्रयोजन से Sulphur का २-३ प्रतिशतक मात्रा में Salicylic Acid का ४-५ प्रतिशतक मात्रा में Coal Tar Solution का ४-५ प्रतिशतक मात्रा में Ammoniated Mercury तथा Vioform का २-३ प्रतिशतक मात्रा में विशेष प्रयोग होता है। उदाहरणत: Soft Paraffine ५० भाग में Zinc Oxide २४ भाग, Starch २४ भाग, Salicylic Acid २ भाग मिलाकर या उपर्युक्त Zinc Paste के १ औंस में १५-३० बुन्द Liquor Carbonis Detergens या Camphor या Menthol में से किसी को ५ ग्रेन की मात्रा में मिलाकर लगा सकते हैं या Soft Paraffin १ औंस में Liquor Carbonis Detergens ३० बुन्द, Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Plumbi Subacetatis Fortis ३० बुन्द मिलाकर लगा सकते हैं। खालिस Tar भी बड़ा लाभ करता है। Tar के लेप न लगाने हों तो Sterosan Ointment या Cream लगा सकते हैं। फिर भी जो पामा ठीक न हो तो Corticosteroid से बने प्रलेप व लोशन जैसे Prednisolone (•२५%), Hydrocortisone (१•%), Triamcinolone (१•%), लगाने चाहिये। इनके साथ कोई Antibiotic जैसे Neomycin १/२ प्र०श० मिला सकते हैं या Bacitracin १ ग्राम में २५०-५००यूनिट मिला सकते हैं या Gramicidin मिला सकते हैं। Cambison(Hoechst) से भी लाभ होता है। Fluocinolone (•०२५ प्र०श प्रलेप व लोशन और भी अधिक लाभदायक कहे जाते हैं। तीव्र रोग में ये जितने उपकारी होते हैं उतने जीर्ण पामा में नहीं। पामा के विस्फोटों पर Ultra Violet Light का क्रमिक प्रयोग भी किया जाता है। Superficial X-Ray का एक एक सप्ताह बाद प्रयोग करने से कण्डू को आराम रहता है।

शिशु पामा के लिये शिशु को खाण्ड देना बन्द कर

देना चाहिये । साधारण दूध के स्थान पर डब्बे का दूध देना चाहिये । ताकि उसमें स्नेह की मात्रा कम हो जाय । अजीर्ण की चिकित्सा से यह रोग शान्त होने लगता है । Burow's Solution ½, ½ घन्टे के लिये दिन में ४ बार लगाना चाहिये । उपर्युक्त Zinc Paste के एक औंस में Liquor Carbonis Detergens. ५-१० बुन्द मिलाकर लगाने से या Hydrocortisone. १ प्र०श० घोल या मलहम (या क्रीम) लगाने से उसे लाभ होने लगता है । बालक को रात के समय निद्रा जनक औषधि जैसे Pot.Bromide या Elixir Benadryl (या Elixir Vallergan forte १ ड्राम) ३०-४० बून्द दे देनी चाहिये । आयुर्वेद में चम्बल (Eczema) को पामा कहा गया प्रतीत होता है जैसे कि सुश्रुत ने कहा है कि स्राव कण्डू और दाह से युक्त सूक्ष्म सूक्ष्म पिडिकायें हो जायें तो उसे पामा रोग समझना चाहिये ।

(सु०।नि०।५।१२)

देहाग्नि की मन्दता या अति तीव्रता से अर्थात् कफ वृद्धि या पित्त वृद्धि से शरीर में जो विष उत्पन्न होते हैं अर्थात् कफ दोष या पित्त दोषों में से किसी एक की या दोनों की वृद्धि होती है, उसे जब वहिश्चर्म सहन नहीं कर सकता एवं वह उससे वह विक्षुब्ध हुआ २ होता है तब स्वल्प से वाह्य विक्षोभक पदार्थ से भी उस त्वचा में शोथ हो जाता है, इसे पामा कहा जाता है । इस प्रकार क्योंकि शरीर में कफ की वृद्धि या पित्त की वृद्धि से यह रोग होता है । इसलिये रोगी को कफ पित्त वर्धक भावों से बचना चाहिये । पाचकाग्नि की मन्दता को दूर करना चाहिये । तथा धूप, अग्नि आदि वाह्याभ्यन्तर सर्व तीव्र विक्षोभक भावों से भी बचना चाहिये ।

(च०।चि०।७।२५ तथा ३०)

चिकित्सा :-

शरीर में कफ, पित्त दोषों की शान्ति के लिये रोगी को लघु सुपच आहार पर रखकर मंजिष्ठादि क्वाथ या उसमें उषवा गोरखमुण्डी भी मिला कर कुछ दिन पिलाना चाहिये । या आरोग्य वर्धनी गोली का दिन में ३ बार प्रयोग करना चाहिये । रोग की प्रथम अवस्था में शीतरूप लेप अधिक लाभ करते हैं । पंच वल्कल क्वाथ या माजूफल के क्वाथ में भीगे वस्त्र के दिन में कुछ देर के लिये ४-५ बार बांधने से शान्ति पड़ती है । या मुरदाशंख, माजू, सिंदूर, सफेदा, कासगरी, समान समान मिलाकर इसे दुगने घृत से मिलाकर लगाने या मुरदाशंख, छोटी इलायची, शीतल चीनी, सफेदा कासगरी, समान समान मिलाके ३-४ गुणा घृत में मिलाकर लगाने से लाभ होता है । शास्त्रोक्त जीरक तेल (जीरा ४ तो०, सिंदूर २ तो०, तेल ३२ तो० पाक करें) या जात्यादि तेल (जाती पत्र, निम्ब पत्र, मेंहदी पत्र, बबूल पत्र, करंज पत्र के रस, एक एक भाग तेल, ८ भाग मोम, १ भाग) के लगाने से भी शोथ शांत

होता है । चिरस्थायी पामारोग में त्वचा की स्थायी कफ शोथ की शान्ति के लिये इसमें कुछ ऊष्ण द्रव्यों का भी प्रयोग करना आवश्यक होता है । इसलिये कण्डू युक्त छिलकों वाली शुष्क पामा में सिन्दूरादि लेप, (सिन्दूर, दोनों जीरे, दोनों हल्दी, मनसिल, गन्धक, मरिच, पारा समान समान के चूर्ण को ४ गुणा घृत में मिला कर बनाया) लगाने से या मुर्दा शंख, सिंदूर, गन्धक, सुहागा या बोरिक एसिड एक एक भाग, कपूर $\frac{1}{2}$, गिरी का तेल तथा मोम १०-१० भाग के बने लेप के लगाने से या गन्धक १ भाग, बोरिक एसिड दो भाग, कपूर, फिटकरी प्रत्येक $\frac{1}{8}$ भाग, मोम ४, तिल तेल ८ भाग, से बनाया लेप, लगाने से बहुधा लाभ हो जाता है । व्रण शामक तैलों जैसे निम्ब पत्र क्वाथ १६, तिल तेल ४, निम्बत्वक् दो, हल्दी, त्रिफला, दोनों चन्दन सब समान समान मिलित १ भाग से बनाये तेल से भी अति व्यापक पामा में लाभ होता है ।

शीत पित्त :- Urticaria:-

त्वचा, गर्मी, आघात तथा कीट पतंग आदि के दंश के लगते पर लाल रक्त वर्ण हो जाया करती है परन्तु यदि उतनी गर्मी आघात आदि लगते ही रहें तो फिर त्वचा रक्त वर्ण नहीं होती । इसी प्रकार यदि किसी पदार्थ के खाने से त्वचा पर रक्त वर्ण चकत्ते निकल आयें तो कुछ काल स्वल्प मात्रा में उस द्रव्य का प्रयोग करने से चकत्ते निकलने बन्द हो जाते हैं । इसी प्रकार रोग जीवाणु के स्वल्प मात्रा में शरीर में प्रवेश करने पर पहले तो रोग होता है फिर उतने जीवाणु के प्रवेश करने पर भी रोग होना बन्द हो जाता है अर्थात् सभी नये द्रव्य शरीर के लिये विष के समान होते एवं असात्म्य होते हैं । परन्तु कुछ काल के प्रयोग के बाद ये ही शरीर के लिये निरुपद्रव एवं सात्म्य हो जाते हैं । सम्भवत: शरीर इनके विपरीत द्रव्य Antibodies या Reagins को उत्पन्न करके इनको उदासीन कर देता है । इस प्रकार शरीर में जीवाणुओं के विपरीत Bacteriolysin दूसरे के रक्त के विपरीत Haemolysin, Cytolysin, तथा जीवाणुओं के विपरीत Antibodies उत्पन्न कर लेने का एक स्वाभाविक गुण है । जिससे वह सर्व विपरीत एवं असात्म्य द्रव्यों के दुष्प्रभाव से अपने को बचा लेता है । इसे शरीर की स्वाभाविक रक्षक शक्ति Phylaxis या Energy कहते हैं ।

परन्तु कभी कभी इसके विपरीत यह भी पाया जाता है कि किसी किसी व्यक्ति में विपरीत द्रव्य के प्रथम बार शरीर में प्रवेश करने पर शरीर के एक अंग की उसको सहन करने की शक्ति बढ़ने के स्थान और भी घट जाती है । अर्थात् उसके बाद शरीर का वह अंग उस विपरीत द्रव्य के लिये और अधिक असमर्थ या Sensitized हो जाता है । अर्थात् वह

और मूत्र में भी

विपरीत द्रव्य उत्थान के सेलों में Sensitizing Antibodies या Reagins उत्पन्न करने का कारण हो जाता है। इसलिये फिर दुबारा जब वह द्रव्य शरीर में प्रवेश करता है तो वह शरीर के असमर्थ (Sensitized) हुए इन सेलों के लिये विनाशक हो जाता है। इस प्रकार शरीर में Phylaxis के स्थान पर Anaphylaxis या शक्ति (Energy) के स्थान अशक्ति (Allergy) Anergy या Hyperegy या Hyper Sensitivity असात्म्यता उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार जब तो बहिश्चर्म के सेलों में Antibodies रहते हैं और उन पर उनके विपरीत द्रव्य (Antigen) का विनाशक प्रभाव होता है तो उपर्युक्त पामा रोग उत्पन्न होता है। जब अन्तश्चर्म की रक्तवाहिनियों पर किसी विपरीत द्रव्य का विनाशक प्रभाव होता है तब शीत पित्त या कण्डु —Neurodermatitis— का रोग होता है। जब अन्तश्चर्म के नीचे की मेदोमय स्तर की रक्तवाहिनियों पर Antigen का दुष्प्रभाव होता है तब उदर्द Angioneurotic Oedema हो जाता है। त्वचा के अवयवों के इस विपरीत द्रव्य के द्वारा विनष्ट होने पर Histamine उत्पन्न होता है। जिसके विषैले प्रभाव से उसकी सूक्ष्म रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं तथा उन फैली हुई रक्तवाहिनियों में से रक्त का द्रव भाग अधिक मात्रा में परिस्रुत (Transude) होने लगता है। अन्तश्चर्म में ऐसा होने पर बहिश्चर्म की बाहर की स्तर में उपद्रव के आ जाने से त्वचा पर उभरे हुए ऐसे चकते निकल आते हैं जो किनारे पर रक्त वर्ण, बीच में फीके रंग के होते हैं। द्रव के अधिक संचित हो जाने पर रक्तवाहिनियों के दब जाने से ये चकते बीच में फीके पड़ते जाते हैं। वह विष द्रव्य (Allergen) जो अन्तश्चर्म के अवयवों के लिये घातक होता है बहुधा आंतों में से आता है। यह अजीर्ण जनित कोई विष द्रव्य होता है जो रक्त द्वारा त्वचा में पहुंचकर वहां पर विद्यमान Sensitizing Antibody के साथ प्रबल प्रतिक्रिया करके वहां Histamine को उत्पन्न करता है एवं इस रोग का कारण हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह Histamine विष से होने वाला एक रोग है। रोगी के रक्त के सीरम में यह विष पाया जाता है क्योंकि यदि उसके सीरम को दूसरे की त्वचा में प्रविष्ट किया जाय तो वहां पर भी शीत पित्त का चकत्ता निकल आता है। शरीर के किसी प्रदेश में विद्यमान पूय जीवाणु या B.Coli. के रक्त में संचार कर जाने से भी शीत पित्त रोग हो सकता है। सम्भवत: जब Antibodies त्वचा के तापमान के गिरने पर त्वचा के सेलों के लिये विनाशक (Dermatolytic) होते हैं तब शीत हवा या शीत जल के लगने पर यह रोग होता है। सम्भव है जब किसी अवयव में Histamine को पचाने वाले Histaminase की न्यूनता होती है तब उसमें Allergy का रोग होता है एवं इस रोग में त्वचा के अन्दर इसकी न्यूनता होती है।

उनके कारण हिस्टामीन की उत्पत्ति होकर यह रोग होता है
एलर्जेन के कारण भी इसकी उत्पत्ति हो सकती है। Menopause के
समय फीमेल होरमोन की विकृति से भी यह रोग होता है

P.S. Cold urticaria – शीतजनित शीतपित्त – शीतजल या बर्फ के स्पर्श से
शीघ्र त्वचा रक्तवर्ण हो जाती है किसी जीवाणु संक्रमण के बाद कभी २
ऐसा होता है।
Light-urticaria भी होता है जिसका कारण क्या है यह निश्चित नहीं
हो पाया

बालकों में यह तीव्र रूप में होता तथा बड़ी आयु में यह चिरस्थायी रूप में होता है। इस रोग का कारण मूत, विष द्रव्य या तो भोजनगत प्रोटीन से या बासी भोजन से या किसी आन्त्र कृमि से या पूय युक्त दांत तथा गले से या मूत्रगत B.Coli. से आता है या मानस विक्षोभ के कारण Autonomic नाड़ियों के सिरों पर उत्पन्न Acetylcholine भी इसका कारण होता है। इस रोग में सहसा ही शरीर के किसी प्रदेश पर विशेषतः धड़ पर $\frac{3}{4}$ से १ इंच व्यास के गोलाकार अण्डाकृति या विषमाकृति के हलके लाल से कुछ उभरे हुए चकते निकल आते हैं जो बीच में फीके, किनारों पर रक्त वर्ण, होते हैं जिनमें खुजली विशेष होती है। निकलने के कुछ घन्टों में ही ये छिप जाते हैं। बालकों में शाखाओं के Extensor पृष्ठों पर कोठ निकल आते हैं जिनमें कण्डू विशेष होती है। पास पास की त्वचा भी लाल होती है। इसे कोठ युक्त शीत पित्त (Papular Urticaria) कहते हैं।

उदर्द :- Giant Urticaria:- Angio Neurotic Oedema:-

कभी कभी शरीर के किसी प्रदेश के नीचे मेदोमय Sub-cutaneous स्तर में परिस्रवण (Exudation) अत्यधिक हो जाता है जिससे वहिश्चर्म के उठ जाने से त्वचा पर १-२ इंच व्यास का एक उभार कुछ घन्टों के लिये प्रकट हो जाता है। नेत्रों की पलक या चेहरे, अग्र बाहु, हाथ, ओष्ठ या जिव्हा की श्लेष्म कला (Mucous Membrane) के नीचे भी ऐसा उभार हो जाता है जिसे उदर्द कहते हैं। वात प्रकृति के (Neurotic) नवयुवकों या नवयुवतियों में अजीर्ण से, शीत से, अथवा किसी प्रकार की चिन्ता करने से प्रकट होता है। शोथ युक्त त्वचा प्रायः साधारण रंग की होती है अथवा कुछ फीके रंग की या कुछ रक्त वर्ण की भी हो सकती है। स्पर्श में यह स्थान शीतल ही होता है, पर कुछ गर्म भी हो सकता है। वस्तुतः वहां की रक्त-वाहिनियों Antigen Antibodies की परस्पर प्रतिक्रिया से यह रोग होता है। आमाशय, आंत आदि में यह रोग हो तो आन्त्र शूल (Cramps) तथा वमन के लक्षण होते हैं। स्पष्ट है कि कण्ठ (Larynx) में यह शोथ हो तो Tracheotomy के बिना मृत्यु हो सकती है। संघर्षज शीत पित्त (Dermatographism) कुछ एक में कठोर कपड़े की रगड़ से ही त्वचा लाल हो जाती है। यदि यह लक्षण अधिक स्पष्ट हो तो उसकी गणना भी इस रोग में होती है।

शीत पित्त चिकित्सा :-

जब यह रोग तीव्र रूप में होता है तब एक तीव्र विरेचक जैसे Caster Oil १ औंस, या Calomel १ ग्रैन या, Saline देने से और रोगी को केवल दुग्ध पर एक दो दिन रखने से शरीर के अन्दर उत्पन्न

इसका कारण विष द्रव्य (Antigen) नष्ट हो सकता है ।

परन्तु जब यह रोग बार बार (Chronic रूप में) होता है तब इस रोग के कारण का निकालना आवश्यक हो जाता है । तब एक दो दिन अधिक मात्रा में जल लेना चाहिये तथा भोजन का सर्वथा लंघन कर देना चाहिये । फिर पहले केवल दूध देना चाहिये । वह अनुकूल प्रतीत हो और उससे यह रोग शान्त रहे तो गेहूं का दलिया और इस भोजन में मिला देना चाहिये । इस प्रकार दो दो दिन के अन्तर से दूसरे भोजन मिलाकर देखना चाहिये कि कौन से भोजन का अजीर्ण उसमें शीत पित्त को उत्पन्न करता है। सादे भोजन से प्राय: यह रोग शान्त हो जाता है ।लवण का प्रयोग कम कर देने से भी इसमें लाभ होता है । इसी प्रकार अधिक सोडियम वाले आहारों का भी प्रयोग कम कर देना चाहिये ।

शीत पित्त तीव्र रूप में हो तो उसे दबाने के लिये कोई Antihistamine औषधि जैसे Anthisan (M.B.) •१ ग्राम या १½ ग्रेन, ३ बार, Phenergan (M.B.) २५ मिलिग्राम या ⅗ ग्रेन की मात्रा में एक बार सोते समय, Benadryl २५-३० मिलिग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार, Antistin •१ ग्राम या १½ ग्रेन दो तीन बार दी जासकती हैं । या इतनी मात्रा का इसका इंजेक्शन दिन में दो बार देना चाहिये । बालक को इससे आधी मात्रा पर्याप्त है । Antihistamine तथा कैल्सियम दोनों (Sandosten) को शिरा द्वारा भी दिया जा सकता है । तीव्र रोग में १००० में १, Adrenaline की ५-१५ बुन्द त्वचा द्वारा देने से लाभ हो जाता है । Ephedrine Hydrochloride ½ ग्रेन के मुख द्वारा दिन में ३-४ बार देने से या इसे Phenobarbitone ⅛ ग्रेन के साथ मिला के देने से या इन दोनों को Cal.Lactate १० ग्रेन के साथ मिला के दिन में तीन बार देने से भी लाभ हो जाता है । या Malaria का Antigen हो तो क्वीनीन आदि मलेरिया शामक औषधि के देने से वेग तुरन्त शान्त हो जाता है जिसमें रक्त भार अधिक हो, उन्हें एड्रिनेलीन नहीं देना चाहिये । Cortisone(Cortryl,Hydrocortistab) तथा Corticotrophin भी इस रोग में तुरन्त लाभ दिखाते हैं ।

चिरस्थायी रोग में भोजन बिल्कुल सादा लेने से या Acid Hydrochlor.Dil को १५ बुन्द मात्रा में तीनों भोजनों के साथ लेने से, जल के अधिक मात्रा में पीने से अर्थात् मूत्र की मात्रा बढ़ा देने से विटामिन "बी" कम्प्लेक्स, लोहे तथा अन्य बल्य औषधियों के देने से Auto Haemotherapy या Milk Injection से Calcium Lactate या Calcium Gluconate के १५-२० ग्रेन मात्रा में ३ बार लेने या Calcium Gluconate १० प्रतिशतक के मांस या शिरा द्वारा कुछ दिन लेने से लाभ हो

जाता है । केल्सियम से सूक्ष्म रक्तवाहिनियों की परिस्रवण शीलता घटती है ।

कण्डू की शान्ति के लिये Lead Lotion या Calamine Lotion में २ प्रतिशतक Phenol या,१० प्रतिशतक Liquor Carbonis Detergens या, २० औंस गर्म जल में १ ड्राम सोडा डालकर लगाना चाहिये । Papular Urticaria बहुधा मानसिक कारणों से होता है । स्थान परिवर्तन से तथा कण्डू शामक औषधियों से लाभ हो जाता है ।

आयुर्वेदानुसार शीत पित्त रोग :-

आयुर्वेद में इसे वात कफ जनित अन्तश्चर्म शोथ कहते हैं । अन्तश्चर्म में विद्यमान रक्तवाहिनियों में कफ एवं वात के प्रकुपित होने अर्थात् उनमें अजीर्ण के कारण आम द्रव्य (Metabolite) की उपस्थिति तथा शीत जल या वायु के स्पर्श के कारण उनकी प्राण शक्ति के न्यून हो जाने एवं उनके शिथिल हो जाने या फैल जाने से शीत पित्त रोग की उत्पत्ति होती है । क्योंकि इसमें त्वचा पर रक्त वर्ण वरटीदष्ट स्थान के तुल्य चकते निकलते हैं तथा कभी कभी इसके साथ कुछ ज्वर भी होता है, इसलिये इस रोग को शीत के कारण होने वाला पित्त रोग या शीत पित्त रोग कहा है । परन्तु साथ ही कहा है कि " वाताधिकं शीत पित्तम् " अर्थात् त्वचा की रक्तवाहिनियों में वातिक दुर्बलता के कारण प्रधानत: यह रोग होता है । वाह्य शीत इस वातिक दुर्बलता का तात्कालिक कारण हो जाता है।साथ ही आयुर्वेद में कहा है कि " उदर्द स्तु कफाधिक:" अर्थात् जब चर्म के नीचे की रक्तवाहिनियों में आम दोष की उपस्थिति विशेष होती है और उसके विषैले प्रभाव से वहां परिस्रवण (Transudation) विशेष होता है तब वहां एक बड़ा उभार उत्पन्न हो जाता है जिसे उदर्द कहते हैं ।

इसीलिये इस रोग में कफ दोष की शान्ति के लिये रोगी को [illegible] नीम के जल में लवण मिलाकर उसका एक आधा गिलास पिलाकर वमन करा देने से लाभ हो जाता है । विरेचन कराने अर्थात् त्रिफला या त्रिवृत या हरीतकी [illegible] खण्ड या ६ माशा हरीतकी चूर्ण पिला देने से भी यह रोग शान्त हो जाता है । पाचन दीपन औषधि अर्थात् अजवायन ४ माशा को बराबर गुड़ के साथ मिलाकर दो तीन बार दे देने से भी यह रोग शान्त हो जाता है । कभी कभी गैरिक २-३ माशा में थोड़ी खाण्ड मिला उसे जल से २-३ बार पिलाने से यह कष्ट शान्त हो जाता है ।

यह रोग बार बार होता हो तो रोगी को केवल दूध और पीपल के चूर्ण पर कुछ दिन रखना चाहिये । या बहुत सादे भोजन पर जैसे मूंग की खिचड़ी या उबले दलिये आदि पर रहते हुऐ तिक्त घृत का या २ तोले मंजिष्ठादि क्वाथ का या नीम, कटुकी, गिलोय, हरड़, सौंठ, पुनर्नवा, समान समान मिले क्वाथ का २ तोला की मात्रा में दिन में एक बार [illegible]

या आरोग्य वर्धिनी वटी का ३ बार सेवन करना चाहिये ।

सरसों के तेल में अपामार्ग क्षार, यवक्षार या कोई क्षार मिलाकर मलने से या दारुहल्दी कायफल के कल्क को ४ गुणा तेल में पका उस तेल के मलने से कण्डु शान्त हो जाती है ।

मण्डल :- Psoriasis:-

लक्षण :-

बालकों व नवयुवकों में शीत तथा आर्द्र काल में अधिक पाये जाने वाला तथा ग्रीष्म तथा शुष्क काल में कम हो जाने वाला यह एक सुलभ रोग है जिसमें अधिक संघर्ष में आने वाली त्वचा पर जैसे कोहणी, जानु, शाखाओं के बाह्य (Extensor) पृष्ठों तथा गड्ड और पीठ पर और कभी कभी सिर पर उठा हुआ स्पष्ट किनारों वाला, छोटा सा पिन के नक्के जितना या मसूर के दाने जितना, रक्त वर्ण, शुष्क सा कोठ (Papule) निकलता है जिस पर श्वेत वर्ण छिलका चिपका हुआ रहता है । यह गोलाकृति होता है, इसलिये इसे मण्डल कहते हैं । यह क्रमशः आकार में बढ़ा होकर आधी या एक इंच व्यास का हो जाता है । ऐसे अनेक मण्डल समीप समीप निकल कर एक दूसरे से मिल जाते हैं । इस प्रकार शरीर के एक देश या सारे शरीर पर यह रोग छा सकता है । ये मण्डल शरीर के दोनों ओर आमने, सामने निकला करते हैं तथा प्रारम्भ से ही उठे हुये तथा एक श्वेत सी परत से ढके हुये होते हैं । परत को उतारने पर नीचे Stratum Mucosum नंगा हो जाता है जिसके लाल लाल दाने फैली हुई सिराओं के प्रदर्शक होते हैं । कभी कभी ये बीच में ठीक होने लगते हैं तो ये मण्डल मुद्रिकाकृति (Gyrate, Ring) दीखने लगते हैं । इस रोग में कण्डु दाह, स्राव आदि कोई कष्ट नहीं होता पर यह बड़ा चिरस्थायी रोग है तथा कुरूपता का कारण होता है तो भी चेहरे तथा हाथों पर यह रोग प्रायः नहीं होता ।

कारण तथा सम्प्राप्ति अर्थात् विकृति :-

इस रोग का कारण त्वचा में इस रोग की सहज पैतृक प्रवृत्ति या निर्बलता का होना है तथा उस पर किसी आभ्यन्तर या बाह्य विक्षोभ (Nervous तथा Toxic) का आ पड़ना ही लगता है । आभ्यन्तर विक्षोभक कारणोंमेंसे Tonsillitis में से रक्त द्वारा उसके जीवाणु का संक्रमण हो जाना या किसी मानसिक आघात का पड़ना कहा जाता है । अन्यथा इस रोग के कारण के विषय में अभी तक कुछ पता नहीं चला ।

इस रोग में अन्तश्चर्म (Papillae) में विद्यमान रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं अर्थात् इनमें शोथ (Oedema) होता है । रक्तवाहिनियों के आसपास Polymorphonuclear तथा Mononuclear नामक सेल अधिक संख्या में संचित होते हैं । अन्तश्चर्म में इस प्रकार

P.S.

(Keratin)

(शिर पर यह रोग हो तो वहां Keratin के ढेर दिखाई पड़ते हैं त्वचा में लाली नहीं होती। करतल तथा पादतल पर यह रोग Pustular Psoriasis के रूप में होता है। इन स्फोटों के फट जाने पर वहां भूरे से छिलकों वाले मण्डल दिखाई पड़ते हैं।

श्लैष्मिक शोथ (Oedema) के रहने से वहिश्चर्म की श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cells की तह) भी मोटी हो जाती है । अर्थात् उसमें अति वृद्धि (Acanthosis) की प्रक्रिया हो जाती है । इसलिये इस रोग से युक्त प्रदेश का वहिश्चर्म स्थूल होता है । निरोग स्थान का वहिश्चर्म साधारण पतला ही रहता है । इस स्तर के सेलों में उचित परिवर्तन नहीं होता । अर्थात् उनमें न्युक्लियाई या मींगियों के बने रहने तथा इनमें आर्द्रता और स्निग्धता के बने रहने से इससे बाहिर के दानेदार तथा स्वच्छ स्तर (Granular तथा Lucid Layers) तो बनते ही नहीं, वाह्य स्तर या शुष्क स्तर के सेल भी ठीक ठीक नहीं बनते। अर्थात् उनमें जेलाटीन की जैसी उत्पत्ति होनी चाहिये, वह नहीं होती । जिससे बाहर की स्तर के सेल परस्पर एक दूसरे से चिपके रहते हैं । इसी से त्वचा पर छिलके छाये हुए दीखते हैं । दूसरे शब्दों में बहिश्चर्म में Parakeratosis की विकृति होती है । इस वाह्य स्तर के सेल बाहर की गर्मी से सूखकर सुकड़ जाते हैं पर उनमें जो हवा बन्द हुई होती है उस पर से प्रकाश के प्रतिक्षिप्त होने के कारण ये छिलके श्वेत वर्ण दीखते हैं ।

नख मण्डल :-

यह रोग त्वचा के साथ साथ नखों में भी हो सकता है, तथा केवल नखों में ही हो सकता है । नख में यह रोग दो तीन रूपों में होता है । (१) नख क्रमशः रूक्ष, खुर्दरे, मोटे, पीतवर्ण तथा भंगुर होते जाते हैं । (२) नख अपने सिरों पर नख भूमि से पृथक होकर उठते जाते हैं । देखने से नख और नख भूमि के बीच में श्वेत परतों की तह दीखती है जिससे नख ऊपर को उठ सा जाता है । (३) उनमें छोटे छोटे पिन के सिरे जितने अनेक गढ़े पड़ते जाते हैं जो पहले नख मूल (Lunule) से पड़ने आरम्भ होते हैं । यह रोग एक दो या सभी नखों में हो सकता है । नख दद्रु एक दो नखों में होता है । इसके कारण नख कुछ श्याम वर्ण, खुर्दरा, धुंधला और भंगुर सा हो जाता है । Proriasis दोनों हाथों के नखों में आमने सामने एक सा होता है । नख दद्रु में ऐसा नहीं होता । यह मण्डल रोग कुछ एक में एक बार अच्छा हो जाने पर दुबारा नहीं होता । बहुत सों में कुछ काल बाद दुबारा भी हो जाता है ।

चिकित्सा :-

बहुत कम चिकनाई वाले तथा कम प्रोटीन वाले भोजन, सादे भोजन पर रहने से इसमें लाभ होता है प्रतीत होता है । साथ ही Tonsillitis हो तो उसका प्रत्युपाय अवश्य करना चाहिये । मानसिक आघात कोई प्रतीत हो तो उसका भी प्रत्युपाय करना चाहिये । औषधियों में से Enesol ½ ग्रेन के मांस द्वारा सप्ताह में १ बार १०-१२ बार देने से

Liquor Arsenicalis ३-१५ बूंदकी मात्रा में दिन में दो बार देने से (एक समय २-३ मास से अधिक नहीं देना चाहिये) या Vitamin B_{12} 1000 माईक्रो ग्राम की मात्रा में सप्ताह में दो बार १०-१५ बार देने से, या ५ सी० सी० Milk Injection या Autohaemotheraphy में १० सी०सी० रक्त को चार, पांच बार देने से इस रोग में लाभ होता देखा जाता है। पर दुबारा होने का भय फिर भी रहता है। Triamcinolone (Kenacort Squibb) से भी ऐसा ही होता है। इसे १६ मिलि० दैनिक मात्रा में २ सप्ताह दे के फिर १२ मि०दैनिक करके क्रमशः कम करना चाहिये। इस रोग की चिन्ता न करने से तथा प्रसन्न रहने से भी यह ठीक होने लगता है। इस प्रयोजन से $\frac{1}{4}$ ग्रेन Phenobarbitone भोजन बाद दिन में २ बार देना चाहिये। Largactil भी इसी प्रयोजन से दिया जा सकता है।

स्थानिक प्रयोग के लिये उपयोगी प्रलेप ये हैं।

या prepared coaltar 20. Zinc ox. 20. Paraffin soft ... [illegible]

रोग नया हो, तीव्र रूप में हो तो Calaminelotion या स्टार्च लोशन या २० प्र०श० Zinc Ox. प्रलेप में ५ प्र०श० Coaltar Solution मिला के लगाने चाहियें।

जब रोग मध्यम रूप (Subacute) में हो तब Coaltar १२, Zinc Ox. २४, Starch २४, Glycerin ३६, जल १२० भाग मिला के बनाया लोशन लगाना चाहिये, या जीर्ण (Chronic) रूप के लिये उपयोगी औषधियों की हलकी मात्रा में, Zinc Ox. की २० प्र०श० मलहम के साथ प्रयोग करना चाहिये। उदाहरणत: Salicylic Acid ४-६%, Sulphur Precip. १-५%, Coaltar Solu. ३-१० %, Ammon.merc. २-५%, Anthralin ·१-·२५% किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है। रोग पुराना (Chronic) हो तो Salicylic Acid को ६-१० %, Sulphur Precip. ६-१०%, Coaltar Solu. १०-२०%, Ammon Merc. ५-१० %, Anthralin ५-१०%, Chrysarobin ·५-१० %, का मलहम के रूप में प्रयोग करना चाहिये। कुछ एक सामान्य मलहमों का जिनका इस रोग पर प्रयोग होता है यहां उल्लेख किया जाता है। (१) Ammoniated mercury Ointment:-Paraffin Ointment (BP) १ औंस में Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Picis Carb. १ ड्राम। (२) Benzoinated Lard ६$\frac{1}{2}$ ड्राम, Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Acid Salicylic २० ग्रेन, Liquor Picis Carbonis १ ड्राम। (३) Chrysophanic Acid २० ग्रेन Liquid Paraffin २ ड्राम, Lanolin ६ ड्राम (यह कपड़े पर दाग लगा देती है), (४) Anthralin Ointment $\frac{1}{4}$ प्रतिशतक, (५) Sulphur and Salicylic Ointment प्रत्येक २-१० प्रतिशतक। (६) Dithranol Ointment $\frac{1}{4}$ या $\frac{1}{2}$ प्रतिशतक Soft Paraffin में (इसमें वांस

steroid प्रलेप को नाखों पर गलकर ऊपर Polythene finger stalls को लगा देना चाहिये। शिरज उपर्युक्त प्रलेपों को कुछ प्रबल करके लगाना चाहिये करतल पाद तलों पर steroid क्रीम लगाके Polythene gloves लगा दें। स्पंज के द्वारा १० मिनट तक

को बचाना चाहिये), रुग्ण नख पर भी Salicylic Ointment या किसी दूसरे उपर्युक्त मलहम का लेप लगाना चाहिये ।

Suberythema Ultra Violet Light Exposure.
--की चिकित्सा

Coeltar Solu४ औंस को ३० गैलन गर्म जल में मिला उससे स्नान करके फिर गर्म जल साबुन से स्नान करके पोंछ के Ultra-Violet Light. का ३ फुट की दूरी से ½ मिनट का एक्जपोज़र दिया जाता है । जितने से विशेष लाली न हो । उसके बाद चकत्तों पर Dithranol ½ ग्रे०, Salicylic Acid १० ग्रे०, जिंक आक्साइड, स्टार्च बराबर २,१२० ग्रेन Soft Paraffin १ औं० से बना मलहम लगा दिया जाता है । इसे चिकित्सा को तब तक जारी रखा जाता है जब तक चकत्ते लुप्त न हो जायें ।

Dithranol ... tar के मलहम को ... ultra violet light ... फिर स्नान कराके ... लाभ होता है।

आयुर्वेद में मण्डल कुष्ठ :-

त्वचा पर उठे हुए, श्वेत परत से छाये हुए, गाढ़े, चिकने, चिरस्थायी, स्थूल किनारों वाले, लाल रंग के, एक दूसरे के साथ जुड़े हुए, कृच्छ्र साध्य मण्डलाकृति चकत्तों को चरक ने मण्डल कुष्ठ कहा है तथा शरीर में विशेषत: कफ दोष या आम दोष की अधिकता से उत्पन्न होने वाला रोग कहा है । (चं०।७।१६।निदान ५।८)

आयुर्वेद में रस माणिक्य १-२ रत्ती की मात्रा में घृत, मधु के साथ अथवा ताल के श्वेर रस अर्थात् पलाश क्षार के मध्य में रखकर १२ घन्टे तक पकाये हरताल का ½,१ रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार दीर्घ काल प्रयोग इस रोग के लिये लाभदायक कहा गया है ।

चर्म दल :- Impetigo Contagiosa:-

बालकों के मुख पर सिर पर और कभी कभी शाखाओं की त्वचा पर बहुत उथले समीप समीप छोटे छोटे मटर के दाने जितने विस्फोट (Pox या Pustules) निकलते हैं जिनका द्रव एक दो दिन के अंदर अन्दर ही जमकर (Coagulate होकर) एक पीले से रंग के छिलके के रूप में परिणत हो जाता है । जिससे ऐसा लगता है कि वहां का चर्म दलित हो गया या गलाया है । इसीलिये इस विस्फोट को चर्म दल कहा गया है । इस छिलके को रुई से हटायें तो नीचे से और द्रव Serum निकलने लगता है, और शीघ्र ही फिर वहां छिलका (Crust) आ जाता है । निकलने वाले द्रव का जमकर छिलका सा छा जाना इस रोग का विशेष लक्षण है । एक विस्फोट होने पर समीप समीप अनेक विस्फोट निकलते जाते हैं । इसलिये इसे Contagiosa (संक्रामक) कहा जाता है ।

जब बहिश्चर्म में साधारण आघात लगकर क्षत हो जाता है तब कान, नाक आदि के स्राव में विद्यमान Staphylococcus Pyogenes

Aureus या कभी कभी Streptococcus Pyogenes के बाह्य शृङ्ग स्तर (Horny Layer) और दानेदार स्तर (Stratum Granulosum) के बीच में प्रवेश कर जाने से यह उथला सा विस्फोट उत्पन्न होता है जो प्राय: लोमकूप (Hair Follicle) के मुख पर स्थित होता है फिर विस्फोट के समीप थोड़ा सा क्षत होने पर भी जीवाणु संक्रमण होकर वहां भी विस्फोट बन जाता है। इस प्रकार समीप समीप अनेक उथले विस्फोट हो जाते हैं। इन शीघ्र टूट जाने वाले विस्फोटों के समीप की त्वचा में लालिमा, कण्डु, दाह आदि कोई लक्षण नहीं होते। प्रारम्भ में एक लोमकूप मुख पर वहिश्चर्म के बहिस्तर (Horny Layer) के नीचे उपर्युक्त जीवाणु की वृद्धि होकर जब एक कोलोनी बन जाती है तब वहां नीचे से अज्ञात रूप में रिस रिस कर रक्त का Serum तथा Leucocytes आ जाते हैं जिससे वहिस्तर या उससे नीचे की स्तर भी ऊपर को उठ जाती है। इस प्रकार वहिश्चर्म में एक उठा हुआ विस्फोट (Pustule) दिखाई पड़ने लगता है। शीघ्र ही फिर ऊपर उठा हुआ स्तर गलकर एक छिलका सा बन जाता है और फिर सूखकर झड़ जाता है। नीचे से नया स्तर आ जाता है एवं वहां कोई निशान नहीं रहता।

भेद :-

श्मश्रु पिडिका, श्मश्रु विस्फोट या Sycosis of the face या Folliculitis या Beard Impetigo:-

बड़ी आयु के व्यक्तियों के चेहरे पर चर्म दल का रोग होने पर उसमें विद्यमान Staphylococcus का संक्रमण दाढ़ी के बालों की जड़ों (Follicles) में हो जाता है एवं दूर तक फैल जाता है निर्बलता एवं व्यानिकरगाइ इसके Predisposing कारण प्रतीत होते हैं इसलिये जब यह रोग युवक के मुख पर हो तो इसकी रोक थाम जल्दी करनी चाहिये। क्योंकि नाई के उस्तरे के द्वारा यह रोग दाढ़ी के बालों में फैलता है इसलिये इसे Barber's Rash भी कहते हैं। यह श्मश्रु पिडिका का रोग नाक और मुख के बीच के प्रदेश या ठोढ़ी पर आरम्भ होकर सारे दाढ़ी के प्रदेश में फैल सकता है। इसमें Staphylococcus प्राय: नासिका में से आता है। पहले तो कुछ एक बालों की जड़ों में पीले से छिलकों से ढके हुए विस्फोट दीखते हैं जो फटकर फैलते नहीं इनमें दाह और कण्डु के लक्षण होते हैं। फिर नाई के उस्तरे के द्वारा इस रोग का संक्रमण पास पास के बालों में भी होता जाता है। इन श्मश्रु पिडिकाओं के आसपास की त्वचा रक्त वर्ण होती है तथा साधारण Impetigo की तरह ये शीघ्र ठीक न होकर देर में ठीक होती हैं।

चर्म दल Impetigo Contagiosa की चिकित्सा :-

विस्फोटों पर जमे हुए छिलकों को २ प्रतिशतक Sodium Bi-carbonate लोशन से या Normal Saline से या गर्म

Boric Lotion से या Hydrogen Perox. से हटाकर निम्नलिखित जीवाणु नाशक कोई लेप लगाना चाहिये ।

(१) Calamine Lotion या, Calamine Liniment या, Zinc Cream में Ammoniated Mercury २-५ प्रतिशतक मात्रा में मिलाकर लगाने से लाभ हो जाता है ।

(२) जल में Proflavine १००० में १ मिलाकर उसमें Tannic Acid ४ प्रतिशतक मिला सकते हैं ।

(३) Proflavine ½ ग्रेन, Zinc Oxide २० ग्रेन, Liquor Plumbi Subacet.Dil.१ ड्राम, जल ७ ड्राम ।

(४) जल में Gention Violet २ प्रतिशतक ।

(५) उबले हुए Distilled जल में Cooper Sulph. तथा Zinc Sulphate ४-५ प्रतिशतक ।

(६) Zinc Cream में ५ प्रतिशतक, Sulphadiazine ४-५ दिन ही लगायें ।

(७) २ प्रतिशतक Chlortetracycline Ointment या Chloramphenicol Ointment या कोई Antibiotic Cream ।

(८) Vioform Cream, Quindor या Steroxin ointment (Geigy)

(९) Penicillin. १००० Unit प्रति सी०सी० जल या प्रति ग्राम मलहम में (४-५ दिन ही लगायें) ।

(१०) Aureomycin ३ प्रतिशतक लेप ।

(११) Neomycin ५ मिलि० प्रति ग्राम मलहम, ५ मिलि० प्रति सी०सी० लोशन भी उपयोगी हैं । Neobacrin या Graneodin ointment)

(१२) Framycetin १½ प्र०श० मलहम या लोशन भी विशेष उपयोगी है ।

(13) रोगी शिशु हो तो Hexachlorophene 2% पाउडर (Sterzac) लगायें

श्मश्रुविस्फोट के लिये दाढ़ी को कैंची से ही बनाना चाहिये । तथा उपर्युक्त औषधियों का प्रयोग करना चाहिये । Sulphadimidine ½ ग्राम मात्रा दिन में ३ बार १-२ सप्ताह दे सकते हैं। भोजन फलप्रधान सादा लेना चाहिये।

आयुर्वेद में चर्म दल रोग :-

शरीर में कफ दोष तथा पित्त दोष बढ़े हुए हों अर्थात् पाचकाग्नि की न्यूनता के कारण तो आमदोष बढ़ा हुआ हो तथा आघात लगने से वहिश्चर्म Epidermis में पित्त दोष की वृद्धि हो तो वहां पूय जीवाणु का संक्रमण होकर जो उथले से स्फोट होते हैं उन्हें चर्म दल कहा है । इस विस्फोट का चर्म शीघ्र ही गल जाता है या दलित हो जाता है + इसलिये इसे चर्म दल कहा जाता है । बालकों के मुख तथा सिर पर ये चर्म दल स्फोट विशेषतः होते हैं । (च०।चि०।७।२४।३०)

कफ तथा पित्त दोष की शान्ति के लिये इस रोग में मंजिष्ठादि १ तोला का क्वाथ प्रातः पीना चाहिये तथा निम्बू क्वाथ या

त्रिफला क्वाथ से धोकर इन पर जात्यादि तेल, जात्यादि घृत का या अन्य कोई व्रण नाशक तेल या उससे बना लेप लगाना चाहिये ।

युवान पिडिका :- Acne Vulgaris:-

१५ से २०-२२ वर्ष की आयु के लड़के लड़कियों के चेहरों के लोम कूपों (Lenugohair Follicles) के मुख पर पिन के नक्के जितनी छोटी छोटी पिडिकायें दीखा करती हैं जिन्हें युवान पिडिका कहते हैं । कभी कभी ये पिडिकायें छाती तथा पीठ पर बहुत निकलती हैं, मुख पर अधिक नहीं। यों तो युवावस्था में साधारणत: ही लोम कूपों से स्नेह स्राव (Sebum) अधिक मात्रा में होता है अर्थात् उन्हें Seborrhoea की शिकायत रहती है। बहुत सम्भवत: जो भोजन मात्रा में अधिक लेते, व्यायाम कम करते हैं + विशेषत: जो खाण्ड, मिठाई, अन्न, चिकनायी, अधिक लेते हैं एवं जिनके मुत्र में अम्लीयता (Acidity) अधिक होती है, जिनके रक्त में खाण्ड की मात्रा कुछ अधिक होती है, साधारणत: जिनके शरीर में पचन (Oxidation) की मात्रा कम होती है उनमें यह रोग होता है । Androgen oestrogen का संतुलन इनमें ठीक नहीं होता ऐसा प्रतीत होता है। विटामिन ए. की न्यूनता भी कारण हो सकती है। जिनमें ऊर्मि मलावरोध आदि पेट सम्बन्धी लक्षण रहते हैं

लोमकूप में से स्नेह के अधिक अधिक होते रहने से लोम कूप की दीवार के सेलों में अति वृद्धि (Hypertrophy) हो जाती है । लोम कूप वहिश्चर्म के अन्तश्चर्म में अन्दर की ओर धंस जाने से बना होता है । उसके सेलों में अति वृद्धि होने से उनमें उचित परिवर्तन जो होना चाहिये नहीं हो पाता । दूसरे शब्दों में उनमें Parakeratosis या कैराटीन की निर्माण सम्बन्धी विकृति रहती है । लोम कूपों के मुख, शुष्क स्तर (Horny Layer) के विकृत सेलों के बहुत अधिक मात्रा में जमा हो जाने से बन्द हो जाते हैं । जिससे लोम कूप में स्नेह द्रव (Sebum) अधिक मात्रा में जमा हो जाता है । इस प्रकार लोम कूप के मुख पर एक दाना सा (Comedo) बन जाता है जो शुष्क स्तर के सेलों और सूखे हुए सीबम से बना होता है । आक्सिजन के प्रभाव से यह काला हो जाता है । इसके अन्दर भरा हुआ स्नेह द्रव क्योंकि एक विदाहक या फौरिन मैटर होता है उसके कारण लोम कूप में शोथ या सूजन हो जाती है जिससे लोम कूप में एक कोठ (Papule) बन जाता है । इसी को युवान पिडिका कहते हैं । इसके अन्दर Acne Bacillus भी पर्याप्त संख्या में रहते हैं । कभी कभी इसी जीवाणु के समान Staphylococcus Albus का भी इसके मुख में संक्रमण हो जाता है । जिससे इस पिडिका में पूय भाव (Suppuration) भी हो जाता है । तो भी ये जीवाणु इस रोग के कारण प्रतीत नहीं होते । कारण तो स्नेह स्राव (Sebum) के अन्दर किसी विकृति का होना या Seborrhoea प्रतीत होता है । रोगी के हाथों के द्वारा इस युवान पिडिका के खुल जाने पर वह स्थान स्नायु तन्तु (Scar.Tissue) के द्वारा पूर्ण कर दिया जाता है । जिससे वहां एक गढ़े का सा निशान पड़ जाता है । पर इसके वहिश्चर्म मात्र में

होने से यह निशान कुछ काल बाद मिट जाता है ।

साधारणत: ये पिड़िकायें चेहरे पर नाक के पास गाल पर, ठोढ़ी पर, नाक पर, मस्तक पर हुआ करती हैं । कभी कभी छाती तथा पीठ पर भी निकल आती हैं । देखने में रोगी का चेहरा अधिक चिकना, उसके चेहरे की वहिश्चर्म अधिक मोटी, रंग में कुछ भद्दी होती है । चेहरे पर देखने से अनेक लोम कूपों के मुख बाहिर की ओर उभरे दीखते हैं । उसके चेहरे पर स्वेद भी अधिक होता है ।

युवान पिड़िका की चिकित्सा :-

Seborrhoea या स्नेह स्राव की अधिकता को रोकने के लिये रोगी के भोजन में खाण्ड, अन्न, चिकनाई, तथा मसालों की मात्रा कम करनी चाहिये । प्रोटीन की मात्रा बढ़ानी चाहिये । खुली हवा में व्यायाम करने का आदेश देना चाहिये । अजीर्ण तथा मलबन्ध को दूर करना चाहिये । मन में अशान्ति रहती हो तो उसे भी दूर करना चाहिये । रोगी यदि जल में निम्बु का सेवन करे या किसी क्षार औषधि का सेवन करे या ~~किसी क्षार औषधि का सेवन करें~~ या लोह का सेवन करें तो भी लाभ होता है । Tetracycline (Achromycin) के २५० मिलिग्राम की मात्रा में ३ बार प्रतिदिन ४ दिन तक फिर २ बार फिर १ बार कुल २-३ सप्ताह लेने से भी इस रोग से लाभ होता है । अथवा २५० मिलि० मात्रा में इसे २ बार १ सप्ताह तक लेकर १ सप्ताह का अन्तर देकर फिर १ सप्ताह इसी प्रकार इसे लेने से लाभ हो जाता है । विटामिन ए ५० हजार युनिट प्रतिदिन तथा सी का २-३ मास प्रयोग करने से इस रोग में लाभ होता है ।

मुख पर के Seborrhoea को कम करने के लिये मुख को गर्म जल तथा साबुन से दिन में दो बार मल के धोना चाहिये । रात को धोने के बाद कोई ऐसा लेप जो लोम कूपों के मुखों पर विद्यमान विकृत सेलों का लेखन करें (Keratolytic हो) तथा लोम कूपों के लिये जीवाणु नाशक (Antiseptic हो, मल कर लगाना चाहिये । जैसे (१) Zinc Sulphate १ ड्राम, Sulphurated Potash १ ड्राम, Aqua Rosae ३० ड्राम (२) या Acne Lotion:- Sulphur Precipitated १ ड्राम, Zinc Sulphate १ ड्राम, ~~Oxide~~ Zinc Oxide $1\frac{1}{2}$ ड्राम, Sodium Borate $1\frac{1}{2}$ ड्राम, Acetone १ औंस, Camphor Water तथा Rose Water ४-४ औंस, मुख पर मलकर लगायें तथा इसके चूर्ण को रात भर मुख पर रहने देना चाहिये । अथवा Calamine ३० ग्रेन, Sulphur १० ग्रेन, Zinc Ox. ३० ग्रेन, ग्लिसरीन १० बुन्द, Soft Paraffin १ औंस मिलाकर मुख पर मलना चाहिये । Salicylic Acid Ointment (२ %) तथा Starch Glycerin (स्टार्च ८५ ग्राम, शुद्ध जल १७० सी०सी०, ग्लिसरीन ७४५ ग्राम) समान समान मिला के मुख

पर लगाना ठीक है । या Beta Naphthol १०, Sulphur S.५०, Soft Soap, Soft Paraffin प्रत्येक २५ ग्राम रात को लगायें या Kaolin १०, Sulphur १०, Zinc Ox.Ointment १०० भाग या Vioform (२-३%) Ointment लगायें । Steroids से इस रोग में कोई लाभ नहीं होता।

आयुर्वेद में युवान पिडिका :-

आयुर्वेद के अनुसार चेहरे के लोम कूपों में कफ दोष या आम दोष की वृद्धि हो जाने, अर्थात् उनमें विद्यमान स्नेह द्रव के कफ दोष से दूषित हो जाने तथा लोम कूपों की प्राण शक्ति (प्रतिरोधक शक्ति) के गिर जाने अर्थात् उनकी वायु के दूषित हो जाने से उनमें पिडिकायें निकल आती हैं । युवावस्था में इस रोग के होने से इसे युवान पिडिका कहा गया है । (सु०।नि०।१३।३४)

चिकित्सा :-

कफ दोष की शान्ति के लिये रोगी को एक गिलास नीम जल में कुछ लवण मिलाकर पीकर कभी कभी वमन ले लेनी चाहिये । मधुर अम्ल रस, कफ वर्धक आहार की मात्रा कम कर देनी चाहिये । व्यायाम करना चाहिये । नीम के क्वाथ का या मंजिष्ठादि का सेवन कुछ दिन करना चाहिये । इसके सेवन काल में थोड़ा घृत भी लेते रहना चाहिये । मुख को प्रातः सांय नीम के जल से तथा साबुन से भली प्रकार मल कर धोना चाहिये तथा रात को धोने के बाद उस पर लोध्र, धनिया, वचा का या जातीफल और श्वेत चन्दन का या धनिया, लोध्र, वचा, कुष्ठका, थोड़े दूध में बना लेप लगाना चाहिये । उसे कुछ देर बाद धो देवें/या सेंभल के कांटों को १ तोला की मात्रा में ५ तोला दूध में भिगोकर फिर रगड़ कर उसका लेप मुख पर १ घन्टा के लिये १-२ सप्ताह तक बहुत सबेरे या रात को लगाना चाहिये, १ घन्टा बाद जल से उसको धो देना चाहिये ।

कक्षा विस्फोट :- Herpes Zoster.

मध्यम आयु तथा बड़ी आयु के व्यक्तियों में एक ओर की कक्षा में यज्ञोपवीत की दिशा में छोटे छोटे पिडिका समूह निकल आया करते हैं । कक्षा के नीचे होने से इन्हें कक्षा विस्फोट कहते हैं । इस रोग का कारण एक सूक्ष्म विष (Virus) है जो या तो Chicken Pox का Pox Virus ही है या उससे बहुत कुछ मिलता जुलता विष है । बहुधा देखा जाता है कि कक्षा विस्फोट रोग के सम्पर्क में आये बालकों को सम्पर्क में आने के १४ दिन बाद विस्फोटिका रोग (Chicken Pox) हो जाता है । यह भी कभी कभी देखने में आता है कि जब बालकों में विस्फोटिका फैल रहा हो

यह भी संभव है कि Varicella का विष शरीर में पहले से सुप्त दशा में पड़ा हुआ

शरीर में मधुमेह का रोग आरम्भ हुआ हो तो उसके कारण भी यह विष प्रबल होकर इस रोग का कारण हो जाता है। हो सकता है यह विष बाहर से न आकर पहले कभी का शरीर में पड़ा रहता है और अब चोट - irradiation आदि के कारण जागृत हो उठता है।

तब उसकी विष के संक्रमण से बड़ी आयु के किसी व्यक्ति में कच्चा विस्फोट रोग हो जाता है। यह भी देखा गया है कि विस्फोटिका रोग में अच्छे हुए रोगी के रक्त का Serum कच्चा विस्फोट रोगी के रक्त में विद्यमान Virus विष को Agglutinate कर देता है। जिससे दोनों की विष में एकता या अति सदृशता स्पष्ट हो जाती है। विस्फोटिका का सूक्ष्म विष विस्फोट के अन्दर विद्यमान द्रव में होता है। तथा इस विष का सूक्ष्म कण १४५-२५० मिलि० माइक्रोन्स व्यास का होता है। इसी तरह कच्चा विस्फोट का सूक्ष्म विष भी विस्फोटों के सेलों की मींगी तथा प्रोटो प्लाज्मा में होता है तथा इतना ही सूक्ष्म होता है।

इसलिये दोनों रोगों का एक ही Virus कारण प्रतीत होता है। इ बालकों में जब इसका संक्रमण होता है तब उनमें इसके विपरीत प्रतिरोधक शक्ति के न होने से यह विष उसके सम्पूर्ण रक्त में संचार कर जाता है एवं विस्फोट सारे शरीर पर निकलते हैं। परन्तु जब इसी विष का संक्रमण एक बड़ी आयु के व्यक्ति में होता है तब क्योंकि उसमें इसके विपरीत प्रतिरोधक शक्ति होती है, उसके रक्त में तो यह संचार कर नहीं पाता परन्तु कभी कभी श्वास मार्ग या अन्न मार्ग की रुग्ण दीवार में विद्यमान Sympathetic नाड़ियों के द्वारा सुषुम्ना में पहुंच जाता है और वहां से किसी सौषुम्न नाड़ी विशेषत: किसी Thoracic या ऊपर की दो तीन Lumber Spinal Nerves में और कभी कभी किसी Cervical Nerves में या Trigeminal Nerve की तीसरी शाखा में पहुंचकर उसके Posterior Ganglion में रोहण कर जाता है। पहले पीठ पर किसी प्रकार की चोट लगने से जिस Posterior Spinal Root. में विशेष चोट पहुंचती है या Arsenic आदि किसी विषैली औषधि के सेवन से जिस पर विशेष दुष्प्रभाव पड़ा होता है, उसी सौषुम्न नाड़ी के Ganglion में इस विष को रोहण करने का अवसर मिल जाता है।

इस विष के कारण उसमें Mononuclear सेलों का संचय होकर तीव्र शोथ हो जाता है और बाद में उसके सेलों में क्षीणता Wallerion Degeneration या Necrosis या Sclerosis की प्रक्रिया हो जाती है। फिर इसमें से निकल कर ऊपर को जाने वाले अर्थात् Posterior Column में जाने वाले तथा नीचे की तरफ जाने वाले संज्ञा वाही नाड़ी सूत्रों (Peripheral Afferent Nerves) के Myelin में भी क्षीणता की प्रक्रिया हो जाती है। ठीक जैसे बाल पक्षाघात (Poliomyelitis) में सौषुम्न नाड़ी (Spinal Nerve) के अग्रिम मूल के सेलों में अर्थात् Anterior Horn Cells में क्षीणता होकर उसके परिणाम रूप उनसे निकलने वाले चेष्टा वाही सूत्रों में क्षीणता हो जाती एवं इससे

(Gasserian)

(Post herpetic Neuralgia)

सम्बन्धित मांस पेशियों में घात (Paralysis) हो जाता है। कभी ही इस रोग में Posterior Root से सम्बन्धित संज्ञावाही सूत्रों में क्षीणता के हो जाने से तत्पोषित त्वचा में वेदना का लक्षण हो जाता है। इस रोग का विष भी इन्हीं संज्ञा वाही सूत्रों द्वारा त्वचा तक पहुंचता है, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में त्वचा में शोथ हो जाता है और फिर बहिश्चर्म के श्लैष्मिक स्तर (Prikle Cell Layer) के सेल क्षीण हो जाते तथा क्षीण होकर अपने अन्दर द्रव के भर जाने से फूल जाते हैं जिन्हें Balloon Cells कहते हैं। इन्हीं के कारण बहिश्चर्म में बने हुए द्रव से भरे हुए स्फोट (Vesicles) दीखते हैं। विस्फोट का तल क्षीण हुए Prickle Cells से तथा छत बाह्यस्तरों (Corneum तथा Granulosum) से बनी होती है। द्रव में सेल, श्वेतकण, रक्तकण तथा Fibrin होते हैं।

लक्षण :-

रोगकी विष के प्रवेश के ७-१० दिन तक रोग प्रकट होता है। पहले रोगी को कक्षा के नीचे की त्वचा में किसी नाड़ी (Inter Costal Nerve) की शाखाओं की दिशा में अर्थात् Anterior तथा Lateral Cutaneous शाखाओं पर भारी दर्द प्रतीत होता है जिसमें दाह या चिम चिमाहट होती है। वृद्धों में यह तीव्र तरतर तथा अधिक काल स्थायी होता है। दो तीन दिन की दर्द और हलके ज्वर के बाद वहां एक लाल रंग का उठा हुआ चकत्ता निकल आता है जिस पर शीघ्र ही अर्थात् कुछ घन्टों में एक विस्फोटों का समूह प्रकट हो जाता है, जिन्हें देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। देखने में ये स्फोट दो मिलीमीटर व्यास के पिन के नक्के जितने छोटे छोटे बने हुऐ, जल सदृश द्रव से भरे होते हैं और जल्दी नहीं टूटते। इनके निकलने पर रोगी की वेदना कुछ कम हो जाती है। एक सप्ताह के अन्दर अन्दर इनका द्रव धुंधला हो जाता है और तब इनके टूट जाने से ये एक हो जाते हैं, और इन पर छिलके आ जाते हैं। विस्फोटिका रोग के समान २ सप्ताह में ये छिलके भी सूखकर झड़ जाते हैं। परन्तु बड़ी आयु के व्यक्तिओं में इनके सूखने के बाद भी वेदना (Post Herpetic Neuralgia) का कष्ट कई दिनों तक बना रहता है। यज्ञोपवीत के आकार में एक ओर की छाती एवं पीठ पर छोटे छोटे समूहों में होने वाले विस्फोटों को देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है। ये विस्फोट आगे या पीछे की ओर मध्य रेखा का उलंघन कभी नहीं करते। बड़ों में इस रोग में जैसा दर्द होता है बालकों में इस रोग के होने पर वैसा नहीं होता।

मस्तक विस्फोट :- Ophthalmic Herpes, Supra Orbital Zoster :—
Herpes Zoster ophthalmicus

पंचम मस्तिष्क नाड़ी (Trigemenal) के

Semilunar Ganglion में भी कभी कभी इस रोग के सूक्ष्म विष का संक्रमण हो जाता है । जहां से इस नाड़ी की प्रथम नेत्र सम्बन्धी शाखा (Ophthalmic) में इसका संक्रमण होकर Supraorbital Nerve के क्षेत्र में त्वचा पर अर्थात् एक ओर की आंख के ऊपर मस्तक से लेकर पीछे कपाल के प्रदेश तक विस्फोट समूह निकल आते हैं । यह रोग प्रायः मध्यमायु के बाद होता है तथा इसमें शूल विशेष होता है । विस्फोटों के सूख जाने के बाद भी बहुत समय तक शूल बना रहता है । यदि इसमें नाक की बाल में भी विस्फोट निकल आयें तो पहले से ही Cornea पर विस्फोट निकलने (Keratitis) की आशंका करनी चाहिये । जिससे नेत्र को हानि पहुंच सकती है । (Nasociliary शाखा में रोग होने से) साधारणतया यह मस्तक विस्फोट का रोग डेढ मास में ठीक हो जाता है । इस नाड़ी की द्वितीय शाखा में इस रोग का दुष्प्रभाव हो तो तालु में और तीसरी शाखा में रोग हो तो जिव्हा के अग्रिम दो तिहाई भाग पर गालों के अन्दर तथा ठोड़ी पर विस्फोट निकलते हैं ।

इसी प्रकार बाहुओं पर भी जो विस्फोट समूह एक रेखा में अर्थात् नाड़ी की दिशा में निकलते हैं वे भी Herpes ही होते हैं । (Zoster Brachialis) उपरली जांघ पर भी निकलते हैं । (Zoster Femoris).

सामान्य विस्फोट :-Herpes Febrilis-Herpes Labialis.

मलेरिया आदि ज्वरों के बाद कभी कभी मुख के छिद्र के आसपास या नासिका द्वार के समीप विस्फोट समूह निकलते हैं । इनका ना तो किसी नाड़ी के साथ सम्बन्ध होता ना ही इनमें वेदना का लक्षण होता है । इन्हें सामान्य विस्फोट कहते हैं । इसका कारण एक Virus है जो विस्फोट के द्रव में रहता है । पहली बार इस रोग के होने पर इस विष का Antibody रक्त में तो उत्पन्न हो जाता है तो भी यह रोग बार बार हो जाता है क्योंकि यह Virus Epithelium के सेलों के भीतर रहता है । जहां Antibody पहुंच नहीं पाता । पहले बाल्यावस्था में यह रोग मुख के अन्दर छालों के रूप में होता है । उनके ठीक हो जाने पर भी मुख के अन्तःस्तर में यह Virus देर तक बना ही रहता है । और फिर मुख के पास पास की त्वचा में संक्रमण कर जाता है । विशेषतः जब कि किसी रोग से प्रतिरोधक शक्ति कम हो गई हो । वहां के Prickle सेलों और श्वेतकणों की मृत्यु से यह विस्फोट बनता है ।

कक्षा विस्फोट Herpes की चिकित्सा :-

[illegible] Emetine hydrochlor. [illegible] Pituitrin [illegible] सी०सी० के दो दिन तक प्रति दिन एक या दो बार दे देने से वेदना तथा रोग की दीर्घता कम हो जाती है ।

[illegible] (Post herpetic) [illegible] Dihydroergotamine [illegible]

Aureomycin अथवा Chloromycetin पहले ३-४ दिन १-३ ग्राम दैनिक मात्रा में और फिर कुछ कम मात्रा में देने से भी लाभ होता है। Prednisolone की ३० मिलि० या Triamcinolone १२ मिलि० दैनिक मात्रा से भी १-२ दिन में लाभ हो जाता है। Cortisone या Corticotropingel के ४०-८० Units की मात्रा में मांस द्वारा देने से भी वेदना शान्त होती है। या इसकी आधी से एक मिलि० मात्रा को १ लिटर Dextrose Solution में मिला कर धीरे धीरे घन्टों में शिरा द्वारा देने पर भी दर्द शान्त हो जाता है। Autohaemotherapy अर्थात् ५-१० सी०सी० मात्रा में अपने रक्त के मांस द्वारा एक एक दिन छोड़कर तीन बार देने से भी दर्द शान्त हो जाता है। दर्द के लिये Aspirin १० ग्रेन २-३ बार या Codeine Phosphate $\frac{1}{2}$ ग्रेन दिया जा सकता है। Vitamin B_{12} के १००० माइक्रोग्राम की मात्रा में सप्ताह में एक बार कुछ एक सप्ताह तक देने से भी इस रोग में लाभ होता देखा जाता है। विस्फोटों के हट जाने पर भी होने वाली दर्द के लिये Vitamin B_1 की ५०० मिलिग्राम की मात्रा में शिरा द्वारा दे देना चाहिये।

विस्फोटों पर Zinc Oxide २० ग्रेन, Boric Acid २० ग्रेन, स्टार्च २०० ग्रेन मिलाकर लगाकर बांधें या स्फोटों पर Zinc Oxide तथा Talc Powder मिलाकर लगायें या Gauze रख कर Collodion से बन्द कर दें। Calamine Lotion या Burow's Solution २० में १ लगा सकते हैं। Tetracycline Ointment भी लगाई जाती है। नेत्र की रक्षा के लिये Boric Lotion ३-३ घन्टे पर डालना चाहिये। उपर्युक्त औषधियों का मुख द्वारा प्रयोग करना चाहिये। मुख के आसपास तथा उसी प्रकार शिश्न मुण्ड (Glans) अग्र चर्म पर होने वाले विस्फोट (H.Genitalis) के लिये Lead Lotion, Calamine Lotion, Starch Lotion उपयोगी है।

आयुर्वेद में कक्षा विस्फोट रोग :-

आयुर्वेदानुसार किसी सौषुम्न नाड़ी के पश्चिम मूल में वात पित्त प्रकोप या केवल पित्त प्रकोप जनित शोथ के हो जाने तथा उससे, संज्ञावाहिनी द्वारा सम्बन्धित त्वचा में निकले विस्फोटों को कक्षा विस्फोट कहा जाता है। सर्व शरीर में पित्त प्रकोप होकर विस्फोट हों तो उसे विस्फोट रोग या विस्फोट ज्वर कहते हैं। कक्षा वाहु कन्धे, मस्तक आदि के किसी एक देश पर हुए वात पित्त जनित या पित्त जनित विस्फोटों को जिनके कारण वहां पूय युक्त विस्फोट हो जाते और फिर वहां की त्वचा कृष्ण वर्ण हो जाती है तथा उस प्रदेश में वेदना भी विशेष होती है, कक्षा विस्फोट कहा जाता है।

(सु०।नि०।१३।१३, मा०नि० में वात विस्फोट)

इस रोग के लिये वात पित्त शामक कषाय जैसे द्विपंच मूलादि कषाय (दशमूल, रास्ना, दारुहल्दी, उशीर, ६ माशा धनिया, गिलोय, मोथा) पिलाना चाहिये। पित्त प्रकोप ही विशेष हो तो त्रिफला चूर्ण घृत मधु के साथ दिन में तीन बार चटाना चाहिये। विस्फोटों पर दशांगलेप, (सिरीष, यष्टी, चन्दन, सूक्ष्मेला, दोनों हल्दी, नेत्र बाला, कुष्ठ, जटामांसी, तगर) घृत के साथ या पंच वल्कल और दूर्वाक्वाथ में धोया हुआ घृत लगाना चाहिये। पित्त प्रधान विस्फोटों पर दूर्वादिघृत (दूब, बड़, गूलर, जामुन, साल, सप्तपर्ण, पीपल के कषाय तथा कल्क से बना घृत) लगाने से दाह शान्त हो जाता है।

कच्छु :- Scabies.

कच्छु रोग दूसरे रोगी के निकटतम सम्पर्क से अर्थात् छूत से होने वाला रोग है जिसका कारण एक चर्मयूका (Acarus Scabiei या Sarcoptes Scabiei) नाम का एक सुई के नके जितना कृमी है। मादा कृमि (Female Acarus) .४ मिलिमीटर लम्बा, अण्डाकृति का, चार टांगों वाला होता है। नर कृमि इससे कुछ छोटा होता है। गर्भिणी मादा रोम कूपों में प्रवेश करके बहिश्चर्म की बहिस्तर (Horny Layer) के नीचे नीचे चौथाई इंच के लगभग लम्बी तिरछी सी गुफा बनाकर उसमें प्रतिदिन दो तीन अण्डे देती रहती है और लगभग दो मास तक जीवित रहती है। इन अण्डों से तीन चार दिन में Larvae निकल आते हैं जो त्वचा पर घूमते हुए निकट के रोम कूपों में प्रवेश कर जाते हैं तथा इनमें जो मादा कृमि होते हैं वे वहां अण्डे देने लगते हैं। अण्डे से पूर्ण कृमि बनने में १०-१२ दिन लगते हैं। रात को बिस्तरे में पड़े हुए रोगी की त्वचा जब गर्म होती है तब ये कृमि गुफाओं में से त्वचा पर घूमते हैं। उस समय सम्पर्क में आये हुए दूसरे व्यक्ति की त्वचा में गुफा बना लेते हैं और उसमें धंस जाते हैं। त्वचा में प्रविष्ट होने के एक मास बाद इनकी गुफाओं के चारों ओर रक्त वर्ण चकत्ते प्रकट होते हैं जिनमें कोठ (Papules) प्रकट हो जाते हैं। गुफाओं के सिरों में इन चर्म यूकाओं (Itchmites) के मल के संचित हो जाने से वहां कोठ और फिर द्रव स्फोट (Vesicles) बन जाते हैं जिनमें कण्डू का कष्ट रहता है। रात को बिस्तरे की गर्मी में कण्डू विशेष होती है। खुजलाने से ये द्रव स्फोट पक कर पूय स्फोट (Pustules) बन जाते हैं। एक गुफा को खुरच कर उसमें विद्यमान Parasite को सूक्ष्म वीक्षक के द्वारा देखकर इस रोग का निश्चय हो जाता है।

शरीर के जिन प्रदेशों की त्वचा मृदु तथा पतली होती है और संघर्ष में अधिक नहीं आती, उसमें यह कृमि प्रवेश करता

है । इसीलिये कलाई के अग्रिम पृष्ठ पर आभ्यंतर पृष्ठ पर, अंगुलियों के बीच के आमने सामने के पृष्ठ पर, दोनों स्फिकों के बीच आमने सामने के पृष्ठों पर, दोनों उर्ध्व जंघाओं के बीच आमने सामने के पृष्ठों पर, शिश्न पर, अण्ड कोषों पर, तथा बगलों में यह कृमि विशेष तौर से अपनी गुफा बनाता है.। इसलिये इन्हीं प्रदेशों पर इस रोग के कण्डू युक्त स्फोट विशेष होते हैं । इन प्रदेशों पर कण्डू युक्त स्फोट हों, एक घर में कईयों को यह रोग हो, स्फोटों में से स्राव न हो, पामा रोग होने का इतिवृत न हो, तो इसी रोग का निश्चय करना चाहिये।

कच्छू Scabies की चिकित्सा :-

गर्मजल, साबुन तथा मोटे कपड़े की सहायता से रोग ग्रस्त प्रदेश को भलीप्रकार साफ करके पुंछकर गन्धक प्रलेप (५-१० प्र०श०) का लेप करें और इस प्रकार फिर तीन दिनबिना स्नान के ही इस प्रलेप के रात को १ बार या दिन में २ बार लगाते रहने से कच्छू कृमि या Acarus Scabiei ५-६ प्रलेप से ही मर जाते हैं । १ औंस इस गन्धक प्रलेप में ६० ग्रेन Balsam of Peru मिलाकर लगाने से भी यही लाभ होता है । इसके बाद स्नान करके सब पुराने कपड़ों को धोने के लिये दे देना चाहिये ।

Benzyl Benzoate को २५ ग्राम की मात्रा में २ ग्राम Emulsifying or Lanette Wax और १०० सी०सी० जल में है मिलाकर या इसके १ भाग को १ भाग Soft Soap और १ भाग Rectified Spirit में मिलाकर बनाये घोल (या Ascabiol) को चौड़े ब्रुश के द्वारा लगाकर सूखने देना चाहिये और फिर कपड़ा पहन लेना चाहिये तथा २४ ४८ घन्टे बाद साबुन से स्नान कर लेना चाहिये । इसके लगाने पर थोड़ी देर के लिये चरमराहट होती है जो शीघ्र हट जाती है । इस औषधि के एक दो लेपों से यह रोग निर्मूल हो जाता है या Gamma Benzene Hexachloride (Gammexane, Kwell) की १ % Cream को ३ रात लगाने से इस रोग में आराम आ जाता है ।

आयुर्वेद में कच्छू :-

सुश्रुत में स्फिक् प्रदेश तथा हाथ पांव की अंगुलियों के बीच की मृदु त्वचा पर होने वाले स्फोटों को कच्छू कहा है तथा उस पर कड़वे तेल में मिश्रित गन्धक के लगाने का ही विधान किया है ।

(सु०।नि०।५।१२)

शतारु:तथा दारुणक Seborrhoeic Dermatitis तथा Pityriasis Capitis (Dandruff).

त्वचा में विद्यमान स्नेह ग्रन्थियां, कपाल, भौंहों, नाक के समीप के प्रदेश, छाती तथा पीठ के ऊपर के मध्य प्रदेश की

त्वचा में अधिक मात्रा में पाई जाती हैं । गर्मी या पूय से यह स्नेह फैला होकर बाहर त्वचा पृष्ठ पर आ जाता है और स्वेद के साथ मिलकर एक घोल सा बन कर त्वचा की गर्मी से रक्षा करता है । इसमें सम्भवत: ऐसे Fatty Acids होते हैं जो जीवाणुओं एवं Fungi के लिये घातक होते हैं । जिससे यह स्राव त्वचा की रक्षा का कार्य करता है । साधारणतया इससे होने वाला स्नेह स्राव इतना स्वल्प होता है कि वह दृष्टिगोचर नहीं होता । परन्तु कुछ एक शिशुओं के सिर में स्नेह स्राव की अधिकता से सिर अधिक चिकना रहता है । युवावस्था के आने पर फिर स्वभावतः स्नेह स्राव की अधिकता के कारण कुछ एक युवक युवतिओं का चेहरा अधिक चिकना रहता है । सिर में स्नेह स्राव की अधिकता से केश कुछ चिकने और भीगे हुऐ से रहते हैं । मुख पर स्नेह स्राव की अधिकता से मुख की त्वचा खुरदरी तथा मैली सी दीखती है । इस स्राव की अधिकता के विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि जो शिशु अधिक दूध पीते हैं या जो युवक प्रोटीन और विटामिन कम लेते, कार्बोहाइड्रेट और स्नेह द्रव्य का सेवन अधिक करते हैं और व्यायाम सर्वथा नहीं करते, उनकी स्नेह ग्रन्थियों से स्नेह स्राव अधिक होने लगता है । कुछ एक मानसिक द्विविधा (Nervous Tension) से इसकी वृद्धि होती है ऐसा कहते हैं । यह अति स्नेह स्राव सामान्य स्नेह स्राव से विभिन्न प्रकार का होता है । क्योंकि सामान्य स्नेह स्राव त्वचा पर विदग्ध नहीं होता परन्तु अस्वाभाविक होने वाला यह स्नेह स्राव विदग्ध हो जाता है । त्वचा पर पाये जाने वाले यीस्ट सदृश जीवाणु, जिन्हें Pityrosporon कहते हैं इस दूषित हुए स्नेह स्राव में अति मात्रा में बढ़ने लगते हैं । रोम कूपों, केश कूपों, (Pilosebaceous Follicles) में इन कीटाणुओं के बढ़ने पर इनमें श्लैष्मिक (Catarrhal प्रतिक्रिया होती है जिसके परिणाम रूप में केश कूप सूज जाते हैं । कुछ एक केशों की जड़ के चारों ओर रक्त वर्ण सूक्ष्म कोठ (Papules) निकल आते हैं। एवं आधे या एक इंच व्यास के रक्त वर्ण चकते सिर पर निकल आते हैं । जिनके फैलने वाले किनारे रक्त वर्ण होते हैं और जिनके केन्द्र प्रदेश पर पीले से रंग के छिलके चिपके रहते हैं । ये छिलके वहिश्चर्म की वहि:स्तर के सैलों के मृत हो जाने तथा उनमें होने वाले स्नेह स्राव के सूख जाने से बनते हैं । नवयुवावस्था में कभी कभी " केश-भूमि- शोथ" का यह रोग प्रबल रूप में होता है जिससे केश भूमि रक्त वर्ण हो जाती है । केश कूपों से स्नेह स्राव अधिक होता है । सिर पर छिलके भी अधिक छाये होते हैं तथा सिर पर न्यूनाधिक खुजली भी रहती है । इस प्रबल रूप को पामा सदृश शतारु: (Seborrhoeic Dermatitis) कहते हैं । सिर पर से केश-भूमि-शोथ पीछे ग्रीवा पर, आगे मस्तक पर और कानों के पीछे के गढ़े में भी उतर आता है । जिससे वहां वहां की त्वचा रक्त वर्ण तथा शुष्क छिलकों से युक्त दिखाई

पड़ती है ।

दारुणक या Pityriasis Capitis या Dandruff. का रोग केश भूमि शोथ का ही एक उपद्रव है । अर्थात् उपर्युक्त रोग के चिरस्थायी रूप में रहने पर शरीर की या शिर के वहिश्चर्म की प्राणशक्ति क्षीण हो जाय तो Pityriasis Sporon तथा Staphylococcus Albus के संक्रमण का प्रतिकार ठीक ठीक नहीं होता । शिर के वहिश्चर्म की प्राण शक्ति के न्यून हो जाने से वहिश्चर्म में क्षीणता आ जाती है । सिर की वहिःस्तर शुष्क होकर फटने लगती है । परीक्षा करने पर पता लगता है कि बालों की जड़ों के आस पास शुष्क छिलके अधिक छाये होते हैं । अर्थात् यह केश भूमि शोथ केश कूपों के आसपास विशेष होता है (अर्थात् Perifollicular होता है) तथा केश कूपों में उपर्युक्त जीवाणुओं के संक्रमण का परिणाम होता है। ३० वर्ष की आयु में ही केश पतले पड़ते जाते हैं । वे कुछ रुक्ष और कान्ति हीन होने लगते हैं और अधिकाधिक मात्रा में गिरने लगते हैं । सिर की त्वचा में न्यूनाधिक लालिमा तथा कण्डू के लक्षण भी होते हैं । खालित्य रोग इसी रोग का एक परिणाम है जो पहले चोटी के प्रदेश से आरम्भ होता है । भोजन में Vitamin "A" तथा "सी" की न्यूनता से भी सिर के बाल गिर सकते हैं ।

श्मश्रुशतारु :- Seborrhoeic Sycosis या Folliculitis of the beard अर्थात् चेहरे पर स्नेह स्राव की अधिकता के कारण वहां के केश कूपों में पूयजनक जीवाणु संक्रमण करके उनमें शोथ और पूय (Folliculitis) उत्पन्न कर देते हैं । या दाढ़ी के प्रदेश में लाल फफोले निकल आते हैं जिनमें से कुछ स्राव होता है या जिन पर छिलके से जमे रहते हैं ।

अरुंषिका Seborrhoeic Dermatitis की चिकित्सा :-

मद्यादि तीक्ष्ण द्रव्यों तथा खाण्ड का सेवन कम कर देने से, मलबन्धता को हटाने से, मनो विनोद, मानसिक शान्ति, विश्राम तथा निद्रा लेने से, त्वचा से अधिक मात्रा में होने वाला स्नेह स्राव शान्त हो जाता है । इसके कारण उत्पन्न शोथ तथा पाक के लिये Sulphonamides (sulphadimidine) तथा Antibiotics (Terramycin) का सेवन लाभदायक रहता है । पर उनसे Seborrhoea पर कोई प्रभाव नहीं होता ।

स्थानिक चिकित्सा :-

सिर को Acid Salicylic १-२ प्रतिशतक लोशन से या साबुन के जल में थोड़ी स्प्रिट डालकर उससे धोना चाहिये । या Hexachlorophene के साबुन (cidal) से सप्ताह में २-३ बार धोना चाहिये। Soft Paraffin १ औंस में ५ ग्रेन गन्धक और २ बूंद Acid Carbolic मिलाकर लगाना चाहिये अथवा नारियल तेल ६ ड्राम, Soft

Paraffin २ ड्राम में १५ ग्रेन Acid Salicylic तथा १५ ग्रेन गन्धक मिलाकर बालों की जड़ में प्रतिदिन मलना चाहिये अथवा Soft Paraffin १ औंस में Ammoniated Mercury १० ग्रेन, Liquor Carbonis Detergens १ ड्राम मिलाकर उसीभली प्रकार लगाना चाहिये। Neomycin (१ग्राम में ५ मिलि०), Bacitracin (१ ग्राम में ५०० यूनिट) के लोशन तथा प्रलेप भी बड़े उपयोगी होते हैं। Gramicidin Ointment भी इसी प्रकार इस रोग के लिये प्रयुक्त होती है। दारुणक रोग (Dandruff) के लिये स्पिरिट १ औंस में एरण्ड तेल ५ बुन्द, Mercury Perchloride $\frac{1}{2}$ ग्रेन, Acid Salicylic २० ग्रेन, मिलाकर केश भुमि पर लगाना चाहिये। और फिर शिर को अच्छी तरह धोकर ऐसा नारियल का तैल जिसमें दो प्रतिशतक Acid Salicylic तथा Sulphur मिलाया हो, लगाना चाहिये। १ प्र० श० Hydrocortisone के १ प्र०श० घोल या मलहम से भी प्रबल रोग में आराम प्रतीत होता है।

तरुण सुलभ खालित्य (Androgenic Alopecia अथवा Calvities):-

कुछ एक परिवारों के पुरुषों में सिर के अगले भाग से बालों के झड़ जाने की प्रवृत्ति जन्म से आती प्रतीत होती है। अर्थात् इनके केश कूपों (Hair Follicles) में जन्म से ही कुछ निर्बलता आती है। फिर युवावस्था में जब इनके रक्त में Abdrogens की मात्रा बढ़ती है तो इनके निर्बल होने के कारण उनका प्रभाव सिरके केश कूपों तथा मुख के लोम कूपों पर अधिक पड़ता है अर्थात् सिर और मुख के केश कूपों में अति वृद्धि (Hyper Kerotosis) हो जाती और इनमें स्नेह स्राव (Sebum) की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होती है। पहले ये कूप (Pilo Sebacious Follicles) मोटे हो जाते हैं और फिर धीरे धीरे कठोर (Sclerosed) होते जाते हैं। यह भी सम्भव है कि जो लोग स्टार्च फैट आदि का तो अधिक मात्रा में उपयोग करते पर शारीरिक श्रम बहुत कम करते हैं उनमें इन कूपों में स्नेह स्राव अधिक उत्पन्न होने लगता है। जिससे इनमें अति वृद्धि होकर युवान पिडिका अथवा केशों के पोषण में न्यूनता आ जाने का कोई लक्षण हो जाता है। ऐसी अवस्था में Androgens का दुष्प्रभाव केशों पर विशेष होता है। यह देखा गया है कि Androgens के शरीर में बढ़ने के साथ साथ दाढ़ी, कक्षा आदि शारीरिक बाल तो बढ़ जाते हैं और सिर के बालों की वृद्धि कम हो जाती है। Androgens की उत्पत्ति अण्ड के अतिरिक्त Adrenal Cortex से भी होती है। इसलिये कई स्त्रियों में भी ४५ वर्ष की आयु के बाद जब Oestrogen की मात्रा कि जिसके कारण सिर के बालों में वृद्धि होती है घट जाती है तब Adrenal Cortex से उत्पन्न Androgens के कारण सिर के

बाल गिरने लगते हैं । सिर के बाल गिरने का यह रोग विशेषत: तरुण पुरुषों में होता है । स्त्रियों में नहीं होता । उनमें यह ४५ वर्ष की आयु के बाद ही हो सकता है ।

यह खालित्य ३०-३५ वर्ष की आयु के पुरुषों में चोटी तथा सिर के अगले भाग में प्रारम्भ होता है । मोटे बालों के गिर जाने पर पहले पतले और छोटे बाल आते रहते हैं । पर फिर जब रोम कूप कुछ कठोर हो जाते अर्थात् त्वचा का पोषण कम हो जाता है तब छोटे बालों की उत्पत्ति भी बन्द हो जाती है ।

मण्डल खालित्य (Alopecia Areata):-

कभी कभी युवकों में उनके सिर के पिछले भाग या सिर के बाजुओं पर या दाढ़ी के प्रदेश पर सहसा ही छोटे छोटे मण्डलों में खालित्य का रोग होता है । ऐसे खालित्य के अनेक मण्डल दिखाई पड़ते हैं । इन मण्डलों के किनारे के बालों को देखें तो वे ऊपर तो मोटे होते पर जड़ों की तरफ पतले होते हैं । कभी कभी तो मण्डलों में बाल उड़ते उड़ते सारे शिर [illegible] पर से ही उड़ जाते हैं तब इसे पूर्ण खालित्य (Alepecia Totalis) कहते हैं । (कभी Endocrine [illegible]) [illegible] सम्बन्धी विकृति से ऐसा होता जाता है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मानसिक आघात का दुष्प्रभाव लोम कूपों में जाने वाली अनैच्छिक नाड़ियों (Autonomic Nerves) पर ही विशेष पड़ता है जिससे उन कूपों का पोषण घट जाता है + अर्थात् उनमें Atrophy हो जाती है । शिरो दद्रु (Tineacapitis) में छिलके छाये हुए रहते हैं तथा उसमें छोटे छोटे बालों के ठुण्ड भी होते हैं + अत: उससे इसका भेद करना कठिन नहीं । स्पष्ट है कि यह रोग ऐसे व्यक्तिओं में जिन्हें वातिक या Sympathicotonic प्रकृति के कहते हैं, होता है । Rt.Kokade का कहना है कि यह रोग पुरानी अमीबिक प्रवाहिका के कारण भी होता है ।

खालित्य-इन्द्र लुप्त Alopecia की चिकित्सा :-

शिर पर हुए शतारु या Seborrhoea Cqpitis को रोकने के लिये जो औषधियां ऊपर दी गई हैं उनका प्रयोग महीनों तक जारी रखने से खालित्य को रोका जा सकता है । तरुण सुलभ खालित्य की कोई सन्तोष जनक चिकित्सा नहीं है । मण्डल खालित्य (A. Areata) के लिये ये स्थानिक उपाय किये जाएं तो लाभ हो जाता है ।

(१) Contharadin १ ग्रेन, Sp. Rosmarin 24 बूंद, Ol. Ric. १२० बूंद, Alcohol ६०% , ६ औंस से बनाया लोशन प्रतिदिन लगाना चाहि

(२) Liquor Epispasticus (जिसमें $\frac{1}{2}$% Cantharadin है) १२० बुन्द, Oil of Rosmary २४० बुन्द, Oil ~~xxxx~~ Amygdal १$\frac{1}{2}$ औं०, Spt.Camphor. २ औंस, Tincture Jabarand. १ औंस, Oil Rosae ८ बुन्द लगाया जाता है।

(३) Costor Oil ३ ड्राम, Methylaled Spirit ६ औंस, Laclic Acid ६ ड्राम।

(४) Phenol १%, Laclic Acid ४ मिलाकर।

(५) ·१% Prednisolone Ointment.।

(६) ·१% Triamcinolone Ointment.।

(७) Ultraviolet Light का साक्षात्कि प्रयोग।

आभ्यन्तर प्रयोग के लिये Prednisolone का १०-१५ मिलि० मात्रा में दैनिक प्रयोग करने से लाभ हो सकता है। इसी प्रकार Calcium Pantothenate के १५० मिलि० मात्रा में प्रतिदिन प्रयोग करने से भी लाभ हो सकता है। बाल समय से पहले श्वेत होने लगें तो उसमें भी इससे लाभ हो सकता है।

आयुर्वेद में शतारु: Seborrhoeic Dermatitis तथा दारुणक Pityriasis Capitis.

रोम कूपों तथा केश भूमि में कफ दोष की विशेष वृद्धि होने पर न केवल केश झिकने से रहते हैं पर केश भूमि में कृमियाँ (Pityriosporon) आदि विकारात्मक द्रव्यों के आने पर उनके विपरीत उसमें श्लैष्मिक प्रतिक्रिया होती है जिसके परिणाम रूप श्लैष्मिक-केश-भूमि-शोथ का रोग हो जाता है। इसमें Staphylococci का संक्रमण हो जाने पर रोम कूपों तथा केश भूमि में पित्त धातु की भी प्रतिक्रिया होती है जिससे सिर में छोटे छोटे से अनेक स्रावी व्रण निकल आते हैं जिन्हें "शतारु" Seborrhoeic Dermatitis या Eczema कहते हैं।

(च०।चि०।७।२६ तथा ३०।,सु०।नि०।१३।३०।३१।-३२)

दारुणक :-

केश भूमि में कफ प्रकोप जनित शोथ चिरस्थायी रूप में रहे तो कालान्तर में केश भूमि की प्राण शक्ति के मन्द हो जाने से उसके केश-मूल ढीले होकर झड़ने लगते हैं जिसे दारुणक कहते हैं। यह चिरस्थायी केश भूमि शोथ-रोग का एक उपद्रव है। यह रोग देर तक रहे तो सिर के केश झड़ने लग जाते हैं + जिसे इन्द्र लुप्त रोग कहा जाता है। सुश्रुत ने इन्द्र लुप्त रोग को त्रिदोष जनित रोग कहा है। अर्थात् रोम कूपों में श्लेष्म प्रकोपजनित अति वृद्धि, पित्त प्रकोप जनित पाक तथा वात वृद्धि जनित क्षीणता की प्रक्रिया

के हो जाने से रोम कूप बन्द हो जाते हैं जिससे नये रोम नहीं होते ।

शतारु: की चिकित्सा :-

शतारु: रोग कफ दोष प्रधान रोग है । इसलिये इसमें खाण्ड मिठाई आदि की मात्रा कम करके रोगी को शारीरिक व्यायाम करना चाहिये । सिर को लवण युक्त निम्ब जल से या नीम, खदिर, जामुन तीनों की छाल से बने कषाय से धोकर या सरसों की खली के जल से धोकर कुष्ठ चूर्ण को दूगुने घृत में मिलाकर सिर पर लगाना चाहिये । इसी प्रकार द्विव हरिद्रादि तेल, (दो हल्दी, नीम, त्रिफला, चन्दन, चिरायता का तेल)के लगाने से भी रोग शान्त होता है ।

दारुणक तथा इन्द्रलुप्त के लिये, सिर को क्षारीय गर्म जल से भली प्रकार धोने सिर पर स्वल्प कुष्ठ ~~बीजों~~ तथा सैन्धव से मिश्रित पियाल के बीजों का लेप या माष की दाल का लेप देने या तीक्ष्ण गुण (Karatolytic) तेल के लगाने से जैसे करवीरादि, या मालत्यादि तेल (चमेली पत्र, रक्त करवीर पत्र, चित्रक पत्र, करन्ज पत्र १-१ पाव का कल्क, तेल चार सेर, जल तेल से ४ गुणा) स्नुही दुग्धादितेल, (स्नुही दुग्ध, अर्क दुग्ध, भांगरा, लांगली, वत्सनाभ, रवी, इन्द्रवारुणी, सरसों, इनका कल्क मिलित १, गोमूत्र, अजामूत्र, तेल से २ गुणा, सरसों का तेल ४ भाग) के कुछ काल लगाने से बालों का गिरना बन्द हो जाता है । ये सब तेल विषैले हैं, । मुख को इनसे बचाना चाहिये ।

शिवत्र रोग :- Leucoderma:-

वहिश्चर्म की अन्त:स्तर Germinal Layer में विद्यमान Melanoblast (Melanin के बनाने वाले) सेलों में त्वचा के रंग (Melanin) को बनाने की स्वाभाविक प्रक्रिया यह है कि Tyrosine से Tyrosinase के द्वारा Copper की उपस्थिति में Dihydroxyphenyl Alanine बनता है और उससे तत्सम्बन्धी एक Ferment के द्वारा Melanin का रंग बनता है Oxidising पदार्थ गर्मी तथा सूर्य की Ultraviolet किरणें इसकी उत्पत्ति में सहायक होती हैं । यह प्रक्रिया कभी कभी Ascorbic Acid आदि के द्वारा मन्द हो जाती है जिससे वहां वहां की त्वचा श्वेत वर्ण हो जाती है । यह रोग बाल्यावस्था या नवयुवावस्था में ही प्रारम्भ हो जाता है । सम्भव है Melanoblasts को उत्तेजित करके इस रंग की कमी को पूरा किया जा सकता हो इस प्रकार सम्भवत: या तो कोई पदार्थ Tyrosindse को निष्क्रिय करके इस रोग का कारण हो जाता है या Copper आदि किसी की कमी से Tyrosindse ठीक ठीक बन नहीं पाता । Tyrosindse की उत्पत्ति ही न हो तो शरीर जन्म से ही श्वेत वर्ण होता है जिसे Albinism

Leudermol paint लगाये।

कहते हैं । इसके लिये बावची का तेल, जैतून के तेल में (१० में १) मिलाकर लगाया जाता है । या इसी Steralised Oil की १-१ बुन्द श्वेत दाग की त्वचा के भीतर (Intradermally) डाल दी जाती है । दाग बड़ा होता है तो उसके पृथक खण्डों में एक साथ नहीं पर दिन में ३-४ बार ठहर ठहर कर इंजेक्शन दिये जाते हैं । बावची के अतिरिक्त Meladine (Ammimo-jus Linn नामक पौदे से बना) के लगाने तथा खाने से भी इस रोग में लाभ होता देखा जाता है ।

बावची तैल की १० बुन्द प्रतिदिन पताशों में या दूध में डालकर मुख द्वारा कुछ काल तक देते रहने से भी इस रोग में आराम आने लगता है । इसकी कुछ बुन्दों को मधु से चटाया जा सकता है ।

आयुर्वेद में बावची का प्रयोग सोमराजी घृत, वाकुच्यादिवटी, (बावची, नीम बीज, त्रिफला समान समान की गोली) आदि के रूप में होता है । गोली को खदिर तथा आंवले के कषाय से दिया जाता है । यह भी कहा जाता है कि यदि Copper के बर्तन में रखा [illegible] जल पिया जाय तो यह रोग ठीक होने लगता है ।

आयुर्वेद में श्वेत दागों पर वाकच्यादिवर्ति, (वाकुची ४, चित्र मूल २, हरड़, कासीस, हरिताल प्रत्येक १ भाग, मिलाकर भृंगराज रस से बनाई वर्ति) या बावची ४, कृमर्द २, गैरु १, भाग की उसी रस से बनी गोली का जल में बना लेप लगाया जाता है । या बावची १० तो०, कृमर्द बीज ५ तो० पीस कर ३ सेर दूध में पकाकर उसकी दही से बने मक्खन को लगाना चाहिये । बावची बीज, कुष्ठ, चित्र मूल, हरड़, मनसिल, विडंग, समान समान के कल्क से ४ गुणा तेल और ८ गुणा गोमूत्र में बना तेल भी लगाने से श्वेत दाग को कुछ काल बाद श्याम वर्ण करता है ।

दद्रु मण्डल :- Ring Worm, Tinea.

दद्रु की वह फुई जो सिर की बालों वाली त्वचा में फैलती है Microsporum (छोटी बीजों वाली) श्रेणी की होती है और बहुधा Microsporumaudouini होती है । यह फुई बालकों के शिरो दद्रु में पाई जाती है । दूसरी श्रेणी की फुई Trichophyton (Hair-Plant) बड़े व्यक्तियों के शिर, श्मश्रु, त्वचा, नख आदि में पाई जाती है । तीसरी श्रेणी की फुई Epidermophyton बालों वाले प्रदेश में न होकर केवल त्वचा में पाई जाती है । दद्रु की यह फुई छूत के द्वारा रोगी से दूसरे व्यक्तियों में संक्रमण कर जाती है तथा नमी और गर्मी की उपस्थिति में रोहण करती है । इसीलिये यह सिर में, जांघिये के प्रदेश में या हाथ पैर की अंगुलियों के बीच बीच के प्रदेश में अधिकतः संक्रमण करती है । जब Tricho-phyton. नामक फुई, ग्रस्त हुये केश के अन्दर पाई जाय तो उसे

Endothrix Trichophyton कहते हैं । जब यह ग्रस्त केश के बाहर पाई जाय तो इसे Ectothrix Trichophyton कहते हैं । जब ग्रस्त केश के अन्दर बाहर दोनों ओर पाई जाय इसे Ecto-endothrix कहते हैं ।

शिरो दद्रु :- Tinea Tonsurans, Ring Worm of the Scalp. Tinea Capitis, Microsporosis.

बालकों में Microsporum Audouini के शिर के वहिश्चर्म के वाह्य कठोर स्तर (Horny Layer) में फैलने तथा उससे केश कूपों के वहिस्तर में नीचे फैलकर केशों में फैल जाने से और उसकी विष के विपरीत वहिश्चर्म में प्रतिक्रिया के होने से उत्पन्न होता है । शिर की श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cell Layer) में शोथ होने से सेलों में केराटीन की उत्पत्ति ठीक नहीं होती (Parakeratosis) जिससे वहिश्चर्म का वहिस्तर शुष्क होकर छिलकों में परिवर्तित हो जाता है, और केशों पर इस फुई के लग जाने से वे पतले, कठोर एवं भंगुर होकर टूटे हुये बालों के ठुन्ड वाले अनेक गोलाकार कण्डूयुक्त मण्डल दिखाई पड़ते हैं जिन्हें शिरोदद्रु कहते हैं । T. Endothrix. से होने वाले दद्रु मण्डल में सारे बाल ग्रस्त नहीं होते, जो होते हैं वे रोम कूप के मुख पर से टूटे होते हैं । शिरो दद्रु बालकों में फैलने वाला रोग है । अत: रोगी बालक से दूसरे बालकों को बचाना चाहिये । नवयुवावस्था में पहुंचने पर क्योंकि त्वचा से होने वाले स्नेह स्राव Sebum की उत्पत्ति बढ़ जाती है और सम्भवत: उनके Fatty Acids के इस Fungus के लिये घातक होने से यह वहां रोहण नहीं कर पाता । बालकों का शिरो दद्रु बड़ा जिद्दी रोग है + देर तक रहता है । बहुधा तो युवावस्था के आने तक बना रह सकता है ।

वंक्षण दद्रु :- Tinea Cruris, Dhobie Itch.

युवक पुरुषों में उनके जांघिये के प्रदेश की त्वचा विशेषत: ऊर्ध्व जंघाओं के अन्दर के पृष्ठों की त्वचा पर जो अण्डकोष के सम्पर्क में रहती है Epidermophyton Inguinale नामक फुई के संक्रमण से भूरे, लाल से रंग के, गोलाकार चकते निकल आते हैं जिनके किनारे अधिक लाल, उभरे हुये होते तथा कोठों, द्रव स्फोटों, या पूय स्फोटों से युक्त होते हैं । इन मण्डलाकृति चकतों में जो किनारों से बढ़ते जाते हैं कण्डू प्रबल होती है । ये दद्रु सीवन प्रदेश पर, स्फिकों के बीच, गुदा के समीप समीप तथा अण्डकोष पर भी हो जाते हैं । दोनों ओर वंक्षण प्रदेश में फैलकर ऊपर नाभि तक की त्वचा में फैल जाते हैं । इन मण्डलों के किनारे स्पष्ट होते हैं जिससे इनकी पहचान सुगमता से हो जाती है ।

त्वग्दद्रु, हस्तपाददद्रु :- Tinea Circinata (Circular) Tinea Corporis.

बालकों तथा युवकों में कभी कभी छोटे छोटे मुद्राकृति दद्रुएक दो की संख्या में ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ, चेहरे या हाथ पांव पर निकल आते हैं । यह केन्द्र में अच्छा होता जाता है । अर्थात् इसके उठे हुए तथा दाद्र कोठों या स्फोटों से युक्त किनारे फैलते जाते हैं । यह त्वग्दद्रु Trichophy-ton. या Epidermophyton या Microsporon किसी फुई से हो सकता है ।

श्मश्रु दद्रु :- Tinea Barbae, Tinea Sycosis, Ring Worm of the Beard.

दाढ़ी के बालों में शुष्क छिलकों से छाये हुए मुद्राकृति मण्डल होते हैं जिनमें टूटे हुए बालों के ठूंठ होते हैं । इन्हें शुष्क श्मश्रु दद्रु (Dry, Scaly Type) कह सकते हैं । यह Endothrix Trichophyton के गन्दे उस्तरे के द्वारा संक्रमण करने से होता है । दाढ़ी या श्मश्रु प्रदेश में पूय युक्त श्मश्रु दद्रु (Suppurative Type) भी होता है । जिसमें दद्रु मण्डल के किनारों पर पूय युक्त स्फोट होते हैं । यह दद्रु Ectothrix Trichophyton के संक्रमण से होता है जो फुई कि अधिकतः पशुओं में पाई जाती है ।

नख दद्रु, कुनख रोग :- Tinea Unguium, Ring Worm of the Nails, Onychomycosis Trichophyton या Epidermophyton.

किसी फुई के नख भूमि में संक्रमण कर जाने और फिर उसके नख में फैल जाने से पहले तो नख भूमि मोटी हो जाती है फिर नख कुछ श्वेत, भूरे रंग का, चाक का पिण्ड सा, भूमि से ऊपर उठ जाता है । नख के अग्रिम सिरे के नीचे छिलकों का एक श्वेत काला सा ढेर (Hyperkeratotic Mass) दीखता है । देखने में नख धुन्धले से रंग का, खुरदरा तथा भंगुर हो जाता है । इस प्रकार एक नख में आरम्भ होकर अनेक नखों में यह रोग हो सकता है । पर दोनों ओर यह रोग एक सा नहीं हुआ करता । यदि नख रोग अग्र भाग से प्रारम्भ होकर पीछे की ओर बढ़ा हो तो उसे नख दद्रु ही समझना चाहिये । Proriasis में नख विवर्ण हो जाता है । गढ़े वाला होता तथा मोटा हो जाता है । उससे नख दद्रु का भेद करना चाहिये । गढ़े पड़ जाना इस रोग का भेदक लक्षण है ।

दद्रु मण्डल की चिकित्सा :-

शिरो दद्रु Tinea Capitis की चिकित्सा :-

दो दो सप्ताह बाद कैंची से बाल कटाते हुए सिर को गर्म जल साबुन से धोकर साफ रखना चाहिये । इस प्रकार प्रातः सांय दो बार धोने और सुखाने के बाद १ औंस Soft Paraffin में Acid Salicylic २० ग्रेन, Benzoic Acid ४० ग्रेन, मिला के मलना चाहिये । या

Ammoniated Mercury का ५-१० प्रतिशतक की ताकत का प्रलेप मलना चाहिये। या Undecylenic Acid ५%, Zinc Undecyleninate २०%, की क्रीम (Mycota Cream) के लगाने तथा Griseofulvin (Griful-vin या Fulvicin) नामक फुई को मारने वाले Antibiotic .२५ ग्राम के बालकों में दैनिक मात्रा में देने से तथा इस चिकित्सा को ३-४ सप्ताह जारी रखने से दद्रु को नष्ट किया जा सकता है।

वंक्षण दद्रु Tinea Cruris या Inguinal Ring Worm की चिकित्सा:-

स्नान करने के बाद जांघिये के प्रदेश को गीला नहीं रहने देना चाहिये। व्यायाम या धूप में चलने के बाद स्वेद आने पर भी उस स्वेद को भलि प्रकार पूंछ देना चाहिये तथा इस प्रदेश पर स्पर्श करने वाला वस्त्र कठोर न होकर मृदु होना चाहिये।

इन पर उपर्युक्त Undecylenic Acid तथा Zinc Undecylenate का बना प्रलेप लगाना चाहिये। या Acid-Salicylic ३ प्रतिशतक, Acid Benzoid. ५ प्रतिशतक का Soft Paraffin. में बना प्रलेप लगाते रहने से भी लाभ होता है। Dithranol का १ प्रतिशतक मात्रा में Soft Paraffin में बना प्रलेप ५-७ दिन, दिन में २ बार लगाना बड़ा उपयोगी है। पर कपड़े पर लगा इसका दाग मिटता नहीं। उपर्युक्त Undecylenic Acid का प्रलेप दिन में २ बार लगाना चाहिये

हस्त पाद दद्रु :- Tinea Corporis या Tinea Circinata:-

Acid Salicylic तथा Benzoid Acid दोनों की ३-४ प्रतिशतक मात्रा में बना प्रलेप अथवा Acetone और Spirit प्रत्येक ४-४ ड्राम मिला उसमें Acid Salicylic तथा Acid Benzoic १-१ ड्राम मिलाकर बनाया लेप दिन में दो बार लगाना चाहिये। Dithranol का १ प्रतिशतक ताकत का प्रलेप भी शीघ्र लाभदायक होता है। Undecylenic Acid से बना उपर्युक्त प्रलेप लगाना चाहिये। Griseofulvin का मौखिक प्रयोग भी लाभदायक है।

श्मश्रु दद्रु Tinea Barbae या Tinea Sycosis की चिकित्सा :-

दाढ़ी के बालों में छाये छिलकों को साबुन तथा गर्म जल से अथवा स्टार्च पोल्टीस बांधकर साफ करना चाहिये। बालों को कैंची से काटकर छोटा कर देना चाहिये। इस पर Acid Salicylic. तथा Benzoic Acid. की ३-४ प्रतिशतक ताकत का बना प्रलेप लाभदायक है अथवा Ammoniated Mercury का १ प्रतिशतक ताकत का मलहम लगाना चाहिये। Griseofulvin १ ग्राम दैनिक मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये।

नख दद्रु Tinea Unguium की चिकित्सा :-

Acid Salicylic तथा Acid Benzoid दोनों के ६-६ प्रतिशतक ताकत का प्रलेप नखों पर लगाकर ऊपर Strap लगा देना चाहिये । ताकि प्रलेप का प्रभाव बना रहे और फिर नख के नरम हो जाने पर उसे छील के निकाल देना चाहिये । अथवा इन दोनों को बराबर बराबर और Acetone Spirit के बने घोल में १२ % मात्रा में मिला के दिन में दो बार नख पर लगा देना चाहिये । ऊपर Soft Paraffine लगा देना चाहिये अथवा Chrysarobin का २-४ प्रतिशतक ताकत का प्रलेप लगाकर बांधा देना चाहिये । या उसका Chloroform में ४ प्र०श० घोल दिन में २ बार लगायें या Diamthazol Dihydrochloride का ५ प्र०श० (Asterol) प्रलेप दिन में दो बार लगाना चाहिये ! Griseofulvin (ग्लैक्सो)- ~~एक Penicillin~~ २५० मिलि० की गोलियों के रूप में दिन में ४ बार २-४ सप्ताह तक देने से सब प्रकार के दद्रुओं को मिटाती है । नख दद्रु के लिये इस औषधि का ४-५ मास प्रयोग जारी रखना चाहिये । यदि नाखून को छील कर निकाल दें तो दिन में दो बार प्रयोग करने से होगा शान्त हो जाता है।

आयुर्वेद में दद्रु :-

आयुर्वेदानुसार त्वचा में कफ दोष या पित्त दोष की वृद्धि हो और वहां पर दद्रु के बीज या फुई का संक्रमण हो जाय तो इस फुई के विपरीत वहिश्चर्म में कफ धातु या पित्त धातु की प्रतिक्रिया होकर जो मण्डलाकार रक्त वर्ण कण्डू युक्त छोटी छोटी पिडिकायें निकलती हैं उन्हें दद्रु मण्डल कहते हैं ।

शिर पर दद्रु मण्डल व्यापक रूप में हो तो चक्रमर्द बीजों में कुष्ठ चतुर्थांश मिला ~~[illegible]~~ सिरके में पीस कर उस कल्क को सिर पर बांधना चाहिये ! दद्रु मात्र पर लगाने के लिये कुछ उपयोगी योग ये हैं । १.. गन्धक, सुहागा, एक एक तोला, रस कपूर, ३ माशा, मिलाकर बनाया चूर्ण ।, २.. गन्धक, सुहागा, कपूर, चन्दन समान समान का चूर्ण ।, ३.. गन्धक, सुहागा, तुत्थ का चूर्ण ।, ४.. सिन्दूरादि प्रलेप (सिन्दूर, दोनों जीरे, दोनों हरिद्रा, मनसिल, मरिच, गन्धक, पारद) आदि किसी चूर्ण को दो गुणा धोये हुए घृत में मिला कर लगाने से दद्रु नष्ट हो जाता है। फटकरी तथा सुहागे की खील मिला के लगाने से भी दद्रु शान्त होता है ।

(च०।चि०।७।श्लो० २३।, सु०।नि०।५)

क्टिभ :- Chronic Lichen Planus

कारण तथा लक्षण :- पहले पहल Wilson (१८६७) ने इस रोग का वर्णन किया । इसके कारण को ठीक स्पष्टता नहीं मिला संभवतः नाड़ी मण्डल के विशोषण (Exhaustion) तथा सम्भवत: अजीर्ण जनित किसी विष द्रव्य (Intestinal Toxaemia) या किसी Virus के या किसी विषैली

औषधि के अन्तश्चर्म की सूक्ष्म रक्तवाहिनियों में अधिक मात्रा में आ जाने से वे शिथिल होकर फैल जाती हैं। जिससे कहीं कहीं पर अन्तश्चर्म में शोथ हो जाता है। क्योंकि देखा जाता है कि अन्तश्चर्म के इस प्रदेश में (Papillae में) Lymphocytes तथा Round Cells बहुत अधिक मात्रा में संचित हुए होते हैं। इस शोथ युक्त अन्तश्चर्म के बाहर की श्लैष्मिक स्तर (Mucous Layer) तथा दानेदार स्तर (Granular Layer) स्थान स्थान पर अधिक मोटी हो जाती हैं। (Suprapapillary Acanthosis) इस प्रदेश की बहिस्तर (Horny Layer) भी मोटी हो जाती है अर्थात् उसमें जेलाटीन की मात्रा बढ़ जाती है (Hyper Keratosis से युक्त होती है) विष के दुष्प्रभाव से ही अन्तश्चर्म का लचकीला अवयव (Elastic Tissue) नष्ट हो जाता है। व कुछ कठोर हो जाता है। वहिश्चर्म के वहिस्तर के अन्दर अतिवृद्धि हो जाने से अग्रबाहु के अग्रिम पृष्ठ, कलाई तथा अधो जंघाओं के अग्रिम पृष्ठ, ऊर्ध्व जंघाओं के आभ्यन्तर पृष्ठ तथा पिण्डलियों की दोनों ओर की त्वचा पर, गुप्त इन्द्रियों की त्वचा पर तथा चेहरे और सिर को छोड़कर शेष किसी भाग की त्वचा पर भी पिन के नक्के के बराबर के १ मिलिमीटर व्यास के श्याव वर्ण अर्थात् नीले से, लाल रंग के, चपटे सिरे वाले, अनेक कोण वाले, न अधिकमृदु न अधिक खुरदरे, त्वचा पर उठे हुऐ, पृथक पृथक दीखने वाले अनेक शुष्क कोठ (Papules) दीखते हैं। ऊपर से देखने से इनके ऊर्ध्व पृष्ठ चमकीले से होते हैं। इनमें से कुछ एक कोठ परस्पर सम्मिलित भी हो जाते हैं और उनके मिलकर इकट्ठे हो जाने से इनके उठे हुए चकत्ते बन जाते हैं। त्वचा के Papillae में सेलों के अति मात्रा में एकत्रित होने से येह कोठ -Papules- उभरे हुए दीखते हैं तथा बाहर बाहर के स्तर में जेलाटीन के अधिक हो जाने से इनमें चमक आ जाती है। इसमें साधारण सी कण्डू होती है और कभी कभी वह भी नहीं होती। ये कोठ एक हाथ पर हों तो दूसरे हाथ पर भी अवश्य होते हैं अर्थात् शरीर में दोनों ओर होने वाला यह रोग है। ३०-३५ वर्ष की आयु के बाद ६० वर्ष की आयु के बीच में जब त्वचा की प्राण शक्ति कुछ हीन होनी आरम्भ होती है तब यह रोग होता हुआ देखा जाता है। स्वेद प्रणालियों तथा स्नेह ग्रन्थियों की प्रणालियों के मुखों पर के वहिस्तर में यह अति वृद्धि विशेषतया पाई जाती है। अग्रबाहु और कलाई के अतिरिक्त कभी कभी ये किटिम या श्याम रक्त वर्ण कठोर कोठ घाड़ पर हथेलियों और तलुओं पर भी निकलते हैं जहां ये अधिक कठोर एवं परुष (Hyperkeratotic) होते हैं। जब केश कूपों (Hair Follicles) के ऊपर की वहिस्तर में अति वृद्धि होकर एक या अनेक कोठ कांटे या थम्भे के रूप में दीखते हैं तब उसे Lichen Planopilaris या Follicular Lichenplanus अर्थात् रोम-कूप सम्बन्धी किटिम कहते हैं। इसी प्रकार जब निम्न शाखाओं पर इन कोठों

के इकट्ठे हो जाने से कुछ ऊपर उठे हुऐ, सुर्री, कठोर, चपटे से मस्से की शक्ल के कांटे बन जाते हैं तब उन्हें Verrucous या Hypertrophic Lichen Planus अर्थात् मषक सदृश किटिभ रोग कहते हैं। ये ६ मास से लेकर कई वर्षों तक रहते हैं और एक बार हटकर दुबारा भी हो सकते हैं।

किटिभ Lichen Planus की चिकित्सा :-

नाड़ी विक्षोभ से यह रोग होता है अतः मनः प्रसादक औषधि

~~मानसिक शान्ति~~ से इस रोग में लाभ होता है। इस उद्देश्य से Phenobarbitone $\frac{1}{2}$ ग्रेन दिन में २ या ३ बार देना चाहिये। दूसरी चित्त शामक Tranquilizer औषधियों से भी लाभ होता है। रोगी की प्राण शक्ति को बढ़ाने के लिये उसे Vitamin B Complex बड़ी मात्रा में कुछ काल देना चाहिये। Arsenic से भी इस रोग में लाभ होता प्रतीत होता है। Liquor Arsenicalis Hydrochlor ५ बून्द, जल १ औंस में मिलाकर दिन में तीन बार दे सकते हैं। Enesol (Mercury Salicyl Arsenate ·०६ ग्राम, जल २ सी०सी०) के मांस द्वारा सप्ताह में दो बार कुछ मास तक देने से इस रोग में आराम आता है। Corticosteroids या के २ सप्ताह तक देने से तथा Hydrocortisone Corticotropin १ प्र० श० मलहम या Cream के लगाने से भी इसमें शीघ्र लाभ होता है। या Intra lesional injection

आयुर्वेद में किटिभ रोग :-

आयुर्वेदानुसार बहिश्चर्म के कोष्ठकों में वात, कफ प्रकोप जनित, जो कुछ श्याम वर्ण, रुक्ष, कोठ समीप समीप निकल आते हैं उन्हें किटिभ कहा गया है। बहिश्चर्म के सेलों में कफ प्रकोप से तो अतिवृद्धि होती है तथा शरीर में वायु दोष की वृद्धि से इन सेलों में रुक्षता, कर्कशता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। रस माणिक्य या मल्ल सिन्दूर का एक रत्ती की मात्रा में कुछ काल तक दिन में दो बार मधु, घृत के साथ प्रयोग किया जाता है। (च०।चि०।७।२२, सु०।नि०।५।१२)

कण्डू Pruritus-Neurodermatosis तथा गज चर्म अर्थात् Lichenification.

व्यापक या नवीन कण्डू रोग को पिडिका युक्त कण्डू रोग (Papular Pruritus) कह सकते हैं। शाखाओं के संघर्ष में आने वाले बहि: (Extensor) पृष्ठों, पेट के निम्न पृष्ठ तथा बैठने के प्रदेश पर कण्डू युक्त सूक्ष्म पिटिकायें निकला करती हैं। त्वचा के संज्ञावाही नाड़ी सूत्रों में चिन्तादि मानसिक कारणों से निर्बलता व विक्षोभ शीलता हो, और ऐसी अवस्था में रक्त के अन्दर कोई विक्षोभक द्रव्य बढ़ जाय (Toxaemia) हो अथवा बाहिर से त्वचा पर कोई विक्षोभ आ पड़े तो नाड़ी सूत्रों की विक्षोभ

शीलता के बढ़ जाने से कण्डू होने लगती है। अजीर्ण के कारण किसी प्रोटीन विष के रक्त में बढ़ जाने या Cholesterol के बढ़जाने या मधुमेह के कारण रक्त में तथा त्वचा में ग्लूकोज़ के बढ़ जाने या यकृद्रोग के कारण रक्त में Bile Salts के बढ़ जाने या वृक्क रोग के कारण रक्त में मूत्र जनित किसी विष द्रव्य के जैसे Urea Phosphates Sulphates आदि के बढ़ जाने से जैसे कि चि०स्था०वृक्क रोग में होता है या प्रोस्टेट ग्रन्थि की वृद्धि में भी हो सकता है। अथवा स्वेद के त्वचा पर सूख जाने और फिर उसमें किसी जीवाणु के रोहण कर जाने से या कठोर ऊनी वस्त्र के त्वचा पर अधिक संघर्ष से भी कण्डू हो सकती है। ये कण्डू पिडिकायें (Papules) बाजरे के बीज के आकार की सवर्ण या कुछ रक्त वर्ण, एक दूसरे से पृथक पृथक होतीं एवं निःस्राव होती हैं। खुजलाने से बहिश्चर्म में अति वृद्धि (Acanthosis) हो जाने से ये उत्पन्न हो जाती हैं। धमनी रोग तथा रक्त भार वृद्धि के कारण वृद्धावस्था में त्वचा में (Degenerative change के कारण) कंडू होती है। स्थानिक कण्डू ग्रीवा के पिछले पृष्ठ, उसके सन्मुख या बहिःपृष्ठ, कोहनी पर, गोडों के पिछले गढ़े में, अण्डकोष पर, गुदा के आसपास, योनी द्वार पर हुआ करती है तथा किसी वाह्याभ्यन्तर विक्षोभक कारण से होती है। गुदा के आसपास मल सम्बन्धी किसी विक्षोभक द्रव्य से या Oxyuris Vermicularis के कारण या अर्श रोग के कारण योनि के पास मूत्र सम्बन्धी किसी विक्षोभक द्रव्य के कारण होती है। मधुमेह रोग के कारण भी वहां कण्डू होती है।

जीर्ण कण्डू, गज चर्म अथवा Lichenification

जब स्थानिक कण्डू रोग पुराना हो जाता है तब वहां की त्वचा स्थूल, कठोर तथा कृष्ण वर्ण हो जाती है। इसे गजचर्म, हस्तिचर्म या Lichenification कहते हैं। खुजलाते रहने से वहां का बहिश्चर्म विशेषतः उसका बहिःस्तर अधिक स्थूल एवं रूक्ष हो जाता है। गज चर्म के ऐसे कण्डू युक्त क्षेत्र ग्रीवा के पीछे, उसके बहिःपृष्ठ या सन्मुख पृष्ठ पर या धोती के प्रदेश पर विशेष होते हैं। गुदा के आगे सीवन प्रदेश तथा अण्डकोषों पर भी कण्डू से त्वचा मोटी हो जाया करती है। परन्तु वहां त्वचा रूक्ष न होकर आर्द्र होती है। इस प्रकार अण्डकोषों पर कण्डू तथा पामा दोनों रोगों के लक्षण चिरकाल तक रह सकते हैं। प्राचीन आयुर्वेद ग्रन्थों में इसे वृषण कच्छू के नाम से पुकारा जाता है।

अधिक खुजलाते रहने से त्वचा की रक्तवाहिनियां फैल जाती हैं। जिससे वहिश्चर्म को श्लैष्मिक द्रव अधिक मिलता है और उससे वह स्थूल हो जाता है। सम्भवतः Basal Layer में Melanin की उत्पत्ति के अधिक होने से ही वहां बहिश्चर्म का रंग अधिक काला हो जाता है।

कण्डू तथा गज चर्म की चिकित्सा :-

कण्डू रोग में रक्तगत विष द्रव्य को दूर करने के लिये विरेचन तथा क्षारीय मूत्रल औषधियां देनी चाहियें। स्नायु मण्डल की (Nervous System) की दुर्बलता को दूर करने के लिये रोगी को मुख द्वारा Vitamin B_1 तथा Vitamin B Complex तथा Calcium (शिरा द्वारा Cal.Gluconate या Calcibronat ५-१० सी०सी० मांस द्वारा) के इंजेक्शन देने चाहिये। Syrup Calci Lactophosphatis १ ड्राम, Pot.Bromide १५ ग्रेन की एक मात्रा रात को सोने से पहले देने से रोगी की बेचैनी जाती रहती है। अधिक बेचैनी हो तो रात को Phenobarbitone. ३ ग्रेन दें या Butylethyl Barbituricacid दें या Promethazine Hydrochloride (Phenergan) २५ मिलिग्राम मात्रा में या Benadryl १० मिलिग्राम की मात्रा में दी जा सकती है। Cartisone (२५-१०० मिलि मात्रा दिन में तीन बार), Dexamethasone (Decadron, Deronil, Gammacorten. ·७५-५ मिलि० दैनिक), Prednisone ५-१० मिलि० तीन बार आदि के देने से भी खुजली तुरन्त शान्त हो जाती है। पर मधुमेह हो, रक्त भार बढ़ा हो तो इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। Trimeprazine (Vallergan, May Baker) के जो कि Histamine विरोधी भी है तथा नाड़ी मण्डल के लिये शामक भी है, कण्डू के शान्त करने के लिये उत्तम औषधि है या Hydroxyzine Hydro. (Atarax) १०-२५ मिलि०मात्रा में दिन में तीन बार देने से शान्ति रहती है। भोजन में तीक्ष्ण मसाले तथा उष्ण पेय नहीं देने चाहियें। इनसे त्वचा में Vasodilation होता है तथा उससे खुजली और बढ़ती है। गेहूं तथा दूध में से एक एक भोजन को ३-४ दिन बन्द करके देखना चाहिये। कि इनमें से किसके दोष से कण्डू रोग होता है। इनमें से किसी से या अण्डे से इस रोग के होने की सम्भावना हो सकती है।

कण्डू की स्थानिक चिकित्सा के लिये स्थान को स्वच्छ रखने के अतिरिक्त निम्नलिखित किसी योग का प्रयोग किया जा सकता है।

१.. Calamine Prep. १ ड्राम, Zinc Oxide. १ ड्राम, Liquor Plumbisubacet.Dil. १ ड्राम, Liquor Carbonis Detergens. १ ड्राम, Glycerin १ ड्राम, Aqua Calcis मिलाकर कुल १ औंस अर्थात् पांचों द्रव्य १२-१२ भाग, Aqua Calcis ४० भाग।

२.. Zinc Oxide १ ड्राम, Lanolin १ ड्राम, Acid Carbolic ५ बूंद Menthol ५ ग्रेन, तथा Olive Oil और Aqua Calcis बराबर बराबर मिलाकर ७½ ड्राम मिलायें।

३. Chloral Hydrate तथा Camphor ६० ग्रेन प्रत्येक Starch १ औंस में मिलायें।

४. ६ गैलन हलके से गर्म जल में १ औंस Soda Bicarb या ५ मिलिलि० Coltar Solu. (1:2000 में Pot. Permang.) मिलाकर उससे नहाने या धो देने से भी कण्डू शान्ति होती है। इसके बाद शरीर को हलके से ही पुंछना चाहिये।

५. एक प्रतिशतक Hydrocortisone Acetate Ointment के एक बार लगाने से कण्डू शान्त हो जाती है।

६. Nicotinic Acid का ४ प्र०श० बिना चिकनाई वाला प्रलेप कण्डू नाशक होता है।

७. Benzocaine ५ % लोशन व प्रलेप कण्डू शामक होता है।

गुद कण्डू तथा योनि कण्डू पर Talc Powder में १० प्रतिशतक Boric Acid मिलाकर या Zinc Cream में १ प्रतिशतक Phenol मिला कर लगाने से खुजली शान्त होती है या Paraffin १ औंस में Liquor Carbonis Detergens १ ड्राम तथा Ammoniated Mercury १० ग्रेन मिलाकर लगायें या उपर्युक्त २ नम्बर का योग लगायें। Benzocaine (Anesthesin) Orthocaine आदि किसी औषधि को किसी तेल या मलहम में ५ % मात्रा में मिलाकर लगाने से भी तीव्र कण्डू शान्त होती है।

आयुर्वेद में कण्डू तथा गजचर्म :-

आयुर्वेदानुसार वहिश्चर्म के वात नाड़ी सूत्रों में वायु दोष की अधिकता हो अर्थात् इन नाड़ियों की प्राण शक्ति मन्द हो तथा कायाग्नि की मन्दता के कारण वहिश्चर्म में आम दोष (कफ दोष) की भी अधिकता हो तो कण्डू होने लगती है। कण्डू रोग किसी स्थान विशेष पर चिरकाल बना ही रहे तो वहां के वहिश्चर्म में कफ धातु की प्रतिक्रिया होने से उसमें स्थुलता भी हो जाती है। वायु की अधिकता के कारण उसमें रुक्षता तथा खरता के लक्षण हो जाते हैं। इस प्रकार वहां एक गज चर्म का कवच सा बन जाता है। इसीलिये चरक ने गज चर्म को वात कफ जनित त्वग्रोग कहा है। साधारणतः आयुर्वेद में कण्डू को कफ जनित तथा गज चर्म को वात कफ जनित रोग माना जाता है।

इस रोग में कफ दोष की शान्ति के लिये रोगी को वमन, लंघन तथा मंजिष्ठादि क्वाथ का तथा वात कफ दोनों दोषों की शान्ति के लिये आराम कराना चाहिये तथा तिक्त घृत का सेवन कराना चाहिये। गर्म जल में क्षार मिलाकर उससे स्नान कराना चाहिये।

कण्डू सारे शरीर पर हो तो कमर्द बीजों के १ छटांक चूर्ण को १ सेर तक्र में दो तीन दिन भिगोकर तीन दिन तक शरीर पर मलकर प्रतिदिन गर्म जल से स्नान करना चाहिये।

या सरसों के तैल ८ भाग में ४ भाग मोम मिलाकर उसमें ½ भाग कपूर तथा १ भाग गन्धक मिलाकर उसकी मालिश करके गर्म जल से स्नान कर लेना चाहिये ।

अथवा उपर्युक्त सिन्दूरादि चूर्ण को घृत के साथ मिला लेप करने से भी कण्डू शान्त होती है ।

गज चर्म के लिये भी कण्डू शामक योग उचित हैं क्योंकि यदि सर्वथा खुजलाया न जाय तो गज चर्म रोग स्वयं ठीक हो जाता है।

मुख रक्त मण्डल :- Lupus Erythemalosus.

मध्यम आयु में विशेषत: स्त्रियों में नासिका के संकुचित भाग पर तथा उसके पास गाल पर तितली के पंख के आकार का कुछ मण्डलाकृति रक्तवर्ण चकत्ता निकल आया करता है जो किनारों पर रक्तवर्ण, कुछ उभरा हुआ, बीच में कुछ फीका तथा दबा हुआ होता है । इस पर चिपके हुऐ छिलके से भी स्वल्प मात्रा में दीखते हैं । यह रक्त मण्डल या तो स्थिर रूप में वैसा ही रहता है या एक तरफ मन्द रूप से बढ़ता भी है एवं एक देर तक रहने वाला रोग है । यद्यपि इसमें कोई कष्ट विशेष नहीं होता । यह वहां की त्वचा में एक प्रकार का शोथ है । अन्तश्चर्म की रक्तवाहिनियाँ फैली हुई होती हैं । उनके आसपास Lymphocytes का संचय होता है । इस शोथ के कारण बहिश्चर्म के वहिस्तर में अतिवृद्धि (Hyperkeratotis) की विकृति होती है । फिर वहिश्चर्म की श्लैष्मिक स्तर (Prickle Cell Layer) में लघुता (Atrophy) हो जाती तथा वहिश्चर्म की उत्पादक स्तर (Basal Cell Layer) में भी क्षीणता (Liquefactive Degeneration) हो जाती और वहां के Collagen तथा लचकीले [redacted] अवयव में भी क्षीणता (Bosophilic Degene.) हो जाती है। इस रोग के कारण के विषय में कुछ निश्चय नहीं हो पाया है ।

Lupus Vulgaris का रोग एक तो छोटी आयु में होता है । दूसरा उसमें मण्डल के किनारों पर ग्रन्थियाँ (Nodules) होती हैं तीसरा वह नीचे नाक की तरुणास्थि तक भी पहुंचता है । उससे इस रोग का भेद करना कठिन नहीं ।

चिकित्सा :-

रोगी को धूप से बचाना चाहिये तथा विटामिन्स, लोह, आदि देकर उसके स्वास्थ्य को उन्नत करना चाहिये ।

Quinacrine Hydrochloride के •३ ग्राम मात्रा में प्रतिदिन २ सप्ताह तक तथा फिर •१ ग्राम मात्रा में प्रतिदिन २-३ मास तक देने से इसमें आराम आ जाता है या Chloroquine Phosphate को •५ ग्राम

दैनिक मात्रा में १ सप्ताह, फिर •२५ ग्राम मात्रा में प्रतिदिन कुछ दिन देके देखना चाहिये । इसी प्रकार Hydroxychlcroquine Sulphate(Plaquenil) को •२ ग्राम मात्रा में दिन में २ बार देने से शीघ्र लाभ होने लगता है । अथवा Triquin की १ गोली के प्रतिदिन २ बार देने से सम्भवत: और भी अधिक लाभ होता है ।

शीत जनित शोथ :- (Chilblains)

शीत काल में बाहर के शीत के लगने से नाक, कान अथवा अंगुलियों के सिरों पर जो कुछ श्यामता युक्त, रक्त वर्ण शोथ हो जाया करता है उसे शीत जनित शोथ कहते हैं । कुछ एक युवक युवतियों के खुले हुए अंगों जैसे हाथ पैरों पर शीत के लगने से उनकी त्वचा की सूक्ष्म धमनियों में संकोच (Arteriolar Spasm) होकर त्वचा गत अवयवों को उचित मात्रा में आक्सिजन नहीं मिल पाती जिससे वह स्थान नीला सा दीखने लगता है अर्थात् वहां Cyanosis हो जाता है । लगभग ७७ डिग्री फारनहाइट तक त्वचा का तापमान हो जाने पर ऐसा होता है । सूक्ष्म धमनियों के संकुचित हो जाने से वहां की सूक्ष्म शिराओं या Venules में रक्त रुक जाता है । और उसमें से परिस्राव (Exudation) होकर वह स्थान सूज जाता है । स्पर्श में वह स्थान कुछ गर्म और कठोर तथा देखने में श्यामतायुक्त रक्त वर्ण होता है। शीत काल में यह शोथ बना रहता है । ग्रीष्म काल के आने पर यह रोग ठीक हो जाता है परन्तु उत्तरोत्तर प्रति वर्ष इन अंगों की शीत सहन करने की शक्ति गिरती जाती है ।

इस रोग की रोकथाम के लिये शीत काल में जुराबों व दस्तानों के द्वारा तथा व्यायाम और मालिश के द्वारा इन अंगों की त्वचा की सूक्ष्म धमनियों को संकुचित होने से रोका जा सकता है । इन उपायों के अतिरिक्त Nicotinamide के ५० मिलि० मात्रा में अथवा Tolazoline (Priscol) के २५ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देने से कुछ काल के लिये इन अंगों की सूक्ष्म धमनियों को संकुचित होने से रोका जा सकता है । Calcium की गोलियों के विटामिन " डी " के साथ लेने से भी बहुतों को इस रोग में आराम रहता है । वह किस विधि से आराम करता है यह ठीक ठीक स्पष्ट नहीं है ।

पिडिका रोग Furunculosis, Boils (Furuncle = कील)

त्वचा की स्नेह ग्रन्थियों से स्नेह स्राव अधिक होता हो, खाण्ड, अन्न आदि आहार अधिक मात्रा में किया जाता हो तथा व्यायाम न की जाती हो जिससे रक्त में खाण्ड की मात्रा अधिक हो गई हो, तो ऐसी अवस्था में त्वचा पर प्रबल संघर्ष लग जाने या खुजलाने से रोमकूप

का मुख दात हो जाने पर त्वचा पर या नासिका में विद्यमान Staphylococcus Pyogenes Aureus या Albus का उसमें हाथ से या तौलिये के द्वारा संक्रमण हो जाता है और उसकी वहां वृद्धि हो जाती है। रोम कूप के मुख से यह जीवाणु Sebaceous ग्रन्थि तथा रोम मूल में अर्थात् रोम कूप के गहरे भाग में भी संक्रमण कर जाता है। वहां उसके विदाहात्मक प्रभाव से आसपास के अवयव में Fibroblasts के अति संचय तथा वहां Fibrin के अति निर्माण से कठोरता उत्पन्न हो जाती है। रोम कूप में इसकी वृद्धि होने पर इसकी विष के दुष्प्रभाव से रोम कूप और स्नेह ग्रन्थि की प्राण शक्ति नष्ट हो जाती है। स्नेह ग्रन्थि सहित वह निर्जीव या मृत हो जाता है(अर्थात Follicular Necrosis हो जाता है) इस मृत हुए रोम कूप (Furuncle) के चारों ओर के अन्तश्चर्म में आसपास के अवयवों से श्वेत कण (Leucocytes और Small Round Cells) बहुत अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं। जिससे रोम कूप के चारों ओर के प्रदेश में न्यूनाधिक पूय भाव हो या विद्रधिभाव हो जाता है एवं वह प्रदेश मृदु हो जाता है। (Perifollicular Suppuration हो जाता है) अब यह मृत हुआ रोम कूप कुछ कुछ आसपास के गले हुए अवयव के साथ मिलकर एक कील (Core,Slough) के रूप में बाहर निकल जाता है। फिर इससे खाली हुआ स्थान स्नायु तन्तु (Granulation या Scar Tissue) के द्वारा भर दिया जाता है। एवं यह पिडिका या रोमकूप शोथ शान्त हो जाता है। प्रमेह पिडिका (Carbuncle) में इस प्रकार की पिडिकाओं का एक समूह होता है तथा यह मृत भाग अधिक चौड़ा तथा नीचे Subcutaneous स्तर में भी अधिक गहरा होता है तथा उसका पूय कई मुखों से बाहर त्वचा पर निकलता है।

देखने में शरीर की किसी मोटी त्वचा पर पहले एक छोटा सा रक्त वर्ण वेदना युक्त कठोर उभार निकलता है जो बढ़कर एक इंच व्यास का हो जाता है। फिर ३ दिन तक यह मुख कर लेता है जो १-२ दिन में नरम होकर खुल जाता है। उसमें पूय स्राव आरम्भ होने पर वेदना कम हो जाती है और अन्त में कील (Core) के निकल जाने पर सर्वथा शान्त हो जाती है, यह पिडिका ७ से १५ दिन तक रहती है। कभी कभी एक के बाद दूसरी पिडिका निकलती रहती है। स्फिक् प्रदेश, (उरुप्रदेश) कक्षा प्रदेश, अंसवाह, ग्रीवा के पश्चिम पृष्ठ पर पिडिकायें विशेषत: निकलती हैं। कक्षा में यह रोग, रोम कूप (Pilosebaceous Follicle) में नहीं, पर स्वेद ग्रन्थियों में होता है। ग्रीवा तथा कन्धों के पीछे की मोटी त्वचा पर जहां स्नायु सूत्र Trabeculae. विशेष मोटे होते हैं प्रमेह पिडिकायें निकलती हैं जो ७-८ दिन में पक जाती हैं। देखने में प्रमेह पिडिकाऐं आकार में बड़ी होती है + अर्थात् एक साथ अनेकानेक रोम कूपों के ग्रस्त होने से निकलती है जिससे त्वचा का एक बड़ा भाग

मृत या Necrosed हो जाता है । जिससे वह कभी कभी मारक हो जाती है ।

कान के अन्दर जब पिडिका निकलती है बड़ी कष्ट प्रद होती हैं । नाक पर या उपरले ओष्ठ पर पिडिका हो तो उसके विषैले अंश का संक्रमण Angular Vein के द्वारा Meninges या मस्तिष्क वरण की शिराओं में भी हो सकता है और Thrombosis होकर उससे मृत्यु भी हो सकती है ।

पिडिका रोग Furunculosis, Boils की चिकित्सा :-

Sulphamezathine या Sulphathiazole चार चार घन्टे बाद १ ग्राम मात्रा में दो तीन दिन देने या Procaine Penicillin ४-५ लाख यूनिट के दो तीन दिन मांस द्वारा देने से पिडिकाओं की वृद्धि रुक जाती है । Multivitamin गोलियों से रोगी की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है । उचित यही है कि पिडिका के प्रारम्भ होने पर ही antibiotic न दिया जाय जब तक रोगी की अपनी प्रतिरोधक शक्ति जाग्रत न हो जाय तब तक प्रयोग न किया जाय अन्यथा बाहर तो दब जाती है पुनः निकलने लगती हैं। पिडिका को वाह्य संघर्ष से बचाना चाहिये । बार बार पिडिका निकलती हों तो उस स्थान को संघर्ष से बचाके वहां पर Gention Violet लगाना चाहिये । पिडिका पर Iodine के Alcohol में बने १ प्रतिशतक घोल के लगाने या जल में बने २ प्रतिशतक Gentian Violet या Crystal Violet के लगाने या Ichthyol ~~कपड़े के~~ ग्लिसरीन में १० प्रतिशतक घोल के ~~को~~ दो दो घन्टे पर लगाने और ऊपर गर्म बोतल द्वारा या गर्म बोरिक लोशन से भिगोकर निचोड़े कपड़े से या Diathermy या Infra-red लैंप से सेक देने से वह बैठती है और बढ़ती नहीं या शीघ्र पक जाती हैं Vaseline ४ ड्राम में Phenol १० बून्द, Zinc Oxide तथा Starch २-२ ड्राम मिलाकर बना लेप भी लगाना ठीक है ।

मुख हो जाने पर उस पर १० प्र०श० Sod.Sulph. Solution की ड्रेसिंड करें अथवा Magnesium Sulphate Paste. (शुष्क Magnesium Sulphate ४५ ग्राम, ग्लिसरीन ५५ ग्राम, Acid Carbolic १/२ ग्राम मिलाकर बनाया लेप) किसी कपड़े में लगाकर लगाना चाहिये । इससे पिडिका का पूय स्रवित होने लगता है तब Proflavine की गाज़ रखनी चाहिये । पिडिका को चाकू से नहीं खोलना चाहिये । नाक के पास पास की पिडिका को खोलना या दबाना ~~उचित~~ उचित नहीं । ऐसा करना कभी कभी घातक हो जाता है । इस लेप से उसे बहाकर स्वंय साफ होने देना चाहिये । अथवा ३-३ घन्टे बाद गर्म जल से चमचे द्वारा उसकी सिकाई करनी चाहिये । Neomycin Sulphate Ointment (१ ग्राम में ५ मिलि०) या इसी का Solution (१ सी०सी० में ५ मिलि०) पिडिका नाशक उत्तम औषधि है।

इसी प्रकार Framycetin या Gramicidin १$\frac{1}{2}$ प्र०श० मलहम लोशन भी बड़े उपयोगी हैं । Bacitracin (२५०-५०० यूनिट प्रति ग्राम) का प्रलेप भी उपयोगी है ।

कान में Carbolic Glycerin (१ औंस ग्लिसरीन में २ ड्राम Acid Carbolic) डालने, कान पर सेंक देने, तथा गर्म रुई बांधने से कान में पिडिका दो तीन दिन में बह जाती है । प्रमेह पिडिका हो तो मधुमेह का प्रत्युपाय करना चाहिये ।

आयुर्वेद में पिडिका रोग :-

वहिश्चर्म में आम दोष (कफ दोष) की वृद्धि हो, साथ ही उसकी प्राण शक्ति भी हीन हुई हो तो Staphylococci का रोम कूपों में संक्रमण सुगमता से हो जाता है । रोम कूप में उसके विपरीत श्लेष्मिक प्रतिक्रिया होकर जो रोम कूप शोथ होता है उसे पिडिका कहते हैं । इस जीवाणु की विष से रोम कूप मृत होकर एक कील (Slough) के रूप में परिवर्तित हो जाता है । इस कील के चारों ओर के अवयव में पित्त जनित मृदु भाव या पूय भाव भी कुछ कुछ हो जाता है जिससे यह कील त्वचा से पृथक होकर बाहिर निकल जाता है । इस प्रकार यह पिडिका रोग बहुधा वात कफ दोष जनित या कभी कभी वात पित्त दोष जनित होता है तब इसमें दाह पाक के लक्षण विशेष होते हैं ।

पिडिका रोग बार बार होता हो तो खाण्ड आदि कफ दोष वर्धक आहार बन्द करके मंजिष्ठादि क्वाथ या किसी तिक्त घृत का कुछ काल सेवन करना चाहिये । शरीर की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिये दो चार दिन का पूर्ण विश्राम करना चाहिये तथा रात ब्राह्मी, शंखपुष्पी, और सर्प गन्धा से बना चूर्ण लेना चाहिये ।

कुष्ठ और हल्दी के चूर्ण को या दशांग चूर्ण को पंचमाश घृत में मिलाकर पिडिका पर लेपते रहने से तथा स्वेदन करते रहने से वह बैठ जाती या शीघ्र पक कर बह जाती हैं । पिडिकाओं की रोकथाम के लिये कैशोर गुग्गुल को मंजिष्ठादि क्वाथ या त्रिफला के अनुपान से देनी चाहिये ।

सिध्म :- Pityriasis Versicolor Tineaversicolor.

छाती के प्रदेश, कन्धों तथा ऊपर की पीठ पर कभी कभी फीके से, श्वेत वर्ण के गोल चकत्ते दीखने लगते हैं जो वहिश्चर्म के कठोर स्तर (Horny Layer) में एक प्रकार की फुई Malassezia fur या Microsporon Furfur के लग जाने से और इस स्तर के परतों के रूप में फड़ने से बनते हैं । पसीने के अधिक आने और उसके विदग्ध हो जाने से यह फुई

वहां लगती प्रतीत होती है । इसके प्रभाव से कठोर स्तर के सेल मृत होकर झड़ जाते हैं । इसके विपरीत वहिश्चर्म में कोई प्रतिक्रिया (Inflammation) नहीं होती जिससे त्वचा में कोई लालिमा आदि लक्षण नहीं होते ।

सिध्म Pityriasis Versicolor की चिकित्सा :-

गन्धक तथा Acid Salicylic १५-१५ ग्रेन की मात्रा में १ औंस Soft Paraffin में मिलाकर मलने या १ औंस जल में १ ड्राम Sodium Thiosulphate मिलाकर दिन में २ बार लगाने से या Benzoid Acid (६ प्र०श०), Salicylic Acid (३ प्र०श०) का बना प्रलेप लगाने से इस रोग की फुई नष्ट होती है ।

आयुर्वेद में सिध्म रोग को वहिश्चर्म में कफ वात जनित रोग कहा है अर्थात् वहिश्चर्म में कफ दोष या आम दोष की अधिकता से एक प्रकार की फुई का संक्रमण हो जाता है तथा वहिश्चर्म की प्राण शक्ति की हीनता से वाह्य शुष्क स्तर नष्ट हो जाती है । इस रोग पर तैल या घृत में गन्धक मिला कर मर्दन किया जाता है ।

(च०।चि०।७।१६।, सु०।नि०।५।)

कुष्ठ रोग :- Leprosy.

त्वचा की प्राण शक्ति हीन हुई २ हो और ऐसी अवस्था में कुष्ठ रोगी के साथ अति निकट सम्पर्क में आने से उसमें कुष्ठ जीवाणु (Micobacterium Leprae , या Lepra Bacillus) का संक्रमण या तो सीधा दूसरे की त्वचा में संघर्ष जनित घात के द्वारा हो जाय या रोगी के कुष्ठ जीवाणु युक्त नासा स्राव के द्वारा उसकी नासा की श्लेष्म कला में हो जाय तो कुष्ठ रोग हो जाता है जिसमें शरीर की त्वचा, श्लेष्म कला तथा प्रान्त नाड़ियां ग्रस्त होती हैं । जीवाणु का संक्रमण तथा प्रसरण त्वचा तथा नासिका की श्लेष्म कला में विद्यमान लसीका वाहिनियों के द्वारा होता है । जिन प्रदेशों में कुष्ठ रोग होता है उनकी गन्दी बस्तियों में गन्दे तरीके से भीड़ भाड़ में रहने वाले ऐसे लोगों में जो एक साथ सोते, एक ही साथ बर्तन में खाते तथा एक ही हुक्के से तम्बाखू पीते हैं एवं रोगियों के साथ अति निकट सम्पर्क में आते हैं + १० से ३० वर्ष की आयु में यह रोग होता है । सम्भवतः जिनमें इस रोग के होने की प्रवृत्ति या शारीरिक निर्बलता होती है उनमें यह जीवाणु आयु के प्रारम्भिक भाग में ही प्रवेश कर जाता है । परन्तु रोग रूप में कई वर्ष बाद प्रकट होता है और कुछ एक में तो प्रसुप्त रूप में ही रहता है । कुष्ठ रोगी की संतान में जन्म से इस रोग के होने की प्रवृत्ति रहती है + यह विश्वास मिथ्या प्रतीत होता है । क्योंकि देखा गया है कि यदि कुष्ठ रोगी की संतान

को जन्म के बाद शीघ्र रुग्ण माता पिता से पृथक करके पाला जाय तो उसमें यह रोग नहीं होता । जन्म के बाद रुग्ण माता या पिता के अति सम्पर्क में रहने से उनसे उसमें यह रोग संक्रमण द्वारा आता है । कुष्ठ रोगियों में काम करने वालों में संक्रमण होता हुआ नहीं देखा जाता । हमारे देश में हिमालय की तराई के प्रदेशों, पश्चिमीय बंगाल, दक्षिणी बिहार, उड़ीसा, मद्रास, केरल आदि गर्म आर्द्र प्रदेशों में (अधिक) पाया जाता है ।

कुष्ठ जीवाणु (Micobacterium Leprae) जिसका पहले पता Hansen ने १८७४ में लगाया था क्षय जीवाणु (Tubercle Bacillus) के सदृश एक जीवाणु है । उसी के समान Grampositive है तथा Ziehl Neelsen तरीके से रंगा जाता है । पर उससे कम Acid Fast है । उसके समान मन्द बल होता है । यह रोगी के रोग ग्रस्त प्रदेश में तथा उसकी नासिका से होने वाले स्राव में पाया जाता है । रोगी के यकृत, प्लीहा, वृक्क, अण्ड, नाड़ियों, लसीका प्रदेशों तथा रक्त में भी यह देखा जाता है ।

इसके शरीर में प्रविष्ट होने के तीन चार वर्ष बाद यह रोग त्वचा पर प्रकट होता है । अतः इस रोग का परिपाक काल (Incubation Period) दीर्घ या कई वर्ष का लगभग २-५ वर्ष का होता है ।

इस रोग के दो भेद हैं । १.. सुप्ति कुष्ठ, २.. कारुण कुष्ठ (Nodular Leprosy)

सुप्ति कुष्ठ :- Anaesthetic Leprosy, Neural Leprosy, Maculoanaesthetic Leprosy, Tuberculoid Leprosy. Lepra Nervorum.

त्वचा निर्दोष हो एवं उसकी प्रतिरोधक शक्ति पर्याप्त हो तो त्वचा में प्रविष्ट होते ही त्वचा के श्लेष्म द्रव तथा रक्षक सेलों के द्वारा ये जीवाणु नष्ट कर दिये जाते हैं । परन्तु यदि त्वचा की प्रतिरोधक शक्ति कुछ कम हो तो जीवाणु पूर्ण तया नष्ट नहीं हो पाता, और उस पर उसका कुछ दुष्प्रभाव हो जाता है । त्वचा (Dermis) के सबसे सुकुमार अवयव वात नाड़ी सूत्रों पर उसका दुष्प्रभाव विशेष होता है । शेष त्वचा पर कोई दुष्प्रभाव विशेष नहीं होता । त्वचा में विद्यमान स्पर्शवाही या ज्ञान वाही नाड़ी सूत्रों के भीतर जीवाणु प्रवेश करके शरीर के अन्दर की ओर बढ़ने लगता है जिसके विपरीत वहां पर रक्षक श्वेत कण विशेषतः Large Mononuclears या Histiocytes या Reticuloendothelial प्रदेशों से उत्पन्न होने वाले सेल जिन्हें Epithelioid या Macrophages कहते हैं अति मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं । जब ये सेल भी इस जीवाणु का पूर्ण प्रतिकार नहीं कर पाते तो ऐसे कई सेल मिलकर एक बड़ा सेल बना लेते हैं जिसे अनेक मींगियों

वाला बड़ा सेल Multinucleated Giant Cell कहते हैं । इस रोग में इस प्रकार का जो बड़ा सेल बनता है उसे Lepracell कहते हैं । इसके अन्दर कुष्ठ जीवाणु बहुत अधिक संख्या में घिरे हुऐ देखे जा सकते हैं । रक्षक सेलों की इस प्रतिक्रिया से बहुधा जीवाणुओं का संक्रमण आगे रुकता बन्द हो जाता है । संज्ञावाही नाड़ी सूत्रों के अन्दर इस जीवाणु के प्रविष्ट हो जाने से सूत्रों के बीच के प्रदेश में इस प्रकार जो अंकुर बनते हैं उन्हें Granuloma कहते हैं । इनके कारण तथा सूत्रों के चारों ओर के स्नायु तन्तु (Endoneurium तथा Fibrous Sheath) के मोटे हो जाने से नाड़ी सूत्र मोटे हो जाते हैं । त्वचा के केश मूलों को जाने वाले नाड़ी सूत्रों के जाल सबसे पहले क्षीण होते हैं । इसलिये रोम या केश क्षीण हो जाते हैं। सूक्ष्म नाड़ी सूत्रों में से क्रमश: जीवाणु संक्रमण बड़ी [redacted] वातनाड़ियों में से जैसे Ulnar, radial, superficial peroneal, Tibial Nerves आदि में होता जाता है और उनमें Granuloma के हो जाने से नाड़ी सूत्रों (Fibres) के क्षीण हो जाने तथा उनमें स्नायु तन्तु के बढ़ जाने (Interstitial Fibrosis के हो जाने) से वे भी मोटी हो जाती हैं । Ulnar को कोहनी से ऊपर Medial Epicondyle के पीछे के प्रदेश में, Superficial Peroneal को गोड़े के पीछे Fibula के Head पर Radial को Humerus के Sulcus, Nerviradialis पर Posterior Tibial को अन्दर के गिट्टे के नीचे स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है । इस जीवाणु के द्वारा त्वचा की वात नाड़ियों में क्षीणता के आ जाने से त्वचा में क्षीणता होने लगती है जिससे त्वचा पर विशेषत: चेहरे शाखाओं के [redacted] बाह्य पृष्ठ, पीठ, नितम्ब पर विवर्णता या अति रक्तिमा युक्त (Hypo या Hyperpigmentation) तथा स्पर्श शून्यता से युक्त चकते (Macules) दीखने लगते हैं, जिनके किनारे स्पष्ट, कुछ उठे हुऐ होते हैं । ये संख्या में स्वल्प, आकार में बड़े, दोनों ओर एक से नहीं होते । ~~इन चकतों के फैलते जाने से त्वचा के बड़े प्रदेश में सुप्ति या स्पर्श शून्यता का लक्षण दीखने लगता है । इन चकतों पर शीत उष्ण के भेद करने की शक्ति भी कुंठित सी हो जाती है ।~~ इतना बड़ा चकता एक ही हो सकता है + या अनेक भी । इस चकते का रंग आस पास की त्वचा से फीका होता है । कभी कभी चकता कुछ रक्त वर्ण होता और कुछ उठा हुआ होता है कभी कभी यह उठा हुआ चकता किनारों पर उठा हुआ, रक्त वर्ण होता, बीच में फीका तथा चपटा होता है । इन चकतों के फैलते जाने से त्वचा के बड़े प्रदेश में सुप्ति या स्पर्श शून्यता का लक्षण दीखने लगता है । इन चकतों पर शीत उष्ण के भेद करने की शक्ति भी कुंठित सी हो जाती है । इनमें स्वेद भी नहीं होता है । (Anidrosis) तथा बाल भी नष्ट हो जाते हैं । (Depilation) तथा देखने में त्वचा कुछ रुक्ष और चमकदार दीखती है । संज्ञा नाश से पहले यह

भी सम्भव है कि रोगी को रोग ग्रस्त प्रदेश की नाड़ियों में कुष्ठ रोग जनित शोथ के कारण नाड़ी शूल (Neuralgia या Hyperaesthesia) की शिकायत भी रहे । कुष्ठ रोग से ग्रस्त प्रदेश की त्वचा का पोषण कम हो जाने से उसकी कठोर स्तर Horny Layer का निर्माण ठीक नहीं होता । इसी से उसमें चमक सी आ जाती है तथा उसमें रोम भी नष्ट होते जाते हैं । क्योंकि नख भी वहिश्चर्म का एक अंग है, इसलिये वे भी रुक्ष, कठोर एवं क्षीण हो जाते हैं । इसीलिये यदि हाथ पांव के Ulnar तथा Peroneal Nerves के प्रदेशों में या Great Auricular Nerve के प्रदेश में शूल या सुप्ति हो अथवा नाक, भौंहों, कानों, गालों, धड़, स्फिक् प्रदेश पर और शाखाओं के बाहर के संघर्ष में आने वाले पृष्ठों पर कहीं पर भी शूल या सुप्ति की प्रतीति हो तो इस रोग की आशंका करनी चाहिये । भौंहों के बाहिर के भाग के बाल उड़ गये हों तो भी इस रोग की आशंका होनी चाहिये । रुई का स्पर्श तथा पिन की हलकी चुभन प्रतीत न हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये । ककत्तों के बिना भी नाड़ियों की क्षीणता से संज्ञा नाश का लक्षण हो सकता है । Ulnar, Peroneal Nerves आदि के रोग ग्रस्त होने के कारण हाथ पांव की छोटी छोटी मांस पेशियों में लघुता (Atrophy) तथा घात (Paralysis) के लक्षण हो जाते हैं । जिससे पौंचे के उभार (Thenar, Hypothenar eminences) लुप्त हो जाते हैं । दोनों ओर के हाथों, पावों में स्पर्श शक्ति की न्यूनता तथा क्षीणता के लक्षण होते हैं । रोग के बढ़ जाने पर हथेली और अंगुलियों के बीच की सन्धियों के फैल जाने (Carpophalangeal Joints के Extended हो जाने) से तथा अंगुलियों के बीच बीच की संधियाँ (Interphalangeal Joints) के संकुचित हो जाने से हाथ, पक्षियों के पंजों की तरह (Main En Griffe) हो जाते हैं । यदि अन्दर की दो अंगुलियों में कुछ संकोच हो और हाथ में कुछ निर्बलता हो तो अन्दर की ओर की (Ulnar Interossei) में इस रोग का प्रभाव हुआ समझना चाहिये । Radial नाड़ी में इस रोग का दुष्प्रभाव होने से तो हाथ ही शिथिल हो जाता है । निम्न जंघा की Common Peroneal नाड़ी में रोग हो तो पांव को उठाने वाली (Extensor) पेशियों की क्षीणता से पांव शिथिल हो जाता है । Post.Tibial नाड़ी में रोग हो तो पांव के तलुए में वातिक (Trophic) व्रण हो जाता है । इनके अतिरिक्त Supraorbital, Supraclavicular, Femoral Cutaneous, Anti brachial Cutaneous नाड़ियाँ भी ग्रस्त हो जाया करती हैं । इसके बाद अस्थियों का पोषण बन्द हो जाने से वे भी क्रमशः क्षीण होती जाती हैं ।

काकणक कुष्ठ त्वक् कुष्ठ :- Nodular Leprosy, Lepromatous Leprosy, Cutaneous Leprosy:-

उपर्युक्त सुप्ति कुष्ठ में त्वचा के अन्दर जीवाणु कम बढ़ पाते हैं, जो बढ़ते हैं वे भी नाड़ी सूत्रों में ही, पर जब त्वचा अधिक सदोष होती है एवं जब उसमें जीवाणु शीघ्र शीघ्र रोहण कर जाता है अर्थात् प्रतिरोधक शक्ति कम होती है तो अन्तश्चर्म में तथा अन्तश्चर्म के नीचे के मेदोमय स्तर (Sub Cutaneous Layer) में भी जीवाणु के अधिक प्रसरण कर जाने से Large Mononuclears या Epithelioid Cells या Macrophages. अधिक संख्या में एकत्रित हो जाते हैं । इनके साथ Lymphocytes और Fibroblasts नामक श्वेत कण भी जीवाणुओं का प्रतिरोध करने के लिये एकत्रित हो जाते हैं । जब पृथक पृथक ये सेल जीवाणुओं का प्रतिकार नहीं कर पाते तो जैसे ऊपर कहा गया है ये परस्पर मिलकर अनेक मींगियों वाले सेलों को जिन्हें Giant Cells या इस रोग में Lepra Cells कहते हैं बना देते हैं । इनके अन्दर कुष्ठ जीवाणु अत्यधिक मात्रा में घिरे हुये होते हैं । जीवाणु प्रतिरोधक इन Macrophages के परस्पर मिलकर एक हो जाने से जो स्नायुतन्तु (Scar Tissue) के अंकुर या दाने बनते हैं उन्हें Granuloma कहते हैं । ये Granuloma अन्तश्चर्म के अन्दर बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं । सुप्ति कुष्ठ में ये Granuloma वात नाड़ियों के अन्दर ही बनते हैं परन्तु इस त्वक् कुष्ठ में ये विशेषत: अन्तश्चर्म के अन्दर फैले हुये रहते हैं । स्वल्प मात्रा में वात नाड़ियों में भी उत्पन्न हो जाते हैं । इस अवस्था में नाड़ी सम्बन्धी लक्षण पहले नहीं होते, बाद में रोग के बढ़ने पर संज्ञा नाश का लक्षण भी होता है । अन्तश्चर्म के अन्दर Granuloma के अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाने से चेहरे, कान, स्फिक् प्रदेश, पृष्ठ प्रदेश, शाखाओं के संघर्ष में आने वाले पृष्ठों पर एक तिहाई इंच व्यास के कुछ उभरे हुये हलके लाल से रंग के चकते (Macules या Papules) निकल आते हैं जो बीच में ऊंचे, चारों ओर त्वचा के लेवल में होते हैं । जिनमें स्पर्श ज्ञान और स्वेद दोनों नहीं होते हैं । ज्वर के साथ ऐसे चकते समय समय पर निकलते रहते हैं और फिर फीके पड़कर छिप जाते हैं । प्रारम्भ में ये उभार न होके चकते Macules भी होते हैं तथा त्वचा के समतल होते हैं । इन्हीं प्रदेशों मे फिर छोटे छोटे उभार (Nodules) जो त्वचा में विद्यमान Granuloma के कारण होते हैं दृष्टिगत होने लगते हैं । नाक, भौंहों, कान आदि पर इन उभारों के हो जाने से चेहरा विषम हो जाता है । त्वचा तथा लोमों का पोषण न होने से भौंहों के बाल तथा आंखों के बाल झड़ने लग जाते हैं । ये दाने या उभार नाक, मुख, गले, कण्ठ, (Larynx) के अन्दर की श्लेष्म कला में भी हो जाते हैं । अर्थात् इस रोग में जीवाणु त्वचा व नाड़ियों के अतिरिक्त श्लेष्मिकला में भी रोहण कर जाता है, जिससे नासा, गले, कण्ठ सम्बन्धी लक्षण हो जाते हैं + नाक से स्राव होता रहता है।

इसे निकाल दें

Septum के नष्ट हो जाने से नाक बैठ जाती है । गले में Nodules होने से आवाज बैठ जाती है । अन्तश्चर्म में इस रोग के बढ़ जाने पर वहां की नाड़ियां भी ग्रस्त होकर स्थूल हो जाती हैं । उदाहरणत: ग्रीवा में Great Auricular, हंसली की हड्डियों पर Supraclaviculars, कोहनी के ऊपर की तरफ Ulnar, निम्न बाहु के आगे Antebrachial Cutaneous, कलाई पर Radial, Median उरुओं के आगे Femoral Cutaneous, गिट्टों के आगे Superficial Peroneals अन्दर के गिट्टे के नीचे, Post. Tibial स्पर्श करने से मोटी दीखती है । हाथ पैर में संज्ञा शक्ति कम हो जाती है पर चेष्टा शक्ति कम नहीं होती जिससे रोगी हाथ पैर से काम करता रहता है । उन पर दाह या व्रण की प्रतीति कम होने से उनमें व्रण होते रहते हैं । अन्त में चेष्टावाही नाड़ियों में भी रोग फैल जाता है जिससे हाथ पांव, मांसपेशियों में भी शक्ति जाती रहती है और उनमें विकलता आ जाती है (Main En Griffe) यह महा कुष्ठ रोग एक दीर्घ तथा कष्ट साध्य रोग है ।

कुष्ठ रोग की चिकित्सा :- Treatment of Leprosy

वर्तमान समय में कुष्ठ रोग की चिकित्सा Sulphone औषधियों द्वारा की जाती है । पहले १९३८ में यह पता चला कि ४:४ Diamino Diphenyl Sulphone नामक Compound उत्तम जीवाणु नाशक है परन्तु इसके विषैले होने से इसके कुछ योग (Derivative) बनाये गये जो कुष्ठ जीवाणु को नष्ट करने के लिये दिये जाने लगे । बाद में इस प्रारम्भिक कम्पाउन्ड का भी स्वल्प मात्रा में प्रयोग कुष्ठ रोग के लिये बड़ा लाभदायक पाया गया । Di-amino-diphenyl-sulphone (D.D.S. या Dapsone) Dapsone की गोलियां (B.W.) Diphone (B.P.) की गोलियां का प्रयोग, Avlosulphone (I.C.I.) तथा Novophone (Bengal Chem.) Siosulphone (A.D.) की गोलियों के रूप में होता है । यह औषधि २५ मिलिग्राम की मात्रा में प्रतिदिन एक मास तक दी जाती है । परन्तु सप्ताह में ६ दिन देकर एक दिन इसका नागा रखा जाता है । दूसरे मास में इसकी दैनिक मात्रा ५० मिलिग्राम कर दी जाती है । क्रमश: बढ़ाते हुए यदि इसकी साप्ताहिक मात्रा ५०० मिलिग्राम से न बढ़ाई जाय तो इसका कोई विषैला प्रभाव नहीं होता । तीसरे मास से इसकी दैनिक मात्रा १०० मिलिग्राम कर दी जाय और सप्ताह में ५-६ दिन ही इसका प्रयोग किया जाय तो जब तक रोगी Bacteria Negative. नहीं हो जाता अर्थात् दो तीन वर्ष तक इसका प्रयोग बेखटके किया जा सकता है । पर बहुधा तो पहले २५ मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार दो सप्ताह तक, फिर ५० मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार दो सप्ताह तक, फिर १०० मिलि० मात्रा में सप्ताह में २ बार दो सप्ताह ए।

या Neural Leprosy में इसे 20 २५ मि.लि. दैनिक मात्रा में १ मास फिर 40 ५० मि.लि. मात्रा में ३ मास फिर 60 ७५ मि.लि. मात्रा में दैनिक मात्रा में ३ मास और फिर 65 १०० मि.लि. दैनिक मात्रा में सप्ताह में केवल छः दिन देते जाते हैं।

Lepromatous type में इसे पहले 5 १० मि.लि. दैनिक मात्रा में ३ मास फिर 40 २० मि.लि. दैनिक मात्रा में छः मास ३ मास फिर 20 २५ मि.लि. दैनिक मात्रा में छः मास और फिर 40 ५० मि.लि. दैनिक मात्रा में सप्ताह में छः दिन देते जाते हैं। मात्रा छोटी ही हो लगातार और अधिक का प्रयोग किया जाए तो विशेष लाभ होता है।

मंहगी होने से तथा अन्य उक्त sulphone की अपेक्षा अधिक उपयोगी न होने से विशेष प्रयोग में नहीं आता।

निकालो

Sulphone suspension in oil :— सल्फोन का तेल में घोल भी मिलता है इसको १ मिलिलिटर मात्रा में सप्ताह में एक दिन गहरा मांस द्वारा दे दिया जाता है तथा इसे मात्रा २ मास जारी रखा जाता है फिर २ मि.लि. दो सप्ताह में १ बार मांस द्वारा दिया जाता है। इस तरह मांस में डिपो के रूप में यह रख दिया जाता है। इसे पश्चात कैसिये रखेल कुरव की सूई नहीं होती।

फिर इसी प्रकार ५१-५० मिलि० दो सप्ताह में बढ़ाते हुऐ ६०० मिलि० साप्ताहिक मात्रा में अर्थात् ३०० मिलि० सप्ताह में दो बार इसे दिया जा सकता है। बालकों में २५ मिलि० मात्रा में सप्ताह में दो बार चार सप्ताह, फिर ५० मिलि० सप्ताह में दो बार चार सप्ताह, फिर १००. मिलि० सप्ताह में दो बार चार सप्ताह देना चाहिये। यह कम्पाउन्ड जहां सस्ता है वहां कार्यकारी भी है। तथा आंतों में पूर्णतया विलीन भी हो जाता है।

उपर्युक्त प्रारम्भिक कम्पाउन्ड D.D.S. से बनाये गये प्रयोगों में से Sulphoxone Sodium, Diasone (sodium) (Abbot Labo) अर्थात् जो Diaminodiphenyl Sulphone का Disodium Formaldehyde Sulphoxylate है, मुख द्वारा ⅓ ग्राम की दैनिक मात्रा में दिया जाता है जो पेट में जाकर D.D.S. बन जाता है। ⅓ ग्राम की इसकी एक गोली प्रतिदिन दी जाती है और फिर कुछ सप्ताह बाद इस मात्रा को बढ़ाते हुऐ १ ग्राम दैनिक मात्रा तक पहुंचा कर उसी को ६ मास कायम रक्खा जाता है। Diaminodiphenyl Sulphoxide (D.D.S.O.) (I.C.I.) १०० मिलि० की गोलियां मिलती हैं जो Dapsone के समान ही उपयोगी हैं।

Diamidin (P.D.Co.) भी इसी प्रकार मुख द्वारा दी जाती है। Solapsone (B.P.C.) Sulphetrone (B.W.) तथा Novotrone (Bengal Chemical) मांस द्वारा देने के लिये उत्तम Sulphones हैं। इनमें से प्रथम औषधि Tetrasodium Phenylopropylamino Diphenyl Sulphonate Tetrasulphon है। इसका Distilled Water में ५० प्रतिशतक ताकत का बना हुआ घोल ½ सी०सी० की मात्रा में (·२५ ग्राम Sulphetron) (e. g. solapsone) सप्ताह में दो बार मांस द्वारा दिया जाता है। १४ दिन बाद ½ सी०सी० बढ़ा देते हैं। बाद में यही दो दो या तीन तीन सी०सी० की (१½ ग्राम Sulphetron) मात्रा में दो बार दिया जाता है। इस प्रकार प्रति सप्ताह एक सी०सी० की मात्रा बढ़ाते हुऐ इस औषधि को ४ सी०सी० की मात्रा तक पहुंचाकर सप्ताह में दो बार दे दिया जाता है और इसी मात्रा को जब तक रोगी Bacteria से मुक्त न हो जाय, कायम रक्खा जाता है। अर्थात् १ ग्राम साप्ताहिक मात्रा से ४ ग्राम साप्ताहिक मात्रा तक इसे दिया जाता है।

Avlosulfon Soluble:-(I.C.I.) २०० मिलि० D.D.S. १ सी०सी० जल में मिलता है। ¼ सी०सी० मात्रा में सप्ताह में दो बार दो सप्ताह तक, फिर ¼ सी०सी० प्रति दो सप्ताह बाद बढ़ाते हुऐ २-३ सी०सी० सप्ताह में दो बार देते हैं।

Diphenyl Thiourea का समास S.U. १९०६ या Thiambutosine भी क्षय रोग जीवाणु नाशक औषधि को भी महा कुष्ठ में बड़ा उपयोगी पाया गया है। ½ ग्राम मात्रा में प्रतिदिन दी जाती है।

Sulphone के देने पर कुष्ठ जीवाणु की वृद्धि होनी बन्द हो जाती है फिर ये जीवाणु शीघ्र मरते नहीं (Bacteriostasis) इस औषध का प्रयोग थोड़ी मात्रा में दीर्घ काल तक निरन्तर २-३ वर्ष तक किया जाए तो रोगी को बहुत कुछ रोगमुक्त किया जा सकता है। इसके प्रयोग के बाद रोगी को अपना स्वास्थ्य अच्छा प्रतीत होने लगता है। त्वचा पर के उभार Nodules बैठने लगते हैं और एक वर्ष के अन्दर लुप्त हो जाते हैं उसके नाक के अन्दर के क्षत भी ठीक हो जाते हैं। आंखों में विकृति विशेष न हो तो वह भी शान्त हो जाती है २ वर्ष तक रोगी की अवस्था काफी सुधर जाती है।

Neural leprosy पर भी इस औषधि का प्रभाव शीघ्र होने लगता है। १ वर्ष के अन्दर २ त्वचा पर के दाग अस्पष्ट हो जाते हैं। बीच में से ठीक होते हो तो ये सारे ठीक हो जाते हैं २ वर्ष तक की चिकित्सा से सारे ठीक हो जाते हैं। Nerves या नाड़ियों में दर्द विशेष न हो तो Macules भी इस औषधि से शीघ्र लुप्त होने लगते हैं। नाड़ियां Nerves अधिक मोटी न हों तो उनकी दर्द भी ठीक होने लगती है।

त्वचा में विद्यमान जीवाणुओं की परीक्षा करने से पता लगता है कि उनके बड़े २ ढेर छोटे २ हो जाते हैं। उनकी आकृति Rod की तरह इकहरा दाने की सी हो जाती है। वे पहले के समान acid fast भी नहीं रहते। क्रमशः जीवाणु त्वचा में से लुप्त हो जाते हैं। तथापि त्वचा के नीचे के अवयव की नाड़ियों में Subcutaneous Nerves में वे फिर भी पाए जाते हैं। पर्याप्त चिकित्सा ३-४ वर्ष या इससे अधिक जारी रखने पर ये जीवाणु वहां से भी लुप्त हो जाते हैं अतः ३०० मि.लि. साप्ताहिक मात्रा में इस औषधि को फिर भी जारी रखना चाहिए।

इस प्रकार Sulphone कुष्ठ की एक सस्ती और प्रभावकारी औषधि प्रतीत होती है। इसे थोड़ी मात्रा में दिया जाए तो किसी उपद्रव के इस औषधि से होने की आशंका नहीं रहती।

त्वचा पर कण्डू का उपद्रव भी इस औषधि से हो सकता है तब औषधि को बन्द करके corticosteroid का प्रयोग करना चाहिए Vit C, का प्रयोग भी इसमें लाभ करता है।

१४ दिन बाद $\frac{1}{2}$ ग्राम मात्रा बढ़ाते हुये अधिक तम २ ग्राम दैनिक मात्रा तक अर्थात् ४ गोलियों तक प्रतिदिन दी जा सकती हैं। बालकों को भी आधे एक या डेढ़ ग्राम तक दैनिक मात्रा में दी जाती है। एक वर्ष तक के प्रयोग से रोगी को पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है जिन्हें D.D.S. अनुकूल नहीं पड़ती उनके लिये उपयोगी औषधि है।

Sulphones(D.D.S.)के प्रयोग करने पर रक्त पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है अर्थात् Haemolysis की प्रक्रिया बढ़ सकती है इसकी रोकथाम के लिये विटामिन बी१२ मांस द्वारा ३० माइक्रोग्राम मात्रा में सप्ताह में एक बार या मुख द्वारा १० माइक्रोग्राम मात्रा में प्रतिदिन देते रहना चाहिये। साथ ही Ferrous Sulphate या Gluconate ६ ग्रेन मात्रा में प्रतिदिन दे देना चाहिये।

इस औषधि के देने से ज्वर हो जाय तो औषधि का प्रयोग बन्द कर देना चाहिये। ज्वर उतरने के बाद फिर इसे थोड़ी मात्रा में आरम्भ करना चाहिये। ज्वर के लिये १० प्र०श० Calcium Gluconate १० सी०सी० मात्रा में शिरा द्वारा एक एक दिन छोड़ के देना चाहिये। Prednisolone २०-२५ मिलि० मात्रा में या Dexamethasone. ४ मिलि० मात्रा में प्रतिदिन देना चाहिये।

एक नवीन क्षाय रोधक औषधि Thiosemicarbazone जिसका रासायनिक नाम Acetyl Aminobezaldehyde Thiosemicarbazone ($C_{10}H_{12}ON_4S$) है तथा जो Conteben (Bayer) Tibione Thiacetazone, Siocarbazone Myrizone, Tebofen आदि नामों से बाजार में मिलती है कुष्ठ रोग के लिये Sulphone के समान ही उपयोगी पाई गई है। २५ मिलिग्राम दैनिक मात्रा में इसे आरम्भ करके १४ दिन के बाद २५ मिलि० बढ़ाते हुये इसे १५० मिलिग्राम दैनिक मात्रा में इन रोगियों को जिन्हें Sulphone औषधि अनुकूल नहीं है, दी जाती है। २ वर्ष से अधिक काल इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा जीवाणु हठी हो जाते हैं।

कुष्ठ रोग के नाशा नेत्र तथा कण्ठ सम्बन्धी सर्व उपद्रव इनके प्रयोग से कुछ सप्ताहों में ठीक होने लगते हैं। त्वचा पर के उभार व्रण आदि भी शान्त होने लगते हैं। ६ मास की चिकित्सा के बाद रोगी अपने को अधिक स्वस्थ और हलका अनुभव करने लगता है। तो भी रोगी की कुष्ठ जीवाणु से शून्य होने के लिये दो तीन वर्ष तक इन औषधियों का सेवन करना चाहिये और उसके बाद भी शरीर में कहीं पर जीवाणुओं का कुछ अंश रह ही जाता है। इसलिये इसकी चालू मात्रा जो परम मात्रा की आधी होती है इसके बाद भी जारी रखनी पड़ती है। इन औषधियों के शरीर में पहुंचने पर कुष्ठ जीवाणु बढ़ नहीं सकता जिससे फा

34जु.त D.D.S. ~~को~~ Hidnocarpus oil में 25% घोल या Suspension बनाकर उसे 1 मिलिलिटर मात्रा में मांस में गहरा इन्जेक्शन के रूप में सप्ताह में 1 बार 2 महीना तक और बाद में इसे 2 मिलिलिटर मात्रा में ~~सप्ताह में~~ 15 दिन में 1 बार किया जाए तो इससे इस औषध की डिपो एक स्थान पर कायम कर दी जाती है जहां से यह औषध धीरे धीरे जाती रहती है। दोनों का यह मिश्रण या दोनों औषधियों का मेल किसी एक की अपेक्षा अधिक लाभदायक पाया गया है।

लगता है कि ये औषधियां Bacteriostatic हैं और फिर धीरे धीरे जीवाणु नष्ट होने लगता है। लक्षणों पर तो इनका प्रभाव शीघ्र होता है। जीवाणु पर इसका प्रभाव मन्दता और विलम्ब से होता है। तो भी कुष्ठ रोग के लिये यह इस समय तक सर्वोत्तम औषधियां हैं। इनके सेवन में विशेषत: D.D.S. के देते हुये दो दो मास बाद रक्त की परीक्षा करके देखते रहना चाहिये ताकि उसमें Haemolysis तो नहीं हो रहा है। तथा रोगी को प्रोटीन प्रधान भोजन पर्याप्त मात्रा में मिलते रहना चाहिये। इससे इस औषधि का विषैला प्रभाव कम हो जाता है।

तुवरक तैल या चाल मुग्रा तैल Oleum Chaulmoograe. तथा Oleum Hydnocarpi का ५-२५ बुन्द की मात्रा में भी चिरकाल से इस रोग के लिये प्रयोग होता रहा है और इसका ४-५ वर्ष प्रयोग करने से कुष्ठ जीवाणु पर घातक प्रभाव भी होता है। परन्तु इसका प्रभाव जो ५-१० वर्ष में होता था वह नवीन औषधि के द्वारा दो तीन वर्ष में हो जाता है। अत: इस तैल का प्रयोग अब बहुत कम हो गया है। Hydnocarpus Oil के Fatty Acids के साथ Sodium के बने Sodium Hydnocarpate के १-३ ग्रेन की मात्रा में मांस द्वारा तथा त्वचा द्वारा देने से भी इस रोग में लाभ होता है। तैल १-२ सी०सी० मात्रा आरम्भ करके ५-१० सी०सी० मात्रा तक सप्ताह में दो बार मांस द्वारा भी दिया जा सकता है।

<u>आयुर्वेद में महा कुष्ठ रोग :-</u>

आयुर्वेदानुसार त्वचा की प्राण शक्ति क्षीण हुई हो तथा उसमें आम दोष की भी वृद्धि अर्थात् कफ दोष की भी वृद्धि हो तो उसमें कुष्ठ जीवाणु के सहज प्रतिकार करने की शक्ति कम हो जाती है। जिसे कुष्ठ कृमि वहां प्रवेश करके रोहण करने लगता है। फिर इसके विपरीत त्वचा की वात नाड़ियों में अंतश्चर्म में तथा त्वचा के नीचे के मेदो मय स्तर में श्लेष्म धातु की प्रतिक्रिया होकर जो Lepra Cells बन जाते हैं उन्हें महा कुष्ठ रोग कहते हैं। बाद में इसमें पित्त की प्रतिक्रिया होने पर न्यूनाधिक पूय भाव भी हो जाता है। (महाकुष्ठ त्रिदोषप्रकोपजनित व्याधि है।)

इस रोग के लिये अति प्राचीन काल से तुवरक तैल का ५-१० बुन्द की मात्रा से आरम्भ कर ५०-६० बुन्द की मात्रा तक पताशों में रखकर प्रयोग होता रहा है। परन्तु इसके अधिक मात्रा में देने से पेट खराब हो जाता है। अत: इसका स्वल्प मात्रा में देना ही ठीक रहता है।

::::::::

नाड़ी संस्थान के रोग

Diseases of the Nervous System .

नाड़ी रचना विज्ञान :-

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना काण्ड, Neurones तथा उनको जोड़ने वाले अवयव Neuroglia (Glia = जोड़ने वाला) से बने हुऐ हैं । सब मिलकर Neurones की संख्या १० बिलियन के लगभग होती है । जिनमें से प्रत्येक एक सेल और उसमें से निकलने वाले कुछ छोटे सूत्रों तथा एक दीर्घ सूत्र (Nerve Fibre) से बना होता है । सेल के अन्दर दाने (Nissl Granules) होते हैं जो उसके मुख्य जीवन तत्व प्रतीत होते हैं । सेल में से निकले दीर्घ सूत्र (Cell Fibre) के मध्य में जो सूक्ष्म सूत्र होता है उसे Axon या Axis Cylinder कहते हैं । उस पर वसामय (Lipid) आवरण होता है जिसे Medulla या Myelin का आवरण कहते हैं। इसके बाहर न्यूक्लियस वाला सूक्ष्मावरण होता है जिसे Neurilemma या Schwann का आवरण कहते हैं ।

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के अन्दर विद्यमान Neurones पर यह बाह्यावरण नहीं होता । प्रान्तीय नाड़ियाँ (Peripheral Nerves) के सूत्रों पर ही यह पाया जाता है ।

Neuroglia:-Neurones या नाड़ी सूत्रों और नाड़ी सेलों के बीच बीच के अवयव को Neuroglia या नाड़ी स्नायु भाग कहते हैं । इसमें जो Nuclei की तरह जो दाने दीखते हैं वास्तव में वे सौत्रिक सेल (Cells With Fibres) होते हैं ।

(१) इनमें से तारों की तरह के सेलों को Astrocytes कहते हैं जो दो प्रकार के होते हैं । जिनमें द्रव सा Cytoplasm होता है उन्हें Protoplasmic Astrocytes कहते हैं ये अनेकानेक शाखा प्रशाखाओं वाले होते हैं । दूसरे Fibrous Astrocytes कहते हैं उनके Cytoplasm में सूत्र दिखाई पड़ते हैं, ये भी अनेकानेक शाखा सूत्रों से युक्त होते हैं । इन दोनों में से पहले तो मस्तिष्क के काले भाग में दूसरे श्वेत भाग में पायें जाते हैं । इन सेलों की कुछ एक शाखा सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को घेरे हुऐ रहती हैं । रक्तवाहिनियों के घेरने वाले इन सिरों को Vascular Foot Plate कहते हैं । दूसरी ओर इनसेलों की कुछ शाखाऐं नाड़ी सेलों को घेरे हुए रहती हैं । इस प्रकार ये Astrocytes नामक सेल रक्तवाहिनियों के रक्त और Neurones के बीच तथा सेरिब्रोस्पाइनल द्रव और Neurone के बीच में परदे का काम करते हैं । अर्थात् Neurones के अन्दर उत्पन्न होने वाले

द्रव्य या Metabolites तथा उपर्युक्त द्रवों में पाये जाने वाले पदार्थ इन्हीं Astrocytes की तह के बीच में से गुजर कर इधर उधर जाते हैं। मस्तिष्क सुषुम्ना प्रदेश में क्षत हो जाने पर ये ही Fibroblasts के समान वहां वृद्धि करके अवकाश को भर देने (या Gliosis) का कारण होते हैं।

(२) Neurones के बीच बीच के प्रदेश में, श्वेत भाग में तो नाड़ी सूत्रों के बीच बीच में, तथा कृष्ण भाग में नाड़ी सेलों के आसपास उनसे चिपटे हुए, एक दूसरी प्रकार के बान्धने वाले सेल भी होते हैं जिनको उनमें से निकलने वाले प्रवर्धन सूत्रों के संख्या में अतिस्वल्प होने से, Oligodendrite कहते हैं। (Oligos = स्वल्प) ये भी नाड़ी सेलों व नाड़ी सूत्रों की रक्षा करने का कार्य करते हैं।

(३) नाड़ी सेलों के बीच बीच में बहुत छोटे छोटे पर अनेक शाखा प्रशाखाओं वाले दूसरे सेल भी होते हैं जिन्हें Microglia कहते हैं ये Reticuloendothelial सेलों का सा काम करते हैं अर्थात् ये मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के मलवाहक सेल या Phagocytes. होते हैं। ये स्थिर सेल, मस्तिष्क के रुग्ण प्रदेश में, बिना शाखा प्रशाखाओं के गतिशील या Amaeboid सेल बन जाते हैं यह आश्चर्य की बात है, और वहां पर नष्ट हुए Myelin के खण्डों को अपने अंदर लेकर ये समीप की रक्तवाहिनियों तक चले जाते हैं।

१. ऊर्ध्व मस्तिष्क का अग्रिम भाग (Prefrontal Area or Prefrontal Lobe) बुद्धि या विचार का स्थान है तथा यह मस्तिष्क के अन्तर्गत निम्न केन्द्र स्थानों Hypothalamus आदि का नियामक भी है। धमनी जरा रोग (Arteric Sclerosis) के कारण इस स्थान का पोषण कम हो जाय तो ध्यान- धृति- स्मृति नाश आदि मानस विकार होने लगते हैं। [handwritten: अपने पास के रक्षा करने और समाज में ठीक व्यवहार करने की पहले जैसी बुद्धि नहीं रहती] तथा निम्न केन्द्र स्थानों के स्वतन्त्र हो जाने से उत्पन्न होने वाले लक्षण भी होने लगते हैं। अन्त में बुद्धि नाश (Dementia) हो जाता है

ऊर्ध्व मस्तिष्क के वाह्यावरण भाग या Cortex में विद्यमान दर्शन-श्रवण-गन्ध-रस-स्पर्श आदि किसी संज्ञाग्राही भाग में क्षति आ जाय तो रोगी को उस संज्ञा की प्रतीति नहीं होती। इसी भाग में विद्यमान किसी चेष्टा केन्द्र में क्षति आ जाय तो उस केन्द्र से सम्बन्धित [handwritten: दूसरी ओर की] मांस पेशियों में घात या Paralysis हो जाता है [handwritten: जिसे एकांगघात Monoplegia हो जाता है] [handwritten: इसके अतिरिक्त Jacksonian epilepsy भी होता है] Prefrontal Lobe के दौत्रों में क्षति आ जाय तो निर्णय करने की शक्ति कम हो जाती है। [handwritten: occipital lobe में विक्षोभ होने से दृष्टि भ्रम हो जाता है ... Homonymous hemianopia हो जाता है] Frontal तथा Temporal Lobes के कुछ भागों

में क्षति आ जाय तो भावों (Emotions) पर नियन्त्रण कम हो जाता है। वाह्यावरण (Cortex) के नीचे के, Medulla से ऊपर के भाग में अर्थात् Hypothalamus तथा Reticular Activating Sys tem. को भाव का स्थान कहा जाता है। इसका Pituitary Gland के साथ निकट सम्बन्ध है। इस स्थान के उत्तेजित रहने से Cortex तथा उसके उत्तेजित रहने से यह स्थान उत्तेजित रहता है। इस स्थान पर Parasympathetic तथा Sympathetic अनैच्छिक नाड़ियों का परस्पर विपरीत प्रभाव पड़ता रहता है। इन दोनों में से पिछली नाड़ियों की उत्तेजना में यह स्थान उत्तेजित रहता है जिससे रक्त भार व हृदय गति में वृद्धि होती तथा पाचन संस्थान का कार्य मन्द होता है। पहली नाड़ियों की उत्तेजना में यह स्थान शान्त रहता जिससे रक्त भार व हृदय गति मन्द होती तथा पाचन संस्थान का कार्य ठीक रहता है। सम्भव है चित्त शामक औषधियों से ~~[illegible]~~ प्रथम नाड़ी समूह को बल मिलता है।

(२) चेष्टा सूत्र (Motor Neurones or effector organs):- ऊर्ध्व मस्तिष्क के बीच की खाई (Central Sulcus) के आगे की ओर ऊपर नीचे की दिशा में एक उभार होता है जिसे Ascending Frontal Convolution (Precentral gyrus, motor area) कहते हैं। इसके सेलों में से ऊर्ध्व चेष्टा सूत्र (Upper Motor Neurones) प्रारम्भ होते हैं, और फिर पहले Corona Radiata, फिर Internal Capsule के पिछले भाग के अगले दो तिहाई भाग, के रूप में नीचे उतर कर मिड ब्रेन तथा Pons में से होते हुऐ Medulla में, Pyramid के रूप में दूसरी ओर क्रास करके सुषुम्ना काण्ड में Lateral Tract (या indirect-corticospinal tract) के रूप में नीचे उतरते उतरते उधार के Post.Horns के (Internuncial) सेलों में और फिर दूसरे सूत्र (connector Neurones) के द्वारा Anterior Horns में समाप्त होते जाते हैं। जो १० प्र०श० चेष्टा वाही सूत्र क्रास नहीं करते वे Anterior या Direct Pyramidal (cortico spinal) Tract के रूप में उसी ओर सुषुम्ना काण्ड में नीचे उतरते हैं और वहां Ant.White Commissure में क्रास करके Post.Horns में और फिर दूसरे सूत्र के द्वारा Ant.Horns में समाप्त होते हैं।

इसी प्रकार मस्तिष्क नाड़ियाँ Motor Cranial Nerves के जिनमें से तीसरी मस्तिष्क नाड़ी का Nucleus, Superior Corpora Quadrigemina के लेवल पर चौथी मस्तिष्क नाड़ी का Nucleus, Inferior Corpora Quadrigemina के लेवल पर है, पांचवीं मस्तिष्क नाड़ी का Nucleus, Pons के मध्य में, छठी व सातवीं के Nuclei, Pons के निम्न भाग में हैं तथा ९-१०-११-१२ नाड़ियों के Nuclei, Medulla में होते हैं + Nuclei में भी प्रायः दोनों ओर से Upper Motor Neurones आकर समाप्त होते हैं। जैसे के

निचले भाग से सम्बन्धित Facial Nucleus में तथा १२ वीं नाड़ी के Nucleus में केवल एक ओर से ही Upper Motor Neurones आते हैं ।

जब सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तथा मस्तिष्कान्तर्गत Motor Nuclei से दूसरे निम्न चेष्टावाही सूत्र (Lower Motor Neurones) प्रारम्भ होकर शरीर तथा नेत्र मुख आदि की मांसपेशियों में जाते हैं । इस प्रकार चेष्टा मस्तिष्क से दो सूत्रों द्वारा शरीर की मांस पेशियों तक पहुंचती है । ऊर्ध्व चेष्ठा वाही सूत्र निम्न चेष्ठा वाही सूत्रों का नियमन (Inhibition) करते हैं । वे रुग्ण हो जायें अर्थात् उनमें विक्षोभ हो जाय तो ऐच्छिक मांस पेशियों में आक्षेप होने लगते हैं । यदि उनका नियन्त्रण मांस पेशियों पर न रहे तो Extra Pyramidal सूत्रों के द्वारा मांस पेशियों में अनियन्त्रित चेष्टा में होने लगती हैं । पक्षाघात युक्त अंगों में ऐसी चेष्टायें देखने में आती हैं । यदि उनकी पोषक धमनियों में अवरोध (Thrombosis) हो जाय तो दूसरी ओर की मांस पेशियों पर हमारा नियन्त्रण कम हो जाता या नहीं रहता है + अर्थात् उनमें स्तम्भ युक्त पक्षाघात हो जाता है । जिससे उधार की अंगुलियों और कलाई या पैर में फैलाने (Extension) की शक्ति नहीं रहती । बाहु, धड़ के साथ कुछ सटा हुआ सा रहता तथा अग्रबाहु, अन्दर की ओर विवर्तित (Pronated) रहता है । शाखाओं में यह स्तम्भ युक्त पक्षाघात विशेषत: होता है । क्योंकि माथे, नेत्र, छाती, धड़ आदि में दोनों ओर से चेष्ठावाही सूत्र आते हैं + अत: उनमें पक्षाघात का लक्षण नहीं होता । इस अवस्था में शाखाओं में प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) भी तीव्र रूप में होते हैं । तलुए को खुजाने से अंगूठा ऊपर मुड़ जाता है । (Dorsiflexion) । वाम Midd.Cere.Art. में रोध हो तो भाषण शक्ति भी नष्ट हो जाती है और कभी कभी बोले या लिखे शब्द की ग्रहण शक्ति भी घट जाती है । Post.Cere.Art. में रोध हो तो दूसरी आंख में रुग्ण पार्श्व की दृष्टि धुंधली हो जाती है । (Homonymous Hemianopia) । अग्रिम मस्तिष्क धमनी में रोध हो तो मूर्छा के बाद मानसिक लक्षण विशेष होते हैं । साथ ही एक टांग में निर्बलता होती है ।

जब निम्न चेष्ठावाही सूत्रों (Lower Motor Neurones) में (या Anterior Horns) में रोग होता है जैसे कि Poliomyelitis रोग में होता है, तो शाखाओं की मांस पेशियों में शैथिल्य युक्त पक्षाघात (Flaccid Paralysis) होता है तथा शाखाओं में प्रतिक्षेप (Tendon Reflexes) लुप्त हो जाते हैं । मृत मांसों

में लघुता (Atrophy) होती जाती है तथा उनमें कम्प (Twitching) होने लगता है।

(३) अतिरिक्त संज्ञावाही नाड़ियाँ (Extraphyramidal Motor Neurones):- कुछ एक चेष्टावाही सूत्र Cortex से प्रारम्भ न होकर Basal Ganglia से आरम्भ होते हैं। मस्तिष्क में विद्यमान कुछ एक Ganglia जैसे Caudate Putamen, Substancia Nigra तथा Globus Pallidus नामक Nuclei परस्पर तो नाड़ी सूत्रों द्वारा सम्बन्धित होते हैं किन्तु इनमें से केवल Globus Pallidus से ही ऊर्ध्व चेष्टावाही सूत्र निकलते हैं तथा नीचे Mid Brain के Red Nucleus में समाप्त होते हैं और फिर मिड ब्रेन में से कुछ एक सूत्र समूह निकलते हैं जिनमें से मुख्य ये हैं :-

१. Rubrospinal Tract :- Mid Brain में विद्यमान Red N. से निकल तुरन्त दूसरी ओर क्रास करके Pons तथा Medulla में से सुषुम्ना काण्ड के बाहर के भाग में नीचे उतर उधार Ant. Horns में समाप्त होते हैं। उनके कारण मांसपेशियों में चेष्टा सामूहिक रूप में होती है।

२. Vestibulospinal Tract :- Pons के निम्न भाग में विद्यमान Deiter's N. से निकल उसी ओर नीचे उतर कर उसी ओर के Ant. Horns में समाप्त होते हैं। इसके सूत्रों के द्वारा मांस पेशियों में सहज बल Tone बना रहता है।

३. Tectospinal Tract-Mid Brain में Superior Corporaquadrigemina के लेवल पर से आरम्भ होकर और दूसरी तरफ को क्रास करके Medion Longitudinal Bundle के अगले भाग में नीचे उतर कर उधार Ant. Horns में समाप्त होते हैं और ऐच्छिक मांस पेशियों में इनके कारण अनैच्छिक चेष्टा होती हैं।

सारांश यह है कि ये Upper Motor Neurones आंख कान आदि से प्राप्त संज्ञाओं के अनुसार शरीर की परस्पर विपरीत कार्यकारी (antagonistic) मांस पेशियों में सहयोगकारी स्वाभाविक स्वयं चेष्टाओं का वहन करते हैं।

इन Ganglia के सेलों में रुग्णता के होने से शाखाओं में स्तब्धता (Hypertonus या Rigidity) या हाथों में कम्प (Tremors) या Rhythmic movements होने के लक्षण होते हैं।

(४) संज्ञावाही नाड़ी सूत्र (Sensory Neurones) Receptor organs :- त्वचा से निकले गर्मी, सर्दी, वेदना तथा स्पर्श की ऊपरली संज्ञाओं का वहन करने वाले संज्ञा सूत्र Cutaneous Sensory Neurones तथा मांस पेशियों, कण्डराओं, संधियों तथा Periosteum से निकले गहरी संज्ञाओं का वहन करने वाले संज्ञा सूत्र (Deep Sensory Neurones) तथा आशयों से निकले (Enteroceptive)

संज्ञासूत्र पश्चिम मूलों (Posterior Roots) से सुषुम्ना में प्रवेश करते हैं। इनमें से पहली प्रकार के संज्ञा सूत्र सुषुम्ना काण्ड में प्रवेश करके (Posterior Horns) के सैलों में समाप्त हो जाते हैं, और फिर वहां से नये संज्ञा सूत्र आरम्भ होकर शीघ्र Ant.White Commissure में से दूसरी ओर क्रास करके Crossed Pyramidal Tract के आगे Spinothalamic Tract के रूप में ऊपर जाकर Mediallemniscus के साथ मिल जाते और ऊपर Thalamus के Lateral Nucleus में समाप्त हो जाते हैं।

गहरे संज्ञावाही सूत्र (Deep Sensory Neurones) सुषुम्ना काण्ड में प्रवेश करके उसी ओर उसके Posterior Column में अन्दर की ओर Tract of Gall (Fasciculus Gracilis) तथा बाहर की ओर Tract of Burdach (Fasciculus Cuneatus) के रूप में सीधे ऊपर चढ़ते जाते हैं। इनमें से Tract of Gall के सूत्र जो निचली शाखाओं से आते हैं, Medulla के नीचे के Neucleus Gracilis में तथा Tract of Burdach के संज्ञा सूत्र जो बाहुओं से आते हैं, पास ही Neucleus Cuneatus में समाप्त हो जाते हैं। वहां से दूसरे संज्ञा सूत्र आरम्भ होकर शीघ्र ही दूसरी ओर क्रास करके Mesial Fillet (Lemniscus) के रूप में ऊपर चढ़कर Thalalamus के Anterolateral Nucleus में समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार सभी संज्ञावाही सूत्र अन्त में क्रास करके दूसरी ओर Thalamus में समाप्त होते हैं। इसलिये Thalamus को शरीर का प्रधान संज्ञा या प्रतीति का केन्द्र समझना चाहिये। जिसमें शीत उष्ण आदि संज्ञाओं की प्रतीति मनुष्य को होती है। अब Thalamus से तीसरे संज्ञा सूत्र आरम्भ होकर सर्व संज्ञाओं को Central Sulcus अर्थात् ऊर्ध्व मस्तिष्क के बीच की खाई के पीछे के संज्ञा क्षेत्र (या Sensory Cortex) के केन्द्रों तक पहुंचा देते हैं जिसे संज्ञाओं के विवेचन (Discrimination) का स्थान कहना चाहिये ये अन्तिम संज्ञा सूत्रों का नियमन (Inhibition) भी करते हैं। जिससे बहुत सी व्यर्थ संज्ञाओं को मस्तिष्क तक पहुंचने से रोक दिया जाता है। स्पर्श वाही कुछ तीसरे संज्ञा सूत्र Medial Thalamic Nucleus में समाप्त हो जाते हैं जहां पर इनके कारण प्रसन्नता या कष्ट की प्रतीति मनुष्य को होती है। आशयों से आने वाली भूख, प्यास आदि संज्ञायें भी Thalamus में मनुष्य को प्रतीत होती हैं। पांचवीं, सातवीं, नौवीं, दसवीं, मस्तिष्क नाड़ियों के संज्ञावाही सूत्र भी Lemniscus के साथ ऊपर Thalamus में समाप्त होते हैं। ~~मांस पेशियों में विद्यमान वल संतुलन और सहयोग~~ (Tone-equilibrium-Coordination) की संज्ञा

वाहक सूत्र पहले सुषुम्ना काण्ड के Post.Horns में विद्यमान Dorsal Nucleus में समाप्त होते हैं। वहां से दूसरे सूत्र आरम्भ हो के या तो उधार ही Post. Spinocerebellar Tract के द्वारा ऊपर चढ़ते जाते हैं या दूसरी ओर क्रास करके Ant.Spinocerebellar Tract के द्वारा उधार ऊपर चढ़ते हैं। इनमें से प्रथम सूत्र उधार के Infe.Cerebellarpeduncle के द्वारा Cerebellum में जाते हैं। दूसरे सूत्र ऊपर जा के मध्य रेखा को क्रास करके Superior Peduncle के द्वारा जिधार से ये आये थे उसी ओर के Cerebellum में प्रवेश कर जाते हैं।

ऊर्ध्व मस्तिष्क के संज्ञा केन्द्रों Sensory Cortex में निर्बलता आ जाय, अर्थात् उसका पोषण मन्द हो जाय तो दूसरी ओर की जांघ की स्थिति का आदमी को ठीक ठीक पता नहीं चलता जिससे उस पर कुछ विवशता उत्पन्न हो जाती है।

फिरंग रोग की विष का दुष्प्रभाव होकर Posterior Roots रुग्ण हो जायें तो Tabes Dorsalis का रोग हो जाता है।

(५) ऐच्छिक नाड़ी मण्डल की रचना तथा कार्य (Antomy and Physiology of the Autonomic Nervous System):- Langley (१९२१) ने पहले पहल इस नाड़ी संस्थान का वर्णन किया। अनैच्छिक नाड़ियां उन अंगों को जैसे पुतलियों, श्वास-नालियों, आंतों, मुत्र मार्ग, स्वेद ग्रन्थियों, हृदय, रक्त-वाहिनियों आदि को जो हमारी इच्छा के आधीन नहीं, चेष्टा प्रदान करती हैं। ये नाड़ियां दो प्रकार की हैं। एक को Sympathetic दूसरी को Parasympathetic कहते हैं।

प्रथम प्रकार की अनैच्छिक Sympathetic नाड़ियां :-

१२ पृष्ठ सम्बन्धी (Thoracic) खण्डों तथा तीन ऊपर के कटि सम्बन्धी खण्डों (Lumber Segments) तक के सुषुम्ना काण्ड (Cord) के बीच के काले भाग के Lateral Column (Intermediolateral cells) से चेष्टा सूत्र (Efferent Fibres) आरम्भ होकर इन्हीं स्थानों से निकलने वाली सौषुम्न नाड़ियों (Spinal N.) के अग्रिम मुलों के अन्दर अन्दर बाहिर आते हैं। (ऊपर ये Hypothalemus के Nuclei से आरम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड में नीचे उतरते हैं) बाहिर आते ही ये सौषुम्न नाड़ी से पृथक होकर White Rami के रूप में समीपस्थ Sympathetic Trunk के Ganglion में प्रवेश कर जाते हैं।

Sympathetic Trunk के ग्रैवेय भाग में तीन अनैच्छिक ग्रन्थियां (Ganglia) Superior, Middle तथा Inferior तीन

लघु मस्तिष्क Cerebellum.

लघु मस्तिष्क या Cerebellum :-

यह शरीर की ऐच्छिक, अनैच्छिक समस्त चेष्टाओं में सामंजस्य (Coordination) उत्पन्न करने तथा शरीर की ठीक ठीक स्थिति को कायम रखने का काम करता है। यह कार्य इसमें शरीर के उसी ओर के भाग से आने वाले संज्ञावाही सूत्रों तथा इसमें से उसी भाग की मांस पेशियों में जाने वाले चेष्टा सूत्रों से सम्पन्न होता है। इसमें आने वाले संज्ञावाही सूत्र समूह (Afferent Tracts) ये हैं। :-

१.. Posterior Spinocerebellar Tract (Direct Cerebellar Tract): मांस पेशियों में से आने वाले संज्ञावाहक सूत्र पहले सुषुम्नाकाण्ड के Post. Horns. में विद्यमान Dorsal Nuclei में समाप्त होते हैं वहां से दूसरे सूत्र आरम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड के Post.Spinocerebellar Tract के द्वारा ऊपर Vermis में समाप्त हो जाते हैं वहां से तीसरे सूत्र आरम्भ होकर उसी ओर के लघुमस्तिष्क के Cortex में समाप्त हो जाते हैं।

२.. Anterior Spinocerebellar Tract (Indirect Cerebellar Tract) Dorsal Nuclei मेंसमाप्त होने वाले इन सूत्रों से सम्बन्धित कुछ दूसरे सूत्र उपर्युक्त Direct Cerebellar Tract में न जा के Anterior White Commissure में से दूसरी ओर क्रास करके Anterior Spinocerebellar सूत्र समूह के रूप में ऊपर Red Nucleus के लेवल तक चढ़कर फिर कुछ नीचे उतरकर मध्य रेखा को क्रास करके ऊपर के Peduncle के द्वारा Vermis में समाप्त हो जाते हैं और वहां से तीसरे सूत्र आरम्भ होके जिधर से ये सूत्र आये थे उधर के ~~cccccc~~ ही ~~cc~~ लघुमस्तिष्क के Cortex में समाप्त हो जाते हैं (ये दोनों Proprioceptor पता देते हैं)

३.. Cuneate तथा Gracile Nuclei से आने वाले सूत्र समूह या Arcuate Fibres :- जो गहरे संज्ञा सूत्र सीधे सुषुम्ना काण्ड के पिछले भाग में ऊपर चढ़ते हैं वे Cuneate तथा Gracile Nuclei में समाप्त हो जाते हैं वहां से दूसरे सूत्र निकल Inferior Peduncle में से Vermis में समाप्त हो जाते हैं वहां से तीसरे सूत्र निकल कर जिधर से ये सूत्र आये थे उधर के लघु ~~ccc~~ मस्तिष्क के Cortex में समाप्त हो जाते हैं।

४.. Olivo Cerebellar Tract:- Medulla Oblongata में विद्यमान Infe. Olive से सूत्र आरम्भ हो मध्य रेखा को क्रास करके Infe.Peduncle के द्वारा लघु मस्तिष्क के Vermis में समाप्त हो जाते हैं वहां से दूसरे सूत्र आरम्भ हो अर्थात् जिधर से ये सूत्र आरम्भ हुये थे उधर से दूसरी ओर के लघुमस्तिष्क में समाप्त होते हैं।

५.. Vestibulo Cerebellar Tract- Vestibular (Deiter's) Nucleus में से आने वाले सूत्र कान के Labyrinth में से आने वाली संज्ञा के वाहक होते हुये Infe. Peduncle में से Vermis में विद्यमान Nucleus में समाप्त होते हैं वहां से फिर सूत्र निकल जिधार से ये आये थे उसी ओर के लघुमस्तिष्क के Cortex में समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार कान में शरीर की स्थिति को कायम रखने का जो प्रबन्ध है उससे लघुमस्तिष्क का सम्बन्ध हो जाता है।

६.. Cerebro Cerebellar Tract(Cerebroponto Cerebellar Tract) ऊर्ध्व मस्तिष्क के Frontal, Temporal तथा Occipital Lobes से सूत्र आरंभ होकर Internal Capsule के द्वारा Pons के Nuclei में समाप्त होते हैं। वहां से नये सूत्र आरम्भ होकर मध्य रेखा को क्रास करके Middle Peduncle के द्वारा लघुमस्तिष्क के Vermis में समाप्त होते हैं तथा वहां से नये सूत्र आरम्भ होके दूसरी ओर के लघुमस्तिष्क के Cortex में समाप्त होते हैं। इस प्रकार लघुमस्तिष्क को शरीर की स्थिति की पूरी २ जानकारी रहती है।

लघु मस्तिष्क Cerebellum में से बाहिर आने वाले चेष्टावाही सूत्र समूह ये हैं :-

१.. Cerebello-rubrospinal Tract:-

लघु मस्तिष्क के Cortex में से सूत्र आरम्भ होकर ऊपर के Peduncle में से होते हुये दूसरी ओर के Red Nucleus में जा के समाप्त होजाते हैं। वहां से नये सूत्र आरम्भ हो तुरन्त मध्य रेखा को क्रास करके जिधार से पहले ये आये थे उधार ही Rubrospinal Tract के रूप में नीचे उतर Ant.Horns में समाप्त होते जाते हैं फिर वहां से नये सूत्र आरम्भ होकर उधार की शरीर की मांस पेशियों में जाते हैं।

२.. Cerebello-Cerebral Tract:-

लघु मस्तिष्क के Cortex से सूत्र आरम्भ होके इसके Dentate Nucleus में समाप्त होते हैं जहां से दूसरे सूत्र आरम्भ होके ऊपर के Peduncle में से दूसरी ओर के Thalamus में समाप्त होते हैं वहां से नये सूत्र निकल कर उधार के ऊर्ध्व मस्तिष्क के Frontal तथा Post.Central Cortex में समाप्त होते हैं।

३.. Cerebello Vestibular Tract:-

लघु मस्तिष्क के Cortex से सूत्र आरम्भ होके निम्न Peduncle में से उसी ओर के Vestibular Nucleus में जाते हैं वहां से नये सूत्र आरम्भ होके Vestibulospinal Tract के रूप में उसी ओर नीचे उतरकर उधार के Ant.Horns में समाप्त हो जाते हैं और वहां से नये सूत्र आरम्भ होके Ant.root के द्वारा उधार की मांसपेशियों में पहुंच जाते हैं। Medial Longitudinal Bundle के द्वारा ये सूत्र, नेत्र की तीसरी चौथी तथा छटी नाड़ियों के Nuclei के साथ

सम्बन्धित होने से उसकी चेष्टाओं को तथा Accessory Nerve के सुषुम्नागत भाग के Nuclei के साथ सम्बन्धित होने से ये सूत्र ग्रीवा व शिर की चेष्टाओं को नियंत्रित करते हैं।

इस प्रकार लघुमस्तिष्क विशेषत: अपनी अपनी ओर की मांसपेशियों के बल (Tone) सन्तुलन (Equilibrium) तथा सहयोग (Coordination) को कायम रखता है जिससे हमारी चेष्टायें नियमित एवं सुचारु रूप से सम्पन्न होती है। जब एक ओर के लघुमस्तिष्क में, उसकी धमनियों (Post.inferior Cerebellar Artery की शाखाओं) के Sclerosis या Thrombosis के कारण या Atrophy अथवा Tumour हो जाने से असमर्थता हो जाती है तब उस ओर की मांस पेशियों में अशक्ति या निर्बलता (Hypotonia या Asthenia) उत्पन्न हो जाती है। चलने में वह उधर को लड़खड़ा जाता, झुक जाता या गिर जाता है। उसकी चेष्टाओं में भद्दापन (या Asynergia) दीखता है। भाषण में भी शब्द या अक्षर एक दूसरे से पृथक् पृथक् बोले जाते हैं (Dysarthria या Seanning Speech) नेत्रों में लेटी हुई दिशा में नेत्र कम्प (Nystagmus) का लक्षण दृष्टिगत होता है।

नामक मांस में जाते और उसे फैलाने का काम करते हैं। इसी प्रकार Lacrimal Gland को भी अनैच्छिक सूत्र Carotid Plexus में से Deep Petrosal Nerve तथा वहां से Pterygoid Canal की Nerve के द्वारा पहुंचते हैं। Middle Meningeal Art. के साथ साथ इसके सूत्र Otic Gangtion में जाते हैं। इसी तरह यहां से निकले सूत्र Glossophoryngeal के Inferior Ganglion तथा Vagus के Ganglia में भी जाते हैं।

(२) Cervical Plexus (ग्रैवेय नाड़ी जाल) के बनाने वाली ऊपर की चार ग्रैवेय सौषुम्न नाड़ियों (Cervical Nerves) में इस Ganglion से Post Ganglionic सूत्र सिर तथा ग्रीवा प्रदेशों में जाते हैं।

(३) इसमें से Laryngopharynegeal शाखा में Pharyngeal Plexus में जाती हैं तथा वहां से गले के मांसों तथा श्लेष्म कला को इसके सूत्र जाते हैं

(४) ऊपर के Thoracic खण्डों से निकले सूत्र इसमें से Post.Ganglionic सूत्रों के रूप में हृदय के Cardiac Plexus को भी जाते हैं।

Middle Cervical Ganglion:- जो ५-६ Cervical Nerves के Ganglia के स्थान पर है Post Ganglionic सूत्र ५-६ Cervical Nerves (ग्रैवेय नाड़ियों) में उनके साथ जाते हैं। (२) इससे Thyroid शाखा में Inferior Thyroid धमनी के

नामों से होती हैं । इनमें ग्रैवेय सौषुम्न नाड़ियों से अनैच्छिक सूत्र (White Romi) नहीं आते परन्तु ऊपर की चार पृष्ठ सम्बन्धी नाड़ियों से उनसे सम्बन्धित Ganglia में से [redacted] होकर White Romi आते हैं ।

Superior Cervical Ganglion (ऊर्ध्व अनैच्छिक ग्रैवेय ग्रन्थि) :-- में से

(१) Internal Carotid Nerve के रूप में एक अनैच्छिक नाड़ी इसी नाम की धमनी के साथ साथ ऊपर मस्तिष्क में जाती है । इसके कारण इस धमनी पर छाये Internal Carotid Plexus में से सूत्र Anterior तथा Middle Cerebral Arteries तथा Opthalamic Artery के साथ साथ चले जाते हैं । External Moxillary Artery(Focial Artery) के साथ साथ जानेवाले अनैच्छिक सूत्र Submqxillary Ganglion में तथा वहां से Post Ganglionic सूत्र Submqxillary तथा Sublingual लाला ग्रन्थियों में जाते हैं । Internal Mqxillary Artery की Middle Menengeal शाखा के साथ इसके सूत्र Parotid लाला ग्रन्थि में भी जाते हैं । इसी प्रकार १-२ पृष्ठ सम्बन्धी अग्रिम मूलों से निकले Preganglionic सूत्र इस अनैच्छिक ग्रन्थि में से Post Ganglionic सूत्र के रूप में निकल कर पंचम मस्तिष्क नाड़ी की Ophthalmic शाखा के साथ साथ Long Ciliary Nerve में Iris के Dilator Pupillae नामक मांस में जाते और उसे फैलाने का काम करते हैं । इसी प्रकार Lacrimal Gland को भी अनैच्छिक सूत्र Carotid Plexus में से Deep Petrosal Nerve तथा वहां से Pterygoid Canal की Nerve के [redacted] द्वारा पहुंचते हैं । Middle Meningeal Art. के साथ साथ इसके सूत्र Otic Gangtion में जाते हैं । इसी तरह यहां से निकले सूत्र Glossopharyngeal के Inferior Ganglion तथा Vagus के Ganglia में भी जाते हैं ।

(२) Cervical Plexus (ग्रैवेय नाड़ी जाल) के बनाने वाली ऊपर की चार ग्रैवेय सौषुम्न नाड़ियों (Cervical Nerves) में इस Ganglion से Post Ganglionic सूत्र सिर तथा ग्रीवा प्रदेशों में जाते हैं ।

(३) इसमें से Laryngopharynegeal शाखा में Pharyngeal Plexus में जाती हैं तथा वहां से गले के मांसों तथा श्लेष्म कला को इसके सूत्र जाते हैं

(४) ऊपर के Thoracic खण्डों से निकले सूत्र इसमें से Post.Ganglionic सूत्रों के रूप में हृदय के Cardiac Plexus को भी जाते हैं ।

Middle Cervical Ganglion:- जो ५-६ Cervical Nerves के Ganglia के स्थान पर है Post Ganglionic सूत्र ५-६ Cervical Nerves (ग्रैवेय नाड़ियों) में उनके साथ जाते हैं । (२) इससे Thyroid [redacted] शाखा में Inferior Thyroid धमनी के

साथ साथ Thyroid ग्रन्थि में जाती है। (३) इससे Cardiac शाखा Cardiac Plexus में जाती है।

Inferior Cervical Ganglion (Stellate Ganglion):- ७-८ Cervical Nerves के Ganglia के मिलने से बनी हुई औच्छिक ग्रन्थि है। (१) इसका Subclavian धमनी पर एक Plexus बनता है जिससे Basilar, Post. Cerebral, तथा Cerebellar धमनियों के साथ सूत्र ऊपर को जाते हैं, Inferior Thyroid धमनी के साथ साथ Thyroid ग्रन्थि में इसके सूत्र जाते हैं। Vertabral धमनी के साथ साथ एक शाखा जाती है। Axillary तथा बाहु की धमनियों को सिम्पैथेटिक सूत्र ऊपर के Thoracic Segments (२-६) के Intermedio Lateral Column के सेलों से निकल कर Middle तथा Inferior Cervical Ganglia में समाप्त होते हैं वहां से Post. Ganglionic सूत्र फिर Brachial Plexus के Median तथा Ulnar Nerves के साथ साथ बाहु में जाते हैं।

(२) ७-८ Cervical नाड़ियों को भी इसमें से सिम्पैथेटिक सूत्र जाते हैं।

(३) हृदय के Cardiac Plexus को भी एक शाखा जिसे Cardiac शाखा कहते हैं जाती है जहां से हृदय पोषक धमनियों के साथ इसके सूत्र हृदय में जाते हैं। इस प्रकार हृदय में Superior Middle तथा Inferior तीन Cardiac सिम्पैथेटिक शाखायें जाती हैं जिनका प्रारम्भ ३-४ Tharacic Segments से होता है।

कोष्ठगत औच्छिक नाड़ियां (Thoracic Sympathetic नाड़ियां) :-

(१) छाती में विद्यमान सिम्पैथेटिक २-३-४ Ganglia से Post. Ganglionic सूत्र निकल के Pulmonary Plexus में जाते हैं जहां से सिम्पैथेटिक सूत्र श्वास नालियों की मांस पेशियों में पहुंचते हैं।

(२) ऊपर के ५ Ganglia से सूत्र Aortic Plexus में जाते हैं।

(३) ५-१० Thoracic Ganglia से निकले Pregaglionic सूत्रों के मिलने से Great Splanchnic Nerve बनती है। ६-१० कभी कभी ११ Thoracic Ganglia से निकले प्रथम सूत्रों से Lesser Splanchnic Nerve बनती है। १२ Thoracic Ganglion से निकले सूत्रों से Lowest Splanchnic Nerve बनती है। पहली दोनों औच्छिक नाड़ियां नीचे Coeliac Ganglia और Coeliac Plexus में समाप्त होती हैं। इसमें से Hepatic Plexus तथा उसमें से निकले सूत्र Hepatic Artery तथा Portal Vein की शाखाओं के साथ यकृत में जाते हैं। इसमें से निकले Splenic Plexus के सूत्र Splenic

धमनी के साथ साथ प्लीहा में जाते हैं । इसमें से निकले Gastric Plexus के द्वारा सूत्र Left Gastric Artery के साथ आमाशय की दीवार में जाते हैं । (५-८ Thoracic Roots) से निकले सूत्र आमाशय में जाते हैं) इसमें से निकले Supra Renal Plexus में से सूत्र Supra Renal ग्रन्थि को विशेषत: उसके Medulla को जाते हैं । इसमें से निकले Renal Plexus में से जिसमें Lowest Splanchnic Nerve भी आ मिलती है सूत्र Renal Artery के साथ साथ वृक्क में जाते हैं । (ये सिम्पैथेटिक सूत्र वृक्कों के लिये Vasomotor होते हैं) इससे निकले Superior Mesenteric Plexus तथा Ganglion से सूत्र अग्न्याशय, ग्रहणी, दाद्रान्त्र, तथा वृहदन्त्र के लेटे हुए भाग को उनकी धमनियों के साथ साथ जाते हैं । इसी प्रकार इस Cocliac Plexus से निकले Abdominal Aortic Plexus में से कि जो Aorta पर छाया हुआ है उस धमनी से निकलने वाली शाखाओं पर Testicular, Inferior Mesenteric, Iliac तथा Hypogastric Plexuses उत्पन्न हो गये हैं ।

इनमें से Inferior Mesenteric Plexus तथा Ganglion से जो इसी नाम की धमनी पर स्थित है सूत्र लेटे हुऐ वृहदन्त्र के बांई ओर के आधे भाग को, तथा उतरते हुऐ वृहदन्त्र को जाते हैं तथा Superior Rectal Artery के साथ साथ मलाशय को जाते हैं ।

कटि प्रदेशीय अनैच्छिक (सिम्पैथेटिक) नाड़ियां :-

प्रथम तीन कटि प्रदेशीय नाड़ियों (L.Nerves) के Preganglionic सूत्र अपने तीन Ganglia में से Post Ganglionic सूत्रों के रूप में Lumber Spinal Nerves में चले जाते हैं । निम्न शाखाओं में अर्थात् टांगों में जाने वाले सूत्र १० Thoracic-2 Lumber Segments के Intermediolateral सेलों से निकल कर निचले 2-Lumber तथा प्रथम Sacral Ganglion में समाप्त हो जाते हैं । वहां से Grey Rami निकल के Lumbosacral Plexus की शाखाओं के द्वारा टांगों में जाते हैं । Femoral Artery तथा उसकी शाखाओं को भी यहीं से सूत्र जाते हैं । Lumber Ganglia तथा ऊपर के २ Sacral Ganglia से आये कुछ सूत्रों तथा ऊपर Aortic Plexus से आये सूत्रों के मिलने से दोनों Common Iliac धमनियों के बीच एक Plexus बनता है जिसे Hypogastric Plexus कहते हैं । यही नीचे उतर कर दो Plexuses में विभक्त हो गया है जिन्हें दायां व बायां Pelvic Plexus कहते हैं तथा जो मलाशय के पार्श्वों में होते हैं । इसमें से सिम्पैथेटिक सूत्र मलाशय, मूत्राशय, शुक्राशय (Seminal Vesiculae), प्रोस्टेट, शिश्नेन्द्रिय, स्त्री जननेन्द्रिय तथा गर्भाशय को जाते हैं । छाती तथा

कोष्ठ की दीवार में सिम्पैथेटिक सूत्र १-१२ Th.Segments. से निकल Inter Costal Nerves के साथ साथ जाते हैं ।

सिम्पैथेटिक नाड़ी मण्डल का कार्य :-

ये सूत्र स्वेद ग्रन्थियों के लिये स्वेद प्रवर्तक, लोमों के लिये लोमहर्षक (Pilomotor) मांस के लिये उत्तेजक या Erector) होते हैं । हृदय मांस के लिये उत्तेजक (Accelerator) होते, आमाशय, आंत मूत्राशय, मलाशय आदि के मांस को शिथिल करने (उनकी गति को कम करने) तथा उनके द्वारों -Sphinctors- को संकुचित करने, इन आशयों की रक्त वाहिनियों को संकुचित करने, त्वचा (वृक्कों) तथा कोष्ठगत रक्त वाहिनियों को विशेषत: संकुचित करने (एवं स्वेद मूत्रादि की उत्पत्ति को कम करते), श्वास नालियों को शिथिल करने, रक्त में ग्लूकोज़ की मात्रा को बढ़ाने (यकृत में Glycogen से अधिक ग्लूकोज़ बनने से) Suprarenal Gland के Medulla से Adrenaline के स्राव को बढ़ाने का कार्य करते हैं (Basal metabolism की गति को तीव्र करते हैं)। मांस पेशियों तथा हृदय की रक्तवाहिनियों को फैलाने का कार्य करते हैं । पुतलियों को फैलाने तथा आंख को अधिक खोलने (Palpebral Fissure को बड़ा करने) का कार्य करते हैं । (मस्तिष्क की क्रिया को तीव्र करते हैं) गर्भाशय के गोलाकृति (Circular) मांस सूत्रों के लिये ये सूत्र संकोचक होते हैं । (वीर्य के लिये अति प्रवर्तक होते हैं।) अन्न पाचक स्रावों को भी ये सुखाते हैं । इन सूत्रों के (Post.Ganglionic सिरों पर Sympathin या Adrenaline सदृश द्रव्य के उत्पन्न हो जाने से ये प्रभाव होते हैं । (इसलिये इन नाड़ियों को adrenergic भी कहते हैं। Sympathetic नाड़ी सूत्र उत्तेजित होकर ant. Pituitary में से ACTH के व cortex के स्रावों के प्रवर्तक होते हैं।) इस प्रकार शारीरिक व मानसिक संकट या विक्षोभ के समय यह नाड़ी मण्डल सक्रिय होता है और जब तक सक्रिय रहता है शरीर की शक्ति का व्यय या विनाश होता रहता है ।

पैरा सिम्पैथेटिक नाड़ी मण्डल :-

शिर सम्बन्धी सूत्र (Cranial Out Flow) Mid Brain) तथा Medulla से प्रारम्भ होते हैं तथा कोष्ठस्थ अंगों को जाते हैं ।

(१) Oculomotor पैरासिम्पैथेटिक सूत्र - Mid Brain में तृतीय मस्तिष्क नाड़ी के Nucleus के अन्दर के भाग के कुछ पीछे और बाहर की ओर विद्यमान Edinger West Phal Nucleus से Preganglionic सूत्र के रूप में निकल कर इसी नाड़ी के साथ साथ Cillary Ganglion में समाप्त हो जाते हैं । वहां से Post Ganglionic सूत्र प्रारम्भ होकर Short Ciliary Nerve के रूप में आंख की Sphincter Pupillae तथा Ciliary मांस में अर्थात् Iris के गोलाकार मांस सूत्रों में जाते हैं ।

(२) मस्तिष्क सप्तम नाड़ी (Facial Nerve) के मैं चेष्टावाही सूत्रों के

साथ साथ इसके Motor Nucleus के पास पीछे बाहर की ओर विद्यमान Superior Salivary Nucleus से भी कुछ सूत्र निकल कर नीचे उतरते हैं और उसके संज्ञावाही सूत्रों के साथ मस्तिष्क से बाहर आते हैं। ये सूत्र Chordatympani में आ जाते हैं जो Tympanic-Cavity में से गुजर कर Lingual Nerve में-जो मस्तिष्क पंचम नाड़ी की Maxillary शाखा की एक प्रशाखा है, मिल जाते हैं और Submaxillary Ganglion में जा कर समाप्त हो जाते हैं। वहां से Post Ganglionic सूत्र प्रारम्भ होकर Submaxillary तथा Sublingual Glands में जाते हैं एवं लाला स्रावक होते हैं। और उनकी रक्तवाहिनियों के लिये प्रसारक होते हैं।

(३) मस्तिष्क नवम नाड़ी (Glossopharyngeal N.) में Inferior Salivary Nucleus से Parotid Gland के लिये कुछ पैरासिम्पैथेटिक सूत्र उतरकर उसकी Tympanic शाखा के द्वारा (Tympanic-Plexus में से) Lesser Superficial Petrosal Nerve (जो Facial Nerve की एक शाखा है) के द्वारा Otic Ganglion में समाप्त होते हैं। वहां से Post Ganglionic सूत्र आरम्भ होकर Mandibular Nerve की Auriculotemporal शाखा के द्वारा कि जो Middle Menengeal Artery को दोनों ओर से घेरे हुए है Parotid Gland में जाते हैं। ये सूत्र इस लाला ग्रन्थि के लिये लाला स्रावक तथा उसकी रक्तवाहिनियों के लिये प्रसारक होते हैं। यह भी बात याद रखने की है कि Otic Ganglion में Chordatympani में से स्वाद वाहक सूत्र आते हैं।

आंख के Lacrimal Gland को पैरा-सिम्पैथेटिक सूत्र ऊपर Facial N. में उसके Lacrimatory Nucleus से उतर के उसकी Greater Superficial Petrosal Nerve के द्वारा (Pterygoid canal में से Sphenopalalatine Ganglion में जाते हैं। वहां से नये सूत्र Maxillary Nerve की Zygomatic शाखा Zygomatico Temporal Nerve में होकर Lacrimal Nerve (जो Opthalmic की शाखा है) के द्वारा पहुंचते हैं। गले, तालु तथा नाक की ग्रन्थियों को भी Sphenopalatine से ही Post Ganglionic सूत्र इस ग्रन्थि की Palatine तथा Nasal शाखाओं के द्वारा पहुंचते हैं।

(४) मस्तिष्क दशम नाड़ी (Vagus Nerve):- के पैरासिम्पैथेटिक सूत्र इसके Dorsal Nucleus से आरम्भ होकर नीचे नाना [illegible] आशयों को जाते हैं। उदाहरणतः Pharyngeal Plexus में से होकर इसके

सूत्र गले व तालु के मांसों में जाते हैं । दशम नाड़ी के सूत्र भोजन प्रणाली के मांस में भी जाते हैं । इसके हृदय सम्बन्धी सूत्र Cardiac Plexus में जाकर वहां से Auriculoventricular Bundle में जाते हैं । इसके फुफुस को जाने वाले सूत्र Pulmonary Plexus में से Post Ganglionic सूत्रों के रूप में श्वासनालियों के मांस में जाते हैं । आमाशय को जाने वाले सूत्र Gastric Plexus में से आमाशय के मांस तथा ग्रंथियों को जाते हैं । यकृत्, पित्ताशय, आंत आदि को जाने वाले सूत्र Coeliac Ganglion में से स्टेशन करके जाते हैं तथा लेटे हुये बृहदन्त्र तक के आंतों के मांस व ग्रन्थियों में जाते हैं ।

(५) पैरासिम्पैथेटिक नाड़ी मण्डल का निम्न भाग (Sacral Out Flow) २-३-४ Sacral Nerves के अग्रिम मूलों से निकलने वाले Preganglionic सूत्रों के मिलने से Pelvic Splanchnic Nerves बनती हैं जो वस्तिगुहा में स्थित सिम्पैथेटिक नाड़ी जालों (Sympathetic Pelvic Plexuses) के साथ मिल के बस्ति गुहा स्थित आशयों की दीवारों में विद्यमान Ganglia में स्टेशन करते हैं और वहां से Post Ganglionic सूत्र निकलके मलाशय, मूत्राशय, गर्भाशय, के मांस में जाते जाते हैं । स्त्री पुरुषों की जननेन्द्रियों के फूलने वाले भाग (Erectile अवयव) की रक्तवाहिनियों में भी जाते हैं । इनके कुछ सूत्र ऊपर Hypogastric Plexus के जाल में चढ़कर Inferior Mesenteric Artery की शाखाओं के साथ साथ लेटे हुऐ बृहदन्त्र के निचले भाग, उतरते हुऐ तथा बस्ति गुहा में पड़े हुए, बृहदन्त्र के मांस में जाते हैं ।

Parasympathetic सूत्रों का कार्य :- ये सूत्र पुतली के लिये संकोचक, लाला ग्रन्थियों, तालु, नासा तथा स्वेद आदि की ग्रन्थियों के लिये प्रवर्तक (Secretomotor), अश्रुग्रन्थि (Lacrimal) के लिये प्रवर्तक, हृदय के लिये शामक, श्वास नालियों के लिये संकोचक, आमाशय आंत आदि के लिये रस प्रवर्तक तथा मांस चेष्टा प्रवर्तक उनके Sphincters या आशय द्वारों के लिये प्रशामक (Inhibitor), मलाशय, मूत्राशय के लिये चेष्टा प्रवर्तक तथा उनके द्वारों के लिये प्रशामक, जननेन्द्रियों के लिये सिरा प्रसारक (Vasodilator) वपुस्त्ववर्धक होते हैं । गर्भाशय के गोलाकृति मांस सूत्रों के लिये शामक होते हैं । Insulin की उत्पत्ति के बढ़ने से रक्त में खाण्ड की मात्रा घटती है। इन Post Ganglionic सूत्रों के सिरों पर Acetyl Choline नामक द्रव्य के उत्पन्न होने से ये प्रभाव होते हैं जिससे इन्हें Cholinergic सूत्र कहते हैं ।

ऊपर जाने वाले (Afferent) सूत्र कोष्ठस्थ अंगों में से Sympathetic Post Ganglionic सूत्रों के साथ कहीं स्टेशन

(ख) Afferent path (अभिवाही)

किये बिना सीधे सौषुम्ना नाड़ियों के पश्चिम मूल में विद्यमान ग्रन्थियाँ (Dorsal Ganglia) में पहुंच जाते हैं।

बाहुओं में से भी Sympathetic सूत्रों के साथ सीधे सौषुम्न नाड़ियों के Dorsal Root Ganglia में जाते हैं। कुछ सूत्र बड़ी बड़ी धमनियों के साथ चढ़ कर ऊपर Spinal Nerves में ही चले जाते हैं। जांघों से भी इसी प्रकार ये सूत्र ऊपर जाते हैं।

हृदय में से Cardiac Nerves के द्वारा Middle तथा Stellate Ganglia में जाते और वहां से प्रथम चार Thoracic Spinal Nerves में चले जाते हैं।

पित्ताशय से ऊपर जाने वाले सूत्र Great Splanchnic Nerve के द्वारा ५-१० Thoracic Spinal Nerves के पश्चिम मूल के Ganglia में चले जाते हैं।

वृक्क में से ऊपर जाने वाले सूत्र Lesser तथा Lower Splanchnic Nerves के द्वारा ११-१२ Thoracic तथा प्रथम Lumber Dorsal Root Ganglia में जाते हैं। पश्चिम मूल में विद्यमान Ganglia से फिर सूत्र आरम्भ होकर सुषुम्ना काण्ड के काले (Grey) भाग में जाते हैं। वहां से Connector Fibre द्वारा यह प्रतीति सुषुम्ना काण्ड से बाहर जाने वाले अनैच्छिक चेष्टा सूत्रों में पहुंच जाती है। यदि शरीर में स्वभावत: सिम्पैथेटिक नाड़ी मण्डल कुछ अधिक प्रबल हो तो इस अवस्था को Sympatheticotonia कहते हैं। यदि पैरासिम्पैथेटिक नाड़ी मण्डल कुछ प्रबल हो तो इस अवस्था को Parasympatheticotonia कहते हैं। साधारणत: सब में ये दोनों सन्तुलित अवस्था में रहते हैं। जब इनमें से एक अधिक प्रबल हो, दूसरा अधिक मन्द हो तब रोग होता है। इनमें से प्रथम का केन्द्र hypothalamus के पिछले भागों में तथा दूसरे का नियामक केन्द्र इसके अगले भागों में है। प्रथम की प्रबलता से रक्तवाहिनियां सिकुड़ जाती हैं metabolism बढ़ जाता है। दूसरे की प्रबलता से रक्त वाहिनियां फैलतीं स्वेद आ जाता metabolism घट जाता है।

औषधियों में से Adrenaline Ephedrine आदि Sympathetic नाड़ी मण्डल के उत्तेजक (Sympathomimetic) होते हैं तथा Priscol(Tolazoline),Thorazine,Regitine,(Phentelamine),Rauwolfia Ergotamine आदि इस नाड़ी मण्डल के लिये अवसादक (Depressant Sympatholytic) होते हैं। Parasympathetic नाड़ी मण्डल के लिये Acetyl Choline उत्तेजक है तथा Balladonna,Suavitil(Benactyzinehyd.) (१-४ मि०ग्राम) Hyoscine, Stremonium आदि अवसादक हैं।

प्रतिक्षिप्त चेष्टायें :- (Reflexes)

जब त्वचा तथा मांस से सुषुम्ना काण्ड तक आने वाली संज्ञावाहिनियां स्वस्थ हों, सुषुम्ना काण्ड से नीचे मांस

(Efferent path (वाहक))

प्रतिक्षिप्त होने वाले ये निम्न पुंज (Reflex arcs) अपर
~~मस्तिष्क के उच्चतम केन्द्रों के~~ Pyramidal, cerebello-spinal
और Basal ganglia से spinal cord को जोड़ने वाले
सूत्र समूहों tracts के द्वारा मस्तिष्क के नियन्त्रण
में रहते हैं। जब इन ~~में~~ से जोड़ने वाले सूत्रों
में रोग हो और प्रतिक्षिप्त होने वाले निम्न
सूत्रों पर से अपर का नियन्त्रण शिथिल
हो जाए तो प्रतिक्षेप Reflexes तीव्रता से होने
लगते हैं।

या Lumbar 2-3-4 segments

या L2-L4 में रोग हो

या cord में tumour हो

तक आने वाली चेष्टा वाहिनियां भी स्वस्थ हों, तथा इन दोनों को सुषम्ना काण्ड के अन्दर जोड़ने वाले (Connecter) सूत्र भी स्वस्थ हों तो प्रतिक्षिप्त चेष्टायें भी ठीक होती हैं। यहां पर दो प्रतिक्षिप्त चेष्टाओं का उल्लेख किया जाता है।

(१) Kneejerk या जानुविक्षेप :-

रोगी को पीठ पर लिटाकर उसकी जांघ को जानु के पीछे एक हाथ के द्वारा थोड़ा सा संकुचित करने से जब ऊर्ध्व जांघ के आगे की बड़ी मांस पेशी Quadriceps की कण्डरा कुछ तन जाती है तथा शेष सारी जंघा शिथिल हो जाती है तब टखने और Tibia के Tubercle के बीच के प्रदेश पर " परकशन हेमर " के द्वारा कुछ तेज चोट देने पर उपर्युक्त मांस पेशी में संकोच उत्पन्न हो जाता है। जिससे निम्न जंघा ऊपर को उछल जाती है। इसे Knee Jerk जानु विक्षेप कहते हैं।

जब प्रतिक्षिप्त चेष्टा के (Afferent & Efferent मार्ग में कहीं पर रोग होता है अर्थात् इस मांस की संज्ञावाहिनी (Femoral N.) में रोग हो (Tabes Dorsalis) या इस मांस के निम्न चेष्टा वाही सूत्र (Lower Motor Neurone) में रोग हो Neuritis हो या सुषुम्ना काण्ड के अन्दर रोग (Poliomyelitis) हो तब यह प्रतिक्षिप्त चेष्टा नहीं होती।

जब मस्तिष्क से सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तक आने वाले ऊर्ध्व चेष्टा वाही सूत्रों में विकृति या रोग हो जैसे कि पक्षाघात रोग में होता है तब क्योंकि निम्न चेष्टावाही सूत्रों पर ऊर्ध्व चेष्टावाही सूत्रों का नियन्त्रण (Inhibition) लुप्त हो जाता है तब यह प्रतिक्षिप्त चेष्टा प्रबलता से होती है। इसी प्रकार जब रोगी का मन विक्षुब्ध होता है (चिन्तारोग) तब भी यह चेष्टा प्रबल रूप में होती है।

(२) Plantar Reflex:- रोगी को पीठ के भार लिटा कर उसकी एक जांघ को ऐसा रखें कि वह जानु पर कुछ संकुचित हो। अब उसके तलुए पर एडी से अंगुलियों की ओर दियासलाई या पेन्सिल से लकीरें खींचने पर स्वस्थावस्था में उसकी अंगुलियां तलुए की ओर (Flexor Response) तथा पैर कुछ ऊपर की ओर (Dorsiflexion) मुड़ जाया करता है।

जब मस्तिष्क से सुषुम्ना काण्ड तक आने वाले ऊर्ध्व चेष्टावाही मार्ग में रोग होता है अर्थात् निम्न चेष्टावाही सूत्रों पर नियन्त्रण कम हो जाता है तब पैर का अंगूठा ऊपर की ओर मुड़ता

इसे Babinski का sign कहते हैं (प्रदर्शन में)
अर्थात् sacral ~~...~~ root के अगर यदि Pyramidal
भाग में रोग है [illegible] dorsiflexion मिलता है। S-1 से नीचे सुषुम्ना
भाग में रोग हो तो यह reflex extensor न होकर flexor होता है।

है तथा दूसरी अंगुलियां एक दूसरी से दूर हो जाती हैं। (Extensor Planter Response) तथा जांघ की पीछे की मांस पेशियाँ (Hamstrings) में संकोच के हो जाने से सारी जांघ वंक्षण सन्धि तथा जानु सन्धि पर संकुचित हो जाती है।

सन्यास मूर्छा :-(Cerebral Coma, Apoplexy, Plexy=Strike) तथा मस्तिष्क धमनी रोध (Cerebral Thrombosis) तथा पक्षाघात (Hemiplegia Due to Caroticobasilar Insufficiency):-

(१) ६०-७० वर्ष की आयु के व्यक्तियों में मस्तिष्क धमनियों में क्षीणता की प्रक्रिया के हो जाने से ये रोग होते हैं। अर्थात् यदि मस्तिष्क धमनियों की मांस मय दीवार में क्षीणता (Hyaline Degeneration) विशेष हो तो किसी तीव्र मानसिक आवेश या शारीरिक श्रम के समय उनमें रक्तभार के जो पहले भी नार्मल से अधिक होता है सहसा अत्यधिक हो जाने से कोई सूक्ष्म मस्तिष्क धमनी फट जाती है जिससे मस्तिष्क में रक्त स्राव हो जाता है। इससे समीपस्थ धमनियों के दब जाने से मस्तिष्क के उस स्थान को आक्सिजन का मिलना बन्द हो जाता है (अर्थात् वहां Infarct बन जाता है) जिससे सहसा ही रोगी मूर्छित होकर गिर पड़ता है। फिर बाद में वहां श्वयथु (Oedema) के हो जाने से वह चिरकाल तक बेहोश (Coma में) पड़ा रहता है। इस मूर्छा में बहुधा वमन भी होती है। इसे सन्यास मूर्छा कहते हैं। फिर जब Medulla में विद्यमान प्रधान केन्द्रों पर दबाव पड़ जाता है तब मृत्यु हो जाती है। कभी कभी भारी सिर दर्द जो मस्तिष्क द्रव के अंदर भार के (स्वल्प रक्तस्राव के कारण) बढ़ जाने से होती है इस मूर्छा से पहले होती है।

(२) इस रक्त स्राव जनित मूर्छा की अपेक्षा भी धमनी रोध जनित मूर्छा (Cerebral Thrombosis) का रोग अधिक पाया जाता है। मस्तिष्क की सूक्ष्म धमनियों के आभ्यन्तर स्तर के नीचे ही वहीं पर Internal Carotid धमनी के विभक्त होने के प्रदेशों में स्थान स्थान पर वसा बैठ जाती है अर्थात् उनमें Fatty Degeneration हो जाता है। जिसमें बाद में कैल्सियम बैठ जाता है। जितनी आयु बड़ी होती है उतना ही वहां कैल्सियम सुगमता से बैठता है। उस कठोर उभार Nodule से धमनी का स्रोत तंग होता जाता है। बाद में कभी सोते समय जब कि रक्त की गति स्वभावत: मन्द होती है या जिस समय हृदय स्वभावत: ही निर्बलता से स्पन्दन करता है, तब धमनी के अवरुद्ध भाग के आगे विद्यमान मस्तिष्क के एक भाग को रक्त कम पहुंचने लगता है

जिससे वहां मस्तिष्क में Infarct बन जाता है अर्थात् वह भाग नरम हो जाता है। जिससे रोगी में धीरे धीरे करके मूर्छा हो जाती है। इसे धमनी रोध जनित मूर्छा कहते हैं। यह धमनियों में (Atheroma) हो जाने के कारण होती है अर्थात् धमनियों में वसामय काठिन्य (Atherosclerosis) के कारण होती है। जबकि रक्त स्राव जनित मूर्छा धमनियों के जीर्ण, दीर्ण हो जाने अर्थात् (Arteriosclerosis) के कारण होती है। Atheroma को अधिक वसामय आहार और न्यून शारीरिक श्रम से उत्पन्न Lipaemia के कारण होने वाला कहा जाता है। ऐसी अवस्था में Thrombosis या Thrombin का निक्षिप्त हो जाना भी अधिक स्वाभाविक होता है। Carotid धमनी में न्यूनाधिक अवरोध होने पर एक ओर की कनपटी पर दर्द होता है। Bosilar धमनी में अवरोध हो रहा हो तो सिर के पिछले (Occipital or Suboccipital) प्रदेश पर दर्द हुआ करता है।

इन दोनों अवस्थाओं में ही मस्तिष्क के उस भाग को पोषण मिलना बन्द हो जाता है एवं वह मृत (Infarct या Necrosed) हो जाता है। परन्तु शीघ्र ही आसपास की रक्त वाहिनियों में से रक्त वहां पहुंचने लगता है और उसका पोषण फिर आरंभ हो जाता है और वहां Scar Tissue बन जाता है। इसीलिये धमनी रोध स्वल्प मात्रा में हो तो रोगी धीरे धीरे होश में आ जाता है और कुछ महीनों में चलने फिरने योग्य भी हो जाता है। मस्तिष्क के एक भाग को चिरस्थायी अवरोध (Atheroma) के कारण रक्त कम मिले तो उसमें Encephalomalacia हो जाने से वह मृदु सा हो जाता है जिससे बाद में उसमें रक्त स्राव (Vascular Rupture) भी हो जाता है।

यों तो मस्तिष्क की किसी सूक्ष्म धमनी में भी अवरोध और रक्त स्राव के उपद्रव हो सकते हैं तथापि मध्यम मस्तिष्क धमनी (Middle Cerebral Art) की Lenticulo Striate शाखा में ये उपद्रव विशेषत: होते हैं और क्योंकि यह शाखा Internal Capsule में विद्यमान चेष्टा सूत्रों को रक्त प्रदान करती है, अत: उनके मृत हो जाने से पक्षाघात का लक्षण हो जाता है। मस्तिष्क में रक्त स्राव या धमनीरोध के रोग उन्हीं में होते हैं जिनका रक्त भार अधिक बढ़ा हुआ होता है। मस्तिष्क रक्त स्राव के रोगियों में तो रक्त भार सदा बढ़ा होता है। अवरोध जनित मूर्छा में भी आधे से अधिक रोगियों में रक्तभार बढ़ा हुआ होता है।

पूर्व रूप :-

मस्तिष्क धमनियों में रक्त स्राव होने की

अपेक्षा Carotid या Vertebral धमनियों में अवरोध (Stenosis या Thrombosis) या उनके स्रोत के तंग होने का रोग बहुत अधिक होता है और क्योंकि यह रोग धीरे धीरे होता है, अतः इसके कुछ एक पूर्व रूप होते हैं । अर्थात् कभी कभी मस्तिष्क के एक भाग में Ischaemia से एक जंघा में निर्बलता आरम्भ हो जाती है (Monoplegia) या एक और के पैर में हर्ष या सुप्ति की प्रतीति रहती है या एक आंख में तिमिर रोग हो जाता है या आधे क्षेत्र में तिमिर रोग (Hemianopia) हो जाता है। या शिरोभ्रम होकर गिर जाने की सी प्रतीति होती है या भाषण की शक्ति कम हो जाती है, हृदय संकुचित हो जाता है, वह अपने में ही केन्द्रित रहता है जहां से परिवर्तन को पसन्द नहीं करता । स्वभाव बदल जाता है। इसी प्रकार मस्तिष्क की धृति, स्मृति, एकाग्रता, बुद्धि आदि शक्तियां भी निर्बल होती जाती हैं । अन्त में रोगी चंगा भला सोता है पर सवेरे खड़ा होने पर जब गिर पड़ता है तब पता लगता है कि उसका एक बाजू अति निर्बल हुआ २ है ।

लक्षण :-

रक्त स्राव जनित सन्यास मूर्छा सहसा किसी भारी श्रम के बाद होती है तथा उसके होने से पहले रोगी को छोटी छोटी मूर्छा के वेग भी हो चुके होते हैं । सिर में भारी दर्द होता है । (Subarochnoid प्रदेश में रक्त स्राव से) जिसमें किसी औषधि से आराम नहीं आता साथ ग्रीवा में स्तम्भ भी होता है इसके बाद एक दो मिनटों में जो मूर्छा होती है वह गहरी होती है तथा उसके साथ वमन भी होता है । श्वास प्रश्वास में घुर्राटे की आवाज होती तथा वह Cheynstokes प्रकार का भी होता है तथा उसके साथ एक तरफ का गाल जिस ओर वात होता है दूसरी ओर की अपेक्षा अधिक फूलता है अर्थात् यों तो सारा शरीर शिथिल होता है पर जिधर का गाल अधिक फूलता है उधर की शाखायें अधिक शिथिल होती हैं । दोनों पुतलियां फैली होती हैं तो भी जिस ओर शिथिलता अधिक होती है उधर की पुतली अधिक फैली होती है । प्रकाश के पड़ने पर पुतलियां संकुचित नहीं होतीं । ग्रीवा कड़ी हुई हो तो कभी कभी आक्षेप भी होते हैं । Cerebrospinal द्रव या मस्तिष्क द्रव में रक्त का अंश पाया जाता है । यों तो सभी शाखायें शिथिल होती हैं पर जिधर पक्षाघात होता है उधर की टांग फैली हुई तथा बाहर की ओर विवर्तित होती है । दूसरी टांग कुछ मुड़ी हुई होती है । मृत भाग अधिक गर्म होता है ।

जिस ओर शिथिलता अधिक होती है उधर के

पैर तलुए को खुजलायें तो अंगूठा ऊपर की ओर मुड़ जाता है। (Plantar - Reflex Extensor) Abdom. Reflex लुप्त होता है। रोगी का सारा शरीर शीतल सा तथा स्वेदयुक्त होता है। तापमान नार्मल से कम, नाड़ी गति प्रतिमिनट घटी हुई होती है, नाड़ी भरी हुई, दीर्घ, (Full Bounding) होती है। उसके मूत्र में अलब्युमिन मिलता है। उसका रक्त भार बढ़ा होता है। चेहरे पर नीलापन झलकता है। Ventricles में रक्त स्राव हो तो ज्वर भी ऊंचा होता है।

मस्तिष्क में विद्यमान Hypothalamus के केन्द्रों तथा Lateral Ventricle में रक्त के भर जाने के कारण रक्त स्राव जनित मूर्छा अच्छी नहीं होती। यदि रोगी को २ दिन तक होश न आये और Plantar Reflex दोनों ओर Extensor हो तो मृत्यु निश्चित समझनी चाहिये। इस अवस्था में मूर्छित रोगी का सिर तथा आंखें रक्त स्राव युक्त बाजू की ओर को मुड़े हुये होते हैं। अर्थात् मृत पक्ष से विपरीत दिशा में होते हैं। (Conjugate Deviation of the Eye) इस अवस्था में उसकी मृत्यु १-२ सप्ताह तक हो जाती है। इसके विपरीत धमनी रोध जनित मूर्छा क्रमशः होती है तथा शीघ्र अच्छी हो जाती है। इसमें रक्तभार गिरा हुआ होता है। कभी कभी बिना मूर्छा के भी पक्षाघात होता है, जिसमें आधा अंग शिथिल हो जाता है। उसमें सब प्रतिक्षिप्त चेष्टायें (Reflexes) लुप्त हो जाती हैं। निचले जबड़े में तथा जीभ में भी घात होता है जिससे जीभ निकालने पर वह मृत अंग की ओर फिरी हुई दीखती है। चबाने, निगलने, व धाड़ की मांस पेशियाँ ठीक होती हैं। सिर तथा आंखों को मृत भाग की ओर घुमाने में कुछ कठिनता होती है। उसके शरीर में हुआ यह पक्षाघात धीरे धीरे अच्छा होने लगता है। २-३ दिन में Extensor, Plantar Reflex होने लगता है। फिर १-२ सप्ताह में पहले मृत जंघा में फैलाने तथा उसके भार खड़े होने की शक्ति आती है। मुख में हुआ घात भी जांघ के साथ साथ ठीक होने लगता है। पहले माथे का घात ठीक होता है। भाषण शक्ति भी आ जाती है। अन्त में बाहु का घात भी धीरे धीरे ठीक होने लगता है। तो भी बाहु में न्यूनाधिक अशक्ति रह जाती है। वह कोहनी और कलाई पर संकुचित रहती है + अर्थात् जैसे टांगों की प्रसारक पेशियों में होता है। वहां शरीर के साथ सटी हुई रहती है। बाहु की संकोचक मांसपेशियों में कुछ स्तम्भ रहता है। तथा Extraphyrqmidal सूत्रों के स्वतन्त्र होने से इनमें Deep Reflexes तीव्र होते हैं। ~~और शरीर के साथ कुछ सटी हुई रहती है~~। बाहु में फैला सकने की शक्ति कम लौटती है। हाथ में तथा पैरों की अंगुलियों में तो पक्षाघात का लक्षण कुछ न कुछ बना ही रहता है। जिससे हस्त कौशल का कोई काम वह नहीं कर सकता। इस रोग में क्योंकि ऊर्ध्व चेष्टा सूत्र (Upper Motor Neurones) कुछ न कुछ रुग्ण

रहते ही हैं, इसलिये दोनों मृत शाखाओं में न्यूनाधिक स्तम्भ या अकड़न का लक्षण रहता है । वाम पक्ष में पक्षाघात हो तो भाषण शक्ति नष्ट नहीं होती । रोग होने के एक सप्ताह तक मृत अंगों में कुछ शक्ति लौट आय तो रोग के पूर्ण तया ठीक होने की आशा करनी चाहिये । यदि एक मास तक भी पर्याप्त शक्ति न लौटे तो वह अपने अंगों से ठीक काम ले सकेगा ऐसी आशा नहीं की जा सकती । वृद्ध में इस रोग का दूसरा हमला प्राय: घातक होता है । (इसका पृथक्करण cerebral malaria & uraemia से भली भांति करना चाहिये।)

चिकित्सा :-

प्रतिरोधक चिकित्सा :-

इस रोग के पूर्व रूपों के प्रकट होने पर रोगी के रक्त भार को कम करने की औषधि देनी चाहिये । रोगी को मानसिक आवेशों से बचना चाहिये । मानसिक तथा शारीरिक श्रम भी कम करना चाहिये । निद्रा अधिक लेनी चाहिये । अधिक भोजन तथा तीक्ष्ण उष्ण गुण भोजन से बचना चाहिये । लवण बहुत कम लेना चाहिये । मूर्छा के हलके हलके वेग हों तो किसी Anti Coagulant औषधि (Dindevan, Marcumar २५ मिलि० दैनिक, १-३ मिलि० दैनिक) का प्रयोग भी करते रहना चाहिये जितने से कि Prothrombintime २८-३६ सेकण्ड हो जाय ।

मूर्छा के हो जाने पर रोगी के सिर पर बर्फ रखनी चाहिये । तथा उसको एक तरफ फेर कर रखना चाहिये । ताकि जिव्हा के कारण श्वास रोध न होने पाये । मुख में संचित स्राव को निकालें तथा श्वासरोध को दूर करने का यत्न करें । आक्सिजन देवें । दो दिन तक मुख से कोई आहार न देना चाहिये । मुख को जल से गीला रखना चाहिये क्योंकि पानी पिलाने से उसके श्वास मार्ग में जाने का भय रहता है । श्वास मार्ग में किंचित मात्र जल के जाने से खांसी उठने लगती है । रक्त भार ऊंचा हो तो Phlebotomy द्वारा २५०-५०० सी०सी० रक्त निकाल दें ताकि रक्त स्राव को रोका जा सके । या शिर के अन्दर के भार को कम करने के लिये २५% Mag.Sulph.Solu. १० औंस मात्रा में गुदा द्वारा दे देना चाहिये ५ प्रतिशतक ग्लूकोज़ जल १-२ हजार सी०सी० की मात्रा में प्रतिदिन शिरा द्वारा भी दे देना चाहिये या (नासा द्वारा) पेट में नाली लगाके २५% ग्लूकोज़ जल बुन्द २ करके देते रहना चाहिये । या लवण और ग्लूकोज़ मिश्रित जल के एनीमा द्वारा देते रहने से पानी भी शरीर में पहुंच जाता तथा पेट भी साफ हो जाता है । मूर्छा में मूत्र नहीं आता, अत: ८-८ घन्टे पर Catheter लगाना चाहिये । पीठ पर स्प्रिट तथा डस्टिंग पाउडर लगाते रहना चाहिये ताकि शय्या व्रण न हो जाय । आक्सिजन के प्रयोग से मस्तिष्क में Anoxia होने का भय नहीं रहता । फुफुसों में रक्त संचय होकर कोई उपद्रव न हो जा

पक्षाघात

मस्तिष्क में रक्त की न्यूनता Ischaemia को दूर करने के लिए Vasopressor औषधि Noradenaline को शिरा द्वारा 4 मि.ग्रा. को glucose saline के साथ 6-6 घं. रोज 5 दिन तक देने से विशेष लाभ होता है तीव्रता कम होती है रोगी की टांगों में शक्ति आ जाती है। रक्तभार को 160 mm.Hg से अधिक न जाने देना चाहिए। Vasodilator (Nylidrin HCl) तथा anticoagulant औषधियों से इस रोग में कोई विशेष लाभ होता हुआ नहीं पाया गया।

Vasodilator औषधियां जैसे Nylidrin HCl (Arlidin) जो 9 मिलि लि. मात्रा में मोख द्वारा रोज 4 बार दी जाती है तथा Duvadilan या Isoxsuprine HCl जो 24 मिलि. मात्रा में 3 बार रोज खाने को दी जाती है या Nicotinic acid जो 50-100 मिलि. मात्रा में रोज दी जाती है इस रोग में दी जाती है इनसे लाभ कितना होता है इस विषय में निश्चय से कुछ कहा नहीं जा सकता।

इसके लिये Penicillin का मांस द्वारा प्रयोग करना चाहिये । मांस द्वारा Luminal का $\frac{3}{4}$ ग्रेन चार बार प्रयोग आक्षेप व बेचैनी को दूर करता है । रोगी अच्छा होने लगे तो इसका प्रयोग जारी रखना चाहिये । ~~Equonil २०० मिलि० तीन बार दे सकते हैं~~ । Angiography (Diod-done ३५% - ४२% को Internal Carotid Art. में डाल के तुरन्त X-Ray चित्र लेने की विधि) से जो पक्षाघात से विपरीत दिशा के कपाल की की जाती है, रक्त स्राव के स्थान का पता लगाकर उस रक्त को या जमे हुए क्लाट को निकालने से ही यह मूर्छा छूट सकती है । अत: साधारणत: यह रोग ठीक नहीं होता ।

यदि धमनी रोध जनित मूर्छा हो तो रोगी की चारपाई का सिर कुछ नीचा रख के ग्रीवा को मुड़ने न दें ताकि Vertebral धमनी दबे नहीं मस्तिष्क के एक भाग को रक्त कम मिलने से Shock के कारण स्वेद, हस्तपाद शीतलता के लक्षण होते हैं अत: Ephedrin २५-५० मिलि० मात्रा में ८-८ घन्टे पर दें । या Noradrenaline बुन्द बुन्द करके Glucose Saline के साथ शिरा द्वारा दें । मूत्र रुका हो तो Catheter द्वारा निकालते रहें । किसी सिरा प्रसारक औषधि जैसे Priscol को १० मिलिग्राम की मात्रा में मांस द्वारा दिन में दो बार दे देना चाहिये । या Coramine १$\frac{1}{2}$ सी०सी० दिन में दो बार त्वचा द्वारा दे देनी चाहिये । इससे वहां रक्त की न्यूनता में पुर्ति होती है । Nux Vomica के १०-१२ बुन्द की मात्रा में मुख द्वारा देने से या Strychnine Hydrochlor १/३२ ग्रेन के दिन में तीन बार त्वचा द्वारा देने से या मद्य के प्रयोग से रक्त संचार को बल मिलता है तथा Infarct बढ़ता नहीं । रोगी के पांयते को ऊंचा तथा सिर को नीचा ~~कर देना~~ रखे रहना चाहिये । विरेचन से हानि होती है लाभ नहीं । बाद में Collo.Iod. का प्रयोग करें । पक्षाघात रोग में भी रोगी को Nux Vomica का सेवन करना चाहिये । तथा निर्बल शाखाओं पर उष्ण स्नान तथा मालिश करानी चाहिये । मृदु व्यायाम करना चाहिये तथा लघु भोजन स्वल्प मात्रा में लेना चाहिये । भाषण शक्ति नष्ट हो गई हो तो वह कुछ समय बाद फिर से आ जाया करती है । मृत हुई शाखाओं की असमर्थता को दूर करने के लिये निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :-

मृत हुऐ पैर के तलुए की तरफ कोई तख्ता या रेत की पोटली रखी रहनी चाहिये ताकि पैर कपड़ों के बोझ से विषम आकृति का न होने पाय । जांघ बाहर की ओर विवर्तित न हो जाय । इस उद्देश्य से उसके बाहर की ओर रेत की थैली रखी रहनी चाहिये । मृत हुई

बाहु अन्दर की ओर धड़ के साथ न सट जाय इसके लिये कक्षा के बीच में एक छोटा तकिया रखके बाहु को बाहर की ओर खिसका कर रखना चाहिये। दिन में दो बार बाहु को बाहिर की ओर विवर्तित करना तथा उसे धड़ से दूर हटा देना चाहिये। इसी प्रकार टांग की प्रसारक मांस पेशियों को भी दिन में २-३ बार सक्रिय करना चाहिये।

कुछ दिन बाद रोगी को चाहिये कि वह मृत हुई सन्धियों में से एक समय में एक सन्धि में संकोच व प्रसारकरने का यत्न करें। इसी प्रकार अपनी मृत हुई टांग को सकोड़ने व फैलाने का यत्न करें। पैर को गुल्फ सन्धि पर ऊपर को सकोड़ो (Dorsiflexion) का यत्न करे।

जब वह कुछ बैठने व खड़ा होने योग्य हो जाय तब उसे चाहिये वह दूसरे हाथ से मृत बाहु को बाहर की तरफ उठाने एवं बाहिर की ओर विवर्तित करने का यत्न करे। कोहणी पर बाहु को फैलाने व अग्रबाहु को अधोमुख (Pronated) और ऊर्ध्व मुख (Supinated) करने का यत्न करे। मृत हाथ को दूसरे हाथ से खोलें तथा उसे चपटे, समतल प्रदेश पर अधोमुख रखने का दिन में कई बार यत्न करे। हाथ तथा कलाई पर प्लस्तर लगा देने से भी उन्हें स्तब्ध होने से बचाया जा सकता है। रात को निद्रा काल में हाथ शिथिल हो जाता हो, तो समझना चाहिये कि वह ठीक हो जायगा। मृत हुए कन्धे, कोहणी तथा हाथ की सिकाई करने (Diathermy से) तथा उनके द्वारा चेष्टा और व्यायाम करने से उनमें भी पर्याप्त शक्ति आ जाती है। वस्तुत: रोगी की रुग्ण नाड़ियां इतनी निर्बल नहीं होतीं जितना उसका चित्त तथा इच्छा शक्ति निर्बल होती है। यदि उसका चित्त बलवान् हो जाय तो हाथ पांव में भी बल आ जाता है।

आयुर्वेद में सन्यास मूर्छा तथा पक्षाघात :-

मस्तिष्क धमनियों में वात प्रकोप जनित क्षीणता व कफ प्रकोप जनित अति वृद्धि के कारण ये रोग होते हैं।

(च०।सू०।२४।४३)

इनसे बचने के लिये शिलाजीत, या ब्राह्मी ३, शंख पुष्पी २, सर्पगन्धा १ भाग मिलाकर बनाया चूर्ण या मुक्ता भस्म या त्रिफला रसायन या घृत मधु के साथ त्रिफला, च्यवन प्राश आदि में से किसी का या दूध के साथ पिप्पली का अथवा किसी रसायन औषधि का सेवन करना चाहिये। शिर में, शरीर में, नासिका, कर्ण आदि में तेल का प्रयोग करने से भी धमनियों की जीर्णता नहीं बढ़ती। घोर तथा दीर्घ सन्यास मूर्छा को आयुर्वेद में असाध्य कहा है।

(च०।सू०।२४।५५-५८)

बाद में रहे पक्षाघात के लिये कुब्जादि वटी

(कुचला,१०, रससिन्दूर, लोहा, जायफल, सोंठ, मरिच, लौंग, जटामांसी? तगर एक एक भाग मिलाकर क्वाथ) दिन में ३-४ बार दे देनी चाहिये। इसी प्रकार शरीर की शक्ति को बढ़ाने वाले योग जैसे मल्लसिन्दूर, चतुर्मुख चिन्तामणि, वृहद्वात चिन्तामणि जीवनीय घृत, शतावरी घृत, क्षीर बला घृत के सेवन करते रहने तथा माष तेल, नारायण तेल आदि की मालिश करने से निर्बल अंग फिर बलवान् हो जाते हैं। माष बलादि पाक को स्वल्प लवण तथा घृत मिला नाक से प्रतिदिन पीना चाहिये। समान समान बादाम तथा पिस्ते में चतुर्थांश सन के बीज मिला घी में भुन बराबर खाण्ड मिलाकर बनाया पाक भी बल वृद्धि करता है। (च०।चि०।२८)

अपस्मार :- Epilepsy:-

कारण :-

अपस्मार रोग के कारण के विषय में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। मस्तिष्क के सेलों में साधारणत: जो विद्युत गतियां प्रति सेकण्ड ८-१० की संख्या में होती हैं तथा सदा सन्तुलित रुप में होती हैं, किसी किसी व्यक्ति में किसी किसी समय प्रबल तथा विषम रुप (Unrhythmic) में होने लगती हैं। इस प्रकार इन सेलों में से जब ये गतियां (Electric Discharges) तीव्रता से उत्पन्न विद्युत गतियां अति मन्द रुप में होने लगती हैं। इसीलिये वेग के समय पहले तो रोगी के अंगों में तीव्र आक्षेप होते हैं और फिर वे बिल्कुल शिथिल हो जाते हैं। दाणापस्मार में ये गतियां एक तीव्र, एक मन्द इस क्रम से होती हैं। मन्द गतियां ऊपर गोलाकृति होती हैं। मानस अपस्मार में चपटी चतुष्कोण आकार की गतियां होती हैं। तथापि कुछ एक रोगियों में (२०%) Cerebral Dysrhythima नहीं पाया जाता. और कुछ एक स्वस्थ व्यक्तियों में (१२%) भी यह Dysrhythima. पाया जा सकता है।

मस्तिष्क के Neurones में इस रोग की यह निर्बलता (Excitability) जन्म से आती प्रतीत होती है। इसीलिये जिसे यह रोग होना होता है १५-२० वर्ष तक की आयु तक हो जाता है। रोगियों में से कुछ एक में कष्ट प्रसव का इतिवृत्त होता है जिसके कारण Temporal Lobe के २-१ Gyri की रक्तवाहिनियों के दब जाने एवं आक्सिजन न मिलने से कुछ एक नाड़ी सेलों के नष्ट हो जाने एवं वहां Astrocytes की वृद्धि होकर वहां कठोरता Sclerosis के हो जाने से यह रोग प्रारम्भ होता प्रतीत होता है। विषज अपस्मार-मद्य से हो सकता तथा गर्भिणी विष से (Eclampsia), मूत्र विष से (Uraemia) से, यकृद्विष (Cholaemia) से, Carbon Monoxide से हो सकता है।

पूर्व रूप :-

लगभग चौथाई रोगियों में पूर्व रूप होते हैं। वेग के कुछ घन्टे पहले शिर:शूल या शिरोभ्रम होने लगता है यो रोगी कुछ क्रोधी एवं चिड़चिड़ा सा हो जाता है अथवा वह अन्तर्मुख, ध्यान शील, विचार शून्य सा दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार रोगी के स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है।

वेग प्रारम्भ होने के तत्काल पूर्व जो रूप होते हैं उन्हें Aura कहते हैं जो तीन चौथाई रोगियों में होते हैं। रोगी को अपने हाथ पैरों में शून्यता आरम्भ होकर ऊपर को आती प्रतीत होती है या आमाशय प्रदेश पर से बेचैनी प्रारम्भ होकर ऊपर सिर की ओर बढ़ती प्रतीत होती है। किसी किसी को श्वास रोध होने या हृत्कम्प की प्रतीति होती है। सिर में चक्कर आने की प्रतीति तो बहुत सों को होती है। किसी किसी को नेत्र सम्बन्धी कोई विचित्र प्रतीति होती है। अर्थात् या तो दीखना बन्द हो जाता है या जलती हुई अग्नि की चिन्गारियां नजर आती हैं। श्रवण सम्बन्धी प्रतीतियां भी होती हैं अर्थात् या तो श्रवण शक्ति खत्म हो जाती है या विचित्र वाद्यों की ध्वनि सुनाई पड़ती हैं। नासा सम्बन्धी प्रतीतियां भी कभी कभी होती हैं। अर्थात् बुरी गन्ध [redacted] आने लगती है। इसी प्रकार स्वाद सम्बन्धी प्रतीतियां भी कभी कभी होती हैं। किसी किसी को विचित्र मानसिक प्रतीतियां होती हैं। अर्थात् रोगी अपने को एक विचित्र परिस्थिति में पहुंचा हुआ अनुभव करता है। वह भयभीत हो जाता है और कभी कभी इस अवस्था में वह उन्मत्त सा व्यवहार करता है। किसी किसी को अलौकिक माया मय दृश्य दीखने लगते हैं। किसी किसी में बाहु या किसी मांस पेशी में कम्पन होने लगता है। इन अनुभूतियों के तुरन्त बाद रोग का वेग आरम्भ हो जाता है। यदि ये संज्ञा सम्बन्धी लक्षण ही हों, उनके बाद छ अपस्मार का वेग न हो तो इसे संज्ञा सम्बन्धी अपस्मार (Sensory Fits) कहते हैं।

रूप :-

स्तम्भावस्था :- (Tonic Phase)

इस रोग में पहले शरीर की सर्व मांसपेशियों में स्तब्धता की अवस्था पैदा होती है। अर्थात् पहले रोगी में मूर्छा और स्तंभ ये दो प्रधान् लक्षण होते हैं। स्तम्भ के कारण ग्रीवा, धड़, [redacted] जांघें, सीधी अकड़ी हुई होती हैं। ग्रीवा पीछे की ओर मुड़ जाती है। शरीर में बहिरायाम (Opisthotonos) भी हो सकता है। दोनों बाहु, अकड़े हुए, कोहनी पर संकुचित धड़ के साथ सटे हुए और मुट्ठियां बन्द होती हैं।

(Metacarpophalangeal Joints) संकुचित Interphal. Joints प्रसारित)
रोगी मूर्छित और स्तब्ध होकर सहसा जमीन पर गिर पड़ता है । उसका सिर, ग्रीवा और दोनों आँखें एक पार्श्व की ओर विवर्तित होते हैं । (Deviation of the Eyes and Head) अर्थात् मस्तिष्क के जिस पक्ष में रोग आरम्भ होता है उससे विपरीत दिशा में उसका सिर और आँखें फिर जाती हैं । इस प्रकार सिर और ग्रीवा के एक ओर फिरने के बाद उसके जमीन पर गिरने से वह मस्तक के भार गिरता और उस पर चोट लग जाती है । इस रोग के होते ही कण्ठ (Larynx) और श्वास की मांसपेशियों में भी स्तम्भ होता है । यदि कण्ठ की मांस पेशियों में तो स्तम्भ हो जाय और श्वास की मांसपेशियों में अभी स्तम्भ न हुआ हो तो ऐसी अवस्था में स्तब्ध हुए कण्ठ में से श्वास वायु के अन्दर जाने से एक चीख की सी आवाज उत्पन्न होती है जो अलौकिक और भयंकर होती है । (Epileptic Cry)। जब कण्ठ और श्वास नालियों में से एक साथ स्तब्धता होती है तब श्वास के अवरुद्ध हो जाने से यह चीख उत्पन्ननहीं होती । जबड़े की मांस पेशियाँ और जीभ में स्तब्ध हो जाने से जीभ दाँतों के नीचे आकर कट जाती है । अर्थात् जैसे सिर और ग्रीवा एक ओर को फिर जाते हैं वैसे जीभ भी उधर को फिर जाती है और वह उधर स्तब्ध हुए जबड़े के बीच में आकर जख्मी हो जाती है । एक रोगी में सदा जिव्हा का वही एक किनारा कटा करता है । स्पष्ट है कि प्रत्येक रोगी में रोग का प्रारम्भ ऊर्ध्व मस्तिष्क के किसी एक स्थान से आरम्भ हुआ करता है । श्वास मांस पेशियों में स्तब्धता हो जाने से रोगी का चेहरा नीला पड़ जाता है । यह मूर्छास्तम्भावस्था, या इस रोग की प्रथम अवस्था लगभग आधा मिनट रहती है ।

आक्षेपावस्था :- (Clonic Phase)

स्तम्भावस्था के बाद मूर्छा युक्त आक्षेपावस्था आती है । अर्थात् ज्यों ज्यों मस्तिष्क सेलों में उत्पन्न विकार कुछ ठीक होने लगता है त्यों त्यों निरन्तर स्तम्भ के स्थान पर "सान्तर स्तम्भ" अर्थात् रह रहकर स्तम्भ होने का लक्षण होने लगता है । इस अवस्था में रोगी अपनी बाहुओं और जंघाओं को वेग से पटकने लगता है । दूसरे शब्दों में उसकी शाखाओं में बलवत् संकोच प्रसार (Relaxation तथा Spasm) होने लगते हैं । पलकें भी बन्द होती और खुलती हैं । जबड़ा भी बन्द होता और खुलता है । इसी अवस्था में रोगी की जीभ कटती है । यह आक्षेपावस्था लगभग एक मिनट रहा करती है ।

इस अवस्था के बाद सम्पूर्ण शरीर शिथिल हो जाता है श्वास-मांस पेशियों के शिथिल हो जाने से श्वास गति फिर आरम्भ हो जाती है । श्वास गति के आरम्भ होते ही मुख में संचित थूक में मन्थन सा

होने लगता है जिससे वहां उत्पन्न फाग नासिका और मुख से निकलती हुई दिखाई पड़ती है । इस शिथिलावस्था (Relaxation) में रोगी मूर्छित हुआ जमीन पर पड़ा घुर्राटे ले रहा होता है । परीक्षा करने पर उसकी पुतलियां फैली हुई होती हैं । कार्निया पर छूने से भी वह पलक नहीं झपकता । Deep Reflexes लुप्त तथा Plantar Reflex Extensor होता है पर यह मूर्छा क्षणिक ही होती है । इसके बाद वह घबराये हुये व्यक्ति की तरह वह आंखें खोलकर चकित सा होकर चारों ओर देखने लगता है जो कुछ हुआ होता है उसका उसे कुछ पता नहीं होता । पूछने पर वह अपने सिर में दर्द की शिकायत करता है । तथा कहीं एकान्त में शान्ति से सोना चाहता है । इस प्रकार इस रोग के वेग का यह एक संक्षिप्त सा चित्र खींचा है । हो सकता है कि उपर्युक्त इन अवस्थाओं में से कोई एक ही या दो ही अवस्था हों, अर्थात् केवल स्तम्भावस्था ही हो या स्तम्भ और आक्षेप की दोनों अवस्थायें बहुत स्वल्प काल के लिये हों । इसलिये जब कोई नवयुवक सहसा मूर्छित होकर गिर पड़े और उसके शरीर में स्वल्प या अधिक स्तम्भ और आक्षेप के लक्षण हों और शीघ्र ही वह फिर सचेत हो जाय तो इसे अपस्मार रोग ही समझना चाहिये ।

क्षणापस्मार :-(Petitmal, Minor Epilepsy)

जब किसी बालक या युवक में एक आध क्षण के लिये अचेतनता होती है तब इसे क्षणापस्मार कहते हैं । कभी कभी यह अचेतनता इतने थोड़े काल के लिये होती है कि दूसरों को इसका पता भी नहीं चलता । अर्थात् क्षण भर को रोगी का चेहरा फीका सा पड़ कर तुरन्त ही ठीक हो जाता है । रोगी को ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सिर चकराया और क्षण भर के लिये उसे कुछ हो गया । यदि यह मूर्छा कुछ गहरी हो तो उसका सिर आगे को झुक जाता है या वह गिर कर एक दम खड़ा हो जाता है अर्थात् सहसा मन्द सी मूर्छा का होना इसका प्रधान लक्षण होता है । इस मूर्छा के बाद रोगी कभी कभी कोई ऐसा काम कर बैठता है जिसका उसे पता नहीं होता कि वह क्या कर रहा है । अर्थात् वह अपने कपड़े उतारने लगता है या इधर उधर घूमने लगता है या पास में पड़ी किसी पुस्तक आदि को फाड़ देता है या दूसरे की वस्तु को उठाकर अपनी जेब में डाल लेता है या जिस आदमी से द्वेष हो उसे कुछ हानि पहुंचाता है अर्थात् जैसा जिसका स्वभाव होता है उसके अनुसार वह कुछ कार्य कर बैठता है । P.S. वेग के समय रोगी ने क्या किया इसका उसे पता नहीं होता

निद्रापस्मार :(Narcolepsy)

निद्रापस्मार में युवक रोगी थोड़ी देर के लिये अर्थात् मिनटों या घन्टों के लिये अचेत होकर सो जाता है । निद्रा का वेग

होने पर रोगी उसे रोक नहीं सकता, न वह बोलता है, ना ही हिलता डुलता है। पर जगाने से उसकी यह निद्रा टूट जाती है। यह भी सहसा होने वाली एक मूर्छा है। इसलिये एक प्रकार का अपस्मार है।

मानस अपस्मार :- (Psychic Epilepsy या Fugue State)

कभी कभी कोई नवयुवक बिना बेहोश हुए कुछ मिनटों, घन्टों या कुछ दिनों या महीनों के लिये कहीं को निकल जाता है। और कुछ अजीब सा काम कर बैठता है जिसका फिर उसे ज्ञान नहीं रहता।

Jacksonian Epilepsy आक्षेप अपस्मार- जब यह Dysrhythmia एक ओर के Precentral Convolution में आरंभ होता है तब एक ओर के पैर या हाथ में आक्षेप आरम्भ होकर शीघ्र सारी बाहु या जांघ या आधे शरीर में प्रसरण कर जाता है। Post Central Convolution में यह विषम गति आरम्भ हो तो एक ओर के अंग में सुप्ति या चिमचिमाहट आरम्भ होकर शेष आधे अंग में फैल सकती है।

दीर्घ अपस्मार (Status Epilepticus)

यदि एक के बाद दूसरा और इस प्रकार इस रोग के अनेक आक्रमण लगातार होते जायें जिससे रोगी का बीच में चेतना ना हो और ठहर ठहर के आक्षेप होते रहें तो उसे दीर्घ अपस्मार कहते हैं। उसमें ज्वर-नाड़ी की तीव्रता उसके आकार (Volume) के छोटे होने तथा शरीर के कृश हो जाने के लक्षण भी होते हैं।

Pyknolepsy:- यदि लघु अपस्मार के वेग शीघ्र शीघ्र होने लग जायें तो उसे Pyknolepsy कहते हैं।

चिकित्सा :-

पहले (१८५७) पोटासियम ब्रोमाइड को १०-१२ ग्रेन मात्रा में Liqu. Arsenicalis २ बुन्द तथा Tincture Bella. ५ बुन्द के साथ दिन में एक दो या तीन बार सप्ताह में चार दिन दिया जाता रहा है परन्तु अब न घुलने वाला Phenobarbitone (Luminal, Prominal) जिसका प्रयोग १९१२ से हो रहा है ½, १ ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन बार दिया जाता है। दो वर्ष से छोटे बालक को इसकी ⅙ या ¼ ग्रेन की मात्रा दिन में तीन बार तक दी जाती है। इतनी मात्रा में यह औषधि आक्षेप शामक होती है। इससे अधिक मात्रा में यह निद्राजनक हो जाती है। इस औषधि को २-३ वर्ष तक जारी रखकर फिर

इसकी मात्रा क्रमश: कम करते जायें तो इस रोग के होने की आशंका नहीं रहती। रोग का दौरा तीन वर्ष तक न हो तब इसे औषधि को बन्द कर सकते हैं पर इसे सहसा बन्द नहीं करना चाहिये। इस औषधि के लगातार प्रयोग से यदि कुछ आलस्य रहे तो Amphetamine Sulph.(Benzedrine) या Dextroamphetamine Sulph.(Dexedrine) ५ मिलि० की मात्रा में प्रातराश तथा दोपहर के खाने से पहले दे देना चाहिये।

इस रोग की तीसरी औषधि Diphenyl Hydantoin Sodium, Sodium Phenytoin (Dilantin, Sodium Epanutin Eptoin, Antisacer) है जिसका प्रयोग पहले १९३७ में हुआ। जो ·१ ग्राम या १$\frac{१}{२}$ ग्रेन मात्रा में दिन में तीन बार भोजन बाद जल से दी जाती है। बालक को २५-५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार दी जाती है। यह कैप्सूल में बन्द मिलती है। यदि बालक को केवल रात को ही अपस्मार का वेग होता हो तो ·२ ग्राम Dilantin को ·०५ ग्राम ($\frac{३}{४}$ ग्रेन) Luminal के साथ सोते समय दे देना चाहिये। १० दिन बाद भी दौरा हो जाय तो दिन में इसकी १०० मिलि० मात्रा बढ़ा देनी चाहिये। ४०० मिलि० इसकी परम दैनिक मात्रा है। यह औषधि Phenobarbitone के समान निद्राजनक नहीं होती अपस्मार शामक है। इसके प्रयोग के समय मुख को कई बार साफ करना चाहिये। यदि फिर भी मसूढ़ों में सूजन हो जाय तो इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये तथा मसूढ़ों पर मालिश करनी चाहिये। साधारणतः रोगी को Phenobarbitone ३ ग्रे. रात्रि तथा Epanutin ३ ग्रे. दिन में २ बार देते हैं तो रोग शान्त रहता है एवं Epilon (Alembic) गोली भी दी जा सकती है।

इस रोग की चौथी औषधि Primidone (Mysoline) I.C.I. है जिसका प्रयोग पहले १९५० में हुआ ·२५ ग्राम मात्रा में पहले रात को एक बार से धीरे धीरे बढ़ाकर दिन में ३-४ बार तक दी जाती है। बालक को इससे आधी मात्रा दी जाती है। यह भी आक्षेप शामक औषधि है। शिरोभ्रम प्रतीत होने पर इसकी मात्रा कम कर देनी चाहिये। उपर्युक्त औषधियां जब अनुकूल नहीं होतीं, यह अनुकूल हो सकती है। इस रोग की पांचवीं औषधि 5 Ethyl, 3 Methyl, 5 Phanylhydantoin(Mesantoin) Sandoz है। उपर्युक्त औषधियों से लाभ न दीखता हो तब इस औषधि को ·०५ ग्राम ($\frac{३}{४}$ ग्रेन) दैनिक मात्रा में एक सप्ताह देवे फिर प्रति सप्ताह ·०५ ग्राम मात्रा बढ़ाते जायें। इसकी अन्तिम दैनिक मात्रा ·४-·६ ग्राम है। इसे Phenobarbitone के साथ मिलाकर देते हैं। agranulocytosis एवं Aplastic anaemia आदि उपद्रव भी इसके अधिक प्रयोग से हो सकते हैं।

अपस्मार का वेग अति तीव्र रूप में हो (Status Epilepticus) हो तो रोगी को अन्धेरे कमरे में लिटायें। Hyoscine Hydrobrom. $\frac{१}{२००}$ ग्रेन या Phenobarbitone Sodium (Luminal Sod.) ३ ग्रेन मात्रा में १०-११ बुन्द जल में मिलाकर त्वचा द्वारा देना चाहिये या $\frac{१}{२}$, १ ग्रेन मात्रा में दिन में चार बार मांस द्वारा देवें अथवा

रोगी को बस्ति करके उसकी गुदा में $\frac{1}{2}, \frac{3}{4}$ औंस Paraldephyde इतने ही जैतून के तैल में मिला कर डाल देना चाहिये या Paraldehyde को ८-१० मिलि॰मात्रा में मांस द्वारा दे देवें। Dilantin Sodium १ मिनट में $\frac{3}{4}$ ग्रेन के हिसाब से शिरा द्वारा देने से भी लाभ हो जाता है। इसकी १५०-२५० मिलि॰ (२$\frac{1}{2}$,४ ग्रेन) कुल मात्रा दी जा सकती है। या इसे २५०-५०० मिलि॰ मात्रा में दिन में १ बार मांस द्वारा देवें। रोगी के शरीर में Acidosis न बढ़ने पाये इसलिये उसे खाने के लिये ग्लूकोज़ दूध आदि देते रहना चाहिये।

क्षणापस्मार के लिये :-

Tridione (abbot), Trimethyloxasolidinedione या Trimethadione .३ ग्राम कैपसुल दिन में तीन बार दी जाती हैं। बालक को इससे आधी मात्रा में दी जाती हैं। किसी किसी में इस औषधि का मज्जा पर दुष्प्रभाव हो सकता है। Paramethadione (Paradione Ablbot.) को भी उसी मात्रा में दिया जा सकता है। इसकी मज्जा पर दुष्प्रभाव कम होता है। या Amphetamine (Benzedrine) ~~.३ ग्रा॰ दिन में ३ बार~~ के २$\frac{1}{2}$,५ मिलि॰ ग्राम मात्रा में दिन में तीन बार देने से भी यही लाभ होता है। Methsuximide (Celontin) या Phensuximide(Milontin) ४००-५०० मिलि॰ तीन बार दिन में देने से यही लाभ करता है। Glutamic Acid ३-४ ग्राम दिन में २-३ बार देने से इस अपस्मार में लाभ दायक पाया गया है।

निद्रापस्मार के लिये :-

Ephedrine Hydroch. २५-५० मिलि॰ या ($\frac{3}{8}, \frac{3}{4}$ ग्रेन) मात्रा में तीन बार प्रयोग करने या Amphetamine (Benzedrine या Dexedrine) के ५ मिलिग्राम मात्रा में प्रातः एक या दो बार देने से लाभ होता है। Ritalin के ५ मिलि॰ मात्रा में दिन में दो बार देने से भी लाभ होता है।

साधारण आक्षेपों (Convulsions) के लिये Pyridoxine को २५ मिलि॰ मात्रा में दिन में तीन बार मुख से या ५०-१०० मिलि॰ मांस द्वारा देना लाभदायक कहा जाता है।

मानस अपस्मार या स्मृति नाश सूचक अपस्मार के लिये भी Phenytoin Sodium (Dilantin) अकेला या Phenobarbitone के साथ उपर्युक्त विधि से दिया जाता है। इसी प्रकार Mysoline या Mesantoin भी उपर्युक्त विधि से दिये जा सकते हैं।

साधारणतः अपस्मारी को श्रम करते रहना चाहिये यद्यपि मशीन का काम कभी नहीं करना चाहिये। उसे पानी बाग स्थान

मैं कभी नहीं जाना चाहिये । अति भोजन से, ~~खाली पेट देर तक रहने~~ से तथा मलबन्ध से बचना चाहिये । रोटी आदि कार्बोज भोजन कम तथा घृत आदि स्नेह प्रधान (Ketogenic) भोजन ~~से लाभ रहता है~~ ।

चिकित्सा विधि :-

पहले रोगी को Dilantin उपर्युक्त विधि से देना प्रारम्भ करना चाहिये । इससे पूर्ण लाभ होता न प्रतीत हो तो Mysoline की २५० मिलि० की एक गोली और, इस औषधि के दौरा न में ही देनी प्रारम्भ करनी चाहिये । तथा १-१ सप्ताह के बाद इसे क्रमश: बढ़ाते हुए इसकी ३ गो० तक दिन में की जा सकती है । दौरों के सर्वथा बन्द हो जाने पर Dilantin को क्रमश: कम करते करते बन्द कर के रोगी को केवल Mysoline पर रख देना चाहिये । इसमें भी दौरे शान्त न हों तो Mesantoin को आज़मा के देखना चाहिये । यदि इस रोग के वेग निरन्तर ३ वर्ष नहीं होते तो १ वर्ष तक दी जाने वाली औषधि की मात्रा को क्रमश: कम करते जाना चाहिये तथा देखना चाहिये कि अब दौरा होता है या नहीं ।

आयुर्वेद में अपस्मार :-

आयुर्वेद में मस्तिष्क में वायु, पित्त या कफ किसी एक या तीनों दोषों के बढ़ जाने तथा मन में जन्म से ही रजोगुण या तमोगुण की वृद्धि होने से तथा चिन्ता, भय आदि किसी मानस आघात से यह रोग उत्पन्न होता कहा गया है । चिन्ता, शोकादि की अधिकता से तथा शरीर के पोषण में कमी होने से वायु दोष की वृद्धि होती है । देहाग्नि के अधिक बढ़ जाने से पित्त दोष तथा देहाग्नि के अति मन्द होने से कफ दोष की वृद्धि होती है । इस प्रकार वात, पित्त, कफ तथा इनके सन्निपात से चार प्रकार का अपस्मार हो सकता है । चेष्टा, आक्षेप प्रधान को वातिक ज्वर संताप, स्वेद आदि प्रधान को पैत्तिक, निद्रा प्रधान को श्लैष्मिक अपस्मार कहा है । अत: इस रोग की चिकित्सा के लिये वस्ति या विरेचन या वमन और शिरोविरेचन के द्वारा शरीर में जो जो दोष अधिक बढ़ा हो तदनुसार उसका शोधन करना चाहिये । चिन्ता, काम, क्रोध, अति मानसिक-शारीरिक श्रम, अति लंघन, तीक्ष्ण गुण आहारों व अजीर्ण से बचना चाहिये । अधिक जागरण से भी बचना चाहिये । घृत, दूध, फल आदि हितकर कहे गये हैं । लवण का वर्जित रखना ठीक है।

इस रोग के लिये ब्राह्मी का प्रयोग सारस्वतारिष्ट (२ तोला भोजन बाद), ब्राह्मी घृत, सारस्वत चूर्ण (१-२ माशा) के रूप में बहुत किया जाता है । या सारस्वत चूर्ण १ माशा को वृहद्वात चिन्तामणि

१ रत्ती के साथ मिला कर दिन में दो बार मधु, घृत के साथ दिया जाता है। अपामार्ग बीजादि (च०।सू०२) रेचक नस्य भी दिया जाता है।

स्मृति सागर रस (पारद, गन्धक, मनशिल, हरताल, ताम्र, समान समान को ब्राह्मी, शंख पुष्पी, वचा की २१ भावना तथा माल कंगनी तेल से १ भावना देकर बनाया) को आधी माशा की मात्रा में घृत के साथ दिन में दो बार दिया जाता है। भोजन में रोगी को पेठे तथा हींग का और ब्राह्मी, शंख पुष्पी की चाय का सेवन कराया जाता है। चरक ने जीवनीय घृत को अपस्मार के लिये हितकर कहा है। सुश्रुत (उ०।६१) ने पुराने हुए घृत के पान तथा मालिश का आदेश किया है। [ब्राह्मी घृत आदि नाना घृतों के पान का विधान विशेषत: किया गया है।]

(च०।सू०२५, तथा नि०।८, तथा चि०।१०)

क्षणिक मूर्छा :- Syncope-Vasovagal Attack:- (Cerebral Anaemia or Paroxysmal Hypotension):-

युवावस्था में क्षणिक मूर्छा का एक रोग पाया जाता है जो सम्भवत: सिरा नियामक केन्द्र या सिरा संकोचक (Vasomotor या Vasoconstrictor) शक्ति (Tone) के कि जिस पर रक्तवाहिनियों की दीवार का बल निर्भर है, सहसा निर्बल हो जाने से अर्थात् सहसा रक्त भार गिर जाने (Hypotension) से उत्पन्न होती है। इससे शरीर की सूक्ष्म रक्तवाहिनियां शिथिल होकर फैल जाती हैं तथा ऐसी सूक्ष्म सिरायें (Capillaries) जो साधारणत: बन्द ही रहती हैं. वे भी शिथिल होकर फैल जाती हैं। कोष्ठ सम्बन्धी (Splanchnic) सिरायें विशेषत: शिथिल हो जाती हैं। इस प्रकार शरीर का बहुत सा रक्त शरीर की सूक्ष्म रक्त वाहिनियों में ही इतना अधिक भर जाता है कि हृदय को बहुत कम मात्रा में लौटता है जिससे हृदय की निकासी कम हो जाती है। इसीलिये इससे मस्तिष्क को पहुंचने वाले रक्त की मात्रा सहसा गिर जाती है। [निदान] खड़ा हुआ युवक सहसा मूर्छित होकर गिर पड़ता है। इस रोग में एक ओर मानसिक विक्षोभ से एक निर्बल व्यक्ति में Vasomotor शक्ति निर्बल हो जाती है। दूसरी ओर Vagus की उत्तेजना से हृदय गति भी मन्द हो जाती है। अत: इसे Vasovagal Attack कहा जाता है। इसमें नाड़ी मण्डल पर विक्षोभक या अवसादक प्रभाव होकर शरीर की सिरा संकोचक शक्ति थोड़ी देर के लिये शिथिल पड़ जाती है। जिससे इसे वातिक सिरा शैथिल्य या Neurogenic Vascular Collapse कहा जाता है। सहसा भय के या मानसिक आघात, या प्रियजन के वियोग के आघात के लगने पर या Allergy के नाड़ी मण्डल पर दुष्प्रभाव होके यह रोग होता है। इसके अतिरिक्त Carotid Sinus पर दबाव पड़ जाने से Vagus के द्वारा हृदय गति मन्द हो जाती है। हृदय गति की मन्दता से रक्तभार गिर जाता है एवं मस्तिष्क में

रक्त के न जा सकने से मूर्छा हो जाती है जो ४-२० सेकण्ड की होती है । इसे Vagal किस्म की मूर्छा कहते हैं । पर जब रोगी गिर पड़ता है तब मस्तिष्क को पहुंचने वाले रक्त की मात्रा बढ़ जाती है । जिससे मूर्छा शीघ्र ही शान्त हो जाती है । यह ~~मूर्छा २-४ मिनट ही रहती है~~ । इस मूर्छा को मानसिक (Psychogenic) भी कहते हैं या सहसा होने वाली होने से Primary या Immediate Syncope भी कहते हैं क्यों कि यह उपद्रव रूप न होकर स्वतन्त्र मूर्छा होती है ।

विषम ज्वर से या किसी अन्य रोग से निर्बल हुए ऐसे व्यक्ति में जिसमें Sympathetic नाड़ी मण्डल जिसका आरम्भ Hypothalamus के केन्द्रों से होता है विशेषत: निर्बल हुआ है । यह मूर्छा होती है । ऊपर से शोक, दु:ख आदि किसी मानसिक आघात के लगने या त्वचा पर किसी दु:खद साधारण शल्य कर्म के होने या किसी दूसरे के बहते खून को देखने या भीड़ युक्त, हवा रहित प्रदेश में खड़े रहने से, अति स्वेद आ जाने से, सिरा शैथिल्य होकर यह मूर्छा आरम्भ होती है । मूर्छा होने से पहले सिर कुछ चकराने लगता है, दृष्टि धुंधली पड़ जाती है तथा रोगी को प्रतीत होता है कि वह डूब सा रहा है ।

परीक्षा करने पर रोगी का चेहरा फीका सफेद दीखता है । उसकी हृदय तथा नाड़ी गति मन्द होती, रक्त भार गिरा हुआ होता, पुतलियां फैली हुई होती हैं । बड़ी आयु में पाई जाने वाली अस्थायी या क्षणिक मूर्छा छोटी छोटी मस्तिष्क धमनियों में अस्थायी अवरोध या स्वल्प Cerebral Thrombosis के कारण हुआ करती है । उससे इस उत्तम मूर्छा का भेद करना चाहिये । हृदय रोगों जैसे Heart Block (Adams Stokes Syndrome) Aortic Stenosis या Regurgitation तथा हृदय मांस में Infarction. में जो मूर्छा होती है उससे भी इसका भेद करना चाहिये ।

चिकित्सा :-

ऐसे व्यक्ति को लिटाकर उसके पायते को ऊंचा कर देना चाहिये । (Shock Position) । उसके मुख पर शीतल जल के छींटे देने चाहियें । अमोनिया सुंघाना चाहिये या (Spirit Ammon, Aromatic ३० बून्द पिला देना चाहिये या Adrenaline ५ बुन्द या Coramine या Veritol, Mephentine आदि किसी Vasopressor औषधि का इंजेक्शन देना चाहिये ।

दीर्घ मूर्छा, उपद्रव रूप मूर्छा :- Secondary Shock या Hypovalemic. या Oligaemic या Prolonged Shock 2. Peripheral circulatory failure

कारण :-

शरीर के एक अंग को तीव्र आघात पहुंचने पर

या मन पर तीव्र आघात पहुंचने पर यदि सिरा नियामक (Vasomotor) केन्द्र या सिरा संकोचक (Vaso Constrictor) शक्ति अधिक मात्रा में तथा देर तक निर्बल हो जाय तब ऐसी अवस्था में होने वाली दीर्घ मूर्छा को Prolonged Shock कहते हैं। किसी रक्त वाहिनी में से शल्य कर्म आघात आदि द्वारा बहुत से रक्त के बह जाने से, या रक्त में से उसके जल भाग के बहुत मात्रा में शरीर में से निकल जाने से जैसे अतिसार, अग्निदाह जनित Oligaemia से या प्लाज्मा के नष्ट हो जाने से या स्वेद के अधिक आने से (Heat Stroke) या किसी दुर्घटना में शरीर पर भारी चोट लगकर मांस पेशियों के कुचले जाने से (सम्भवत: उनमें से Histamine के रक्त में संचार कर जाने से या वहां रक्तवाहिनियों में से बहुत से Plasma के आसपास के प्रदेश में बह जाने से) ~~(Toxaemia से)~~ या किसी आभ्यन्तर विष (Metabolic विष) के अधिक बढ़ जाने से या किसी रोग विष के शरीर में अधिक फैल जाने से या पूय विष (Sepsis) की तीव्रता से या ग्रीष्म ऋतु में किसी बिगड़े हुए भोजन के खाये जाने से या आन्त्र वृद्धि में आंत के नीचे फंस जाने से, या आंत में बाहर या अन्दर से छिद्र हो जाने से या किसी वाह्य प्रोटीन द्रव्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाने से (Anaphylaxis) या किसी स्त्री में शस्त्र द्वारा प्रसव कराने से रक्तवाहिनियों की रक्त वाहक शक्ति (नाड़ी मण्डल पर आघात से या Toxaemia या Oligaemia या Anoxia से) क्षीण हो जाती है। इसे सर्वाङ्ग शैत्य या Shock या Collapse कहते हैं। हृदय या मस्तिष्क के पोषण के सहसा बन्द हो जाने अर्थात् उनमें Infarction होने से भी शरीर की रक्तवाहिनियां फैल जातीं या शिथिल हो जाती हैं। वाह्य शीत से भी यह शिथिलता बढ़ती है।

इस प्रकार उपद्रव रूप दीर्घ मूर्छा (Secondary Shock) का रोग (१) एक तो रक्तवाहिनियों में रक्त या द्रव की मात्रा के न्यून हो जाने से अर्थात् Hypovolaemia से होता है जो न्यूनता (क) आभ्यन्तर या वाह्य रक्त स्राव से होती है। (ख) या किसी अंग के कुचले जाने या किसी अस्थि के भग्न हो जाने पर रक्त में से बहुत से प्लाज़्मा के परिस्रुत हो जाने से होती है। (ग) या अग्नि दाह के कारण प्लाज़्मा के बाहिर निकल जाने से होती है। (घ) या जलोदर आदि में बहुत से रक्त द्रव के उदर गुहा आदि में बह जाने से होती है। (ङ) या वृक्क रोग के कारण रक्त के बहुत से जल के अवयवों में बह जाने से होती है। (च) या अतिवमन, अतिसार, अति स्वेद आदि के कारण रक्त में से बहुत से सोडियम तथा जल आदि के निकल जाने से होती है।

(२) दूसरा यह दीर्घ मूर्छा का रोग रक्त में किसी तीव्र जीवाणु विष के अधिक मात्रा में फैल जाने अर्थात् किसी Sepsis या

Endo या Exotoxin के प्रसरण कर जाने से होती है । इस विष के कारण सूक्ष्म रक्तवाहिनियां शिथिल हो जाती हैं । जब विष थोड़ा होता है तब पहले रक्तवाहिनियों में संकोच हुआ करता है । पर जब उसकी मात्रा बढ़ती है या रोगी निर्बल हो जाता है तब रक्त वाहिनियों में शैथिल्य (Dilatation) हो जाया करता है । संभव है इस विष का प्रभाव सीधा हृदय पर होकर उसमें भी शिथिलता हो जाती है ।

(३) तीसरा कभी कभी हृदय में पहले रोग होकर अर्थात् उसके मांस में घात (Infarction) होकर या उसके मांस के रुग्ण होने से हृत्कम्प-हृदय गति वैषम्य या हृदय दौर्बल्य होकर भी अंगों को रक्त की मात्रा कम मिलने लगती है जिससे Shock के लक्षण होने लगते हैं । स्पष्ट है कि मूर्छा या Shock का यह रोग निर्बल व्यक्तिओं, बालकों तथा वृद्धों में शीघ्रता से होता है ।

सम्प्राप्ति :- Pathogenesis:-

(१) रक्तवाहिनियों में से रक्त के या प्लाज़्मा के अतिमात्रा में निकल जाने से,

(२) या किसी विषैले द्रव्य के दुष्प्रभाव से शरीर की सूक्ष्म रक्तवाहिनियों के शिथिल हो जाने से, शरीर के अंगों को रक्त कम मात्रा में मिलने लगता है अर्थात् अंगों को आक्सिजन पूर्ण मात्रा में नहीं मिल पाती । ऐसी अवस्था में जब वृक्कों को भी रक्त की कम मात्रा मिलती है तब शरीर में Sympathetic नाड़ी मण्डल उत्तेजित हो जाता है तथा Epinephrine. की उत्पत्ति भी बढ़ जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे संकट काल में शरीर की रक्तवाहिनियां संकुचित हो जाती हैं । (उनमें Compensatory Vasoconstriction हो जाता है) त्वचा, कोष्ठ आदि की रक्तवाहिनियां अधिक संकुचित होती हैं जिससे इनमें रक्त की मात्रा बहुत घट जाती है । इस का यह लाभ होता है कि यकृत, हृदय, मांस, मस्तिष्क आदि प्रधान अंगों को रक्त मिलता रहता है तथा त्वचा में से ऊष्मा के विनष्ट होने की मात्रा कम हो जाती है । मूत्र की उत्पत्ति भी कम हो जाती है एवं शरीर में जल, सोडियम क्लोराइड ऊष्मा आदि की रुकावट हो जाती है ।

परन्तु यदि रक्त की यह न्यूनता (Ischaemia) देर तक रहे, अर्थात् रक्त में बाहर से और द्रव न डाला जाय तो यकृत, मांस आदि में भी रक्त की न्यूनता हो जाती है जिससे इनमें कोई विषैला पदार्थ उत्पन्न हो जाता है जिसके रक्त में जाने के कारण सामान्य सिरायें ही नहीं पर ऐसी औकालिक सिरायें जो साधारणतः बन्द ही रहती हैं वे भी शिथिल होकर फैल जाती हैं । विशेषत: कोष्ठगत (Splanchnic) सूक्ष्म

सिराओं के शिथिल होकर फैल जाने से उनमें इतना रक्त भर जाता है (६१ प्र०श० के लगभग) कि हृदय में शिराओं के द्वारा वापिस पहुंचने वाले रक्त की मात्रा बहुत घट जाती है जिससे उसमें से निकलने वाले रक्त की मात्रा भी बहुत घट जाती है। रक्त भार के अत्यधिक घट जाने, प्रधान प्रधान अंगों को रक्त व आक्सिजन के न मिलने से उन्हें हानि पहुंच जाती है। इस अवस्था में रोगी शीतल होता जाता है। रक्त के देने से ही ऐसी अवस्था में जीवन बच सकता है। इस प्रकार कुछ तो यह कहते हैं कि नाड़ी मण्डल के (Neurogenic Reflex के) द्वारा कोष्ठगत सूक्ष्म सिराओं के शिथिल होकर फैल जाने से यह रोग होता है। (यहां स्मरण रखना चाहिये कि हृदय दौर्बल्य या Congestive Heart Failure में शिराओं में अधिक रक्त भार होता है जबकि इस रोग में शिराओं में रक्त की मात्रा घट जाती है) ।

आघात जनित मूर्छा (Traumatic Shock):- के कारण के विषय में एक मत तो यह है कि आहत मांस पेशियों में से Histamine, Choline आदि कोई अवसादक पदार्थ उत्पन्न होकर रक्त द्वारा शरीर में संचार करता है और वह Vasomotor केन्द्र पर अपना दुष्प्रभाव करके रक्त संचार को मन्द करने का कारण बन जाता है जिससे मस्तिष्क तथा शरीर के अन्यान्य अवयवों को यथावत् आक्सिजन के न मिलने से रोगी अचेत या अर्ध मृत सा हो जाता है जिससे प्रबल आघात के कारण सम्पूर्ण नाड़ी मण्डल अवसन्न (Depressed) हो जाता है।

दूसरा मत यह है कि आहत स्थान से उत्पन्न वेदना सम्बन्धी संज्ञायें ही शरीर के रक्त संचार को मन्द कर देने का कारण होती हैं क्योंकि यदि वहां से जाने वाली संज्ञावाहिनियों (Afferent Nerves) को काट दिया जाय तो आघात लगने के बाद भी मूर्छा का लक्षण बहुत हलका ही होता है।

लक्षण :-

ऐसी अवस्था में रोगी मूर्छित एवं उदासीन की तरह पड़ा होता है (Prostration)। यद्यपि उसमें समझ बूझ होती है (क्योंकि मस्तिष्क में सिरा संकोच नहीं होता) उसका चेहरा फीका (Pallor), चिन्तित, त्वचा शीत स्वेद से आर्द्र होती है (Perspiration), आंखें कुछ अन्दर धंसी हुई, पुतली फैली होती है, उस पर प्रकाश का प्रभाव मन्द होता है, हृदय गति तथा नाड़ी गति निर्बल होती है (Pulselessness)। (हृदय में भी सिरा संकोच नहीं होता) नाड़ी तीव्र होती है, विषम भी हो सकती है। शरीर का तापमान बहुत गिरा हुआ होता है, श्वास प्रश्वास तीव्रतर उथला (Pulmonary deficiency), मूत्र-मल बन्द होते हैं। वमन की इच्छा होती है, रक्त भार गिरा हुआ होता है, ओष्ठों में नीलिमा (Cyanosis) होती है। ३० % रक्त निकल गया हो तो रक्त भार १०० M.M. of Hg. से नीचे होता है तथा नाड़ी १०० प्र०मि० के लगभग होती है। २५ %

तक रक्त के निकल जाने पर भी विशेष हानि नहीं होती । इससे अधिक निकल जाय तो वृक्कों, यकृत, हृदय आदि को रक्त न मिलने से इन अंगों सम्बन्धी उपद्रव हो सकते हैं ।

सन्यास मूर्छा (Coma) गहरी होती है तथा उसमें रोगी घुर्राटे ले रहा होता है । अतः उससे इसका भ्रम नहीं होना चाहिये ।

दीर्घ मूर्छा (Secondary Shock) की चिकित्सा :-

मूर्छित रोगी को पूर्णतः शान्त वातावरण में पूर्ण विश्राम की अवस्था में लिटा देना चाहिये । तथा यदि सिर में चोट न लगी हो तो उसके पांयते को १-२ फुट ऊंचा और सिर की तरफ शय्या को नीचा रखना चाहिये ताकि मस्तिष्क को रक्त अधिक मिले (Shock Position) उसे बाहर की शुद्ध वायु एवं आक्सिजन पर्याप्त मिलनी चाहिये । उसका शरीर जो शीतल होता है उसे कम्बल से गर्म करना चाहिये । गर्म बोतलों या अग्नि से गर्म करने से रक्त वाहिनियाँ जो पहले ही शिथल हैं और शिथिल हो जाती हैं अतः उनका प्रयोग करना उचित प्रतीत नहीं होता । प्रायः उसे तीव्र वेदना हो रही होती है और वेदना से Vasodilatation या सिरा शैथिल्य और बढ़ता है । उसकी शान्ति के लिये Phenobarbital Sodium (Nembutal) $1\frac{1}{2}$ ग्रेन मुख द्वारा दे देना चाहिये अथवा २ ग्रेन मात्रा में इसे त्वचा या मांस द्वारा दे देना चाहिये । अधिक वेदना के लिये Morphine Sulphate को $\frac{1}{6}$ ग्रेन मात्रा में शिरा द्वारा देने से तुरन्त शान्ति पड़ जाती है । परन्तु मूर्छित व्यक्ति को या जिनके सिर पर चोट लगी हो या जिनका श्वास प्रश्वास पहले ही मन्द है उन्हें यह नहीं दी जा सकती ।

इन प्रारम्भिक चिकित्साओं के अतिरिक्त सबसे आवश्यक बात रोगी की घटी हुई रक्त की मात्रा को बढ़ाना है । इस उद्देश्य से या तो ५०० मि०लि० Isotonic Saline Solu. शिरा द्वारा दे देना चाहिये या उसमें बना ५-१० प्र०श० Dextrose Solu. उतना दे देना चाहिये । रक्त, प्लाज़्मा, या Serum Albumin का देना अधिक लाभदायक है । ये न मिल सकें तो Dextran (Bengers, Intradex, Dexulate, Gentran, Expandex, Plavolex) का ६ प्र०श० Isotonic Saline Solu. में बना सोल्यूशन ५००-१००० मिलि०लि० मात्रा में शिरा द्वारा एक मिनट में २० मिलि०लि० के हिसाब से देदेना चाहिये । इतना द्रव देना चाहिये जिससे संकोच कालिक रक्त भार ८५ M.M.Hg. हो जाय । शरीर में से बहुत से द्रव के निकल जाने से यह मूर्छा या शीतलता हो तो उपर्युक्त द्रवों में से किसी को ५००-१००० मिलि० मात्रा में शिरा द्वारा देना अत्यावश्यक है । मुख से रोगी जल ले सकता हो तो मुख से भी गर्म जल देना चाहिये ।

यदि विष जनित मूर्छा हो अर्थात् Septic Shock हो तो आगे लिखी Vasopresser औषधियां विशेष लाभ करती हैं । यद्यपि वे रक्त की मात्रा के न्यून हो जाने के कारण उत्पन्न Shock में भी लाभ दिखाती हैं ।

सिरा संकोचक या रक्त भार वर्धक औषधियों (Vasopressor) का प्रयोग :-

(१) Adrenal Medulla का स्राव ~~Mad~~ Noradrenaline-१००० में १ के Solution की ४ सी०सी० औषधि (८ मिलि०) को १ हजार सी०सी० शुद्ध जल या ५ % ग्लूकोज़ सौल्यूशन या ग्लूकोज़ सैलाइन में मिला के २०-४० बुन्द प्रति मिनट के हिसाब से शिरा द्वारा देने से रक्त भार बढ़ता है । इसके १मिलिलि. में २मिलि० के अम्पुल (Adrenor) मिलते हैं एक बार ४-८ मिलि. ड्रिप नाप पर्याप्त होता है।

(२) Mephentermine Sulphate(Wyamine Sulphate) — १ सी०सी० औषधि (१५ मिलि०) को १०-२० सी०सी० नार्मल सैलाइन में मिला के शिरा द्वारा १-२ मिनट में दिया जाता है या २ सी०सी० औषधि को १०० सी०सी० ५० % ग्लूकोज़ सौल्यूशन मिला के बुन्द बुन्द करके शिरा द्वारा दे दिया जाता है । या १५-३० मिलि० मात्रा में इसे मांस द्वारा दे सकते हैं तथा दो दो घण्टे बाद फिर दुहरा सकते हैं ।

(३) Phenylephrine Hydrochloride(Neosynephrine) के •५ से १ मिलि ग्राम मात्रा में २-२ घन्टे बाद शिरा द्वारा देने से भी घटा हुआ रक्तभार बढ़ जाता है ।

(४) Methoxamine Hydrochloride (Vasoxine, Vasoxyl) के २० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा या ५ मिलि० के शिरा द्वारा देने से भी यही प्रभाव होता है । इसे ३५ मिलि० मात्रा में २५०-५०० मिलि०लि Dextrose Solu.में मिला बुन्द बुन्द करके भी दे सकते हैं ।

(५) Metaraminol Acid Tartrate (Aramine Bitartrate Merek Sharp Dhome). के ३०-२०० मिलि० मात्रा में १००० सी०सी० Saline या Glucose Saline. में बुन्द बुन्द करके देने या त्वचा या मांस या शिरा द्वारा ५-१० मिलि० मात्रा में देने से भी रक्त भार बढ़ता है.।

(६) Pholedrine Sulphate (Veritol-Veritain) का २ प्र०श० सौल्यूशन एक सी०सी० में मिलता है । इसे आधी से एक सी०सी० मात्रा में २५ सी०सी० ग्लूकोज़ सौल्यूशन में मिला के धीरे धीरे शिरा द्वारा २-२ घन्टे पर दिया जाता है अथवा रोग तीव्ररूप में न हो तो १%सौल्यूशन को १५-३० बुन्द मात्रा में दिन में कई बार मुख से भी दिया जाता है ।

(७) Desoxyephedrine(Methedrine) की १५-३० मिलि० मात्रा २-२ घंटे बाद मांस या शिरा द्वारा धीरे धीरे देने से भी रक्त भार बढ़ता है ।

(८) Synephrin (Syncalton) के एक सी०सी० सोल्यूशन (.०६ ग्रा को मांस द्वारा ३-३ घन्टे बाद देने से भी यही लाभ होता है। इन औषधियों से रक्त भार को १०० M.M.of Hg. तक करना चाहिये।

(६) शितल हुए मूर्छित रोगी में जब Adrenal Cortex ग्रन्थि का कार्य मन्द होता है Hydrocartisone Sodium Succinate (Solucortef) को १०० मिलि० मात्रा में ५ प्र०श० ग्लूकोज़ सोल्यूशन ५०० मिलि०लि० में मिला के शिरा द्वारा देने से रोगी का बढ़ा हुआ रक्त भार कायम रहता है, गिरता नहीं।

जीवाणु संचार (Infection)जनित रोग हो तो Antibiotic औषधियों का तथा हृदय दौर्बल्य कारण हो तो Digoxin का प्रयोग करना चाहिये। रोगी की नाड़ी, तापमान, श्वास प्रश्वास की परीक्षा ½,½ घन्टे पर करनी चाहिये।

रक्तदान Blood Transfusion:- रक्त भार यदि १०० से नीचे ७० तक आ जाय तो रक्त दान आवश्यक हो जाता है।

अर्धाव भेदक :- Migraine,Hemicrania:-

कारण :-

१५-२० वर्ष की आयु में या नवयुवावस्था में विशेषत: नव युवतियों में, मध्यमायु तक १५-१५- दिन या महीनों के अन्तर से वेगों में होने वाला यह एक सिर दर्द है जो पहले सिर के एक प्रदेश में आरम्भ होकर आधे सिर में और कभी कभी सारे सिर में और ग्रीवा में भी फैल जाता है। यह पितृ परम्परा से आने वाला रोग है।

जिस प्रकार मस्तिष्कान्तर्गत रक्तवाहिनियों के फैल जाने या उनके अन्दर रक्त भार के बढ़ जाने से या उनके आसपास के अवयव में श्वयथु (Oedema) के हो जाने से सिर दर्द हो जाता है, वैसे ही मस्तिष्क के वाह्यावरण (Dura) तथा सिर के बाहर कपाल में आने वाली Ex.Carotid Art. और उसकी शाखाओं के शिथिल (Dilated) हो जाने एवं उनके अन्दर रक्त के अधिक भर जाने तथा उनके आसपास के अवयव में श्वयथु के हो जाने से यह अर्धाव भेदक नाम का सिर दर्द होता है।

क्रोध, चिन्ता, मानसिक शारीरिक थकावट आदि कारणों के आ पड़ने पर तथा अजीर्ण के होने पर शरीर में उत्पन्न किसी भोजन सम्बन्धी विष (Metabolite) के दुष्प्रभाव से या किसी द्रव्य की Allergy के कारण मस्तिष्क और कपाल की रक्तवाहिनियों में पहले तो स्तम्भ (Spasm) हो जाता है, पश्चिम मस्तिष्क के Cortex की धमनियों में स्तम्भ से Scotoma या अंधेरा (तिमिर) का लक्षण होता है। Spasm के कारण वहां की मांस पेशियों को रक्त कम मिलता है, जिससे उनमें भी स्तंभ

हो जाता है तथा दर्द हो जाता है। स्तम्भ के बाद रक्त वाहिनियाँ शिथिल होकर फैल जाती हैं। उनके फैल जाने से विशेषत: सिर दर्द आरम्भ होता है। इस प्रकार सिरा नियामक शक्ति (Vasomotor Power) की निर्बलता इस रोग का कारण प्रतीत होती है जो रोगी में बहुधा सहज होती है।

लक्षण :-

प्रात:काल जब रोगी तकिये से सिर उठाने लगता है, उसका सिर चकराने लगता (Vertigo) तथा उसके आंखों के सामने दृष्टि क्षेत्र में कहीं अन्धेरा सा आ जाता है अथवा उस अन्धेरे के बीच में चमकारे से दीखते हैं। दृष्टि पटल (Retina) या दृष्टि केन्द्र (Visual Cortex) की रक्त वाहिनियाँ (Post.Cere.) (धमनी की शाखाओं) में स्तम्भ के हो जाने से ये लक्षण होते हैं। इसी कारण Hemianopia या आधे दृष्टि क्षेत्र में अन्धेरे का लक्षण भी होता है। ये पूर्व रुप (Aura) १०-१५ मिनट तक रहते हैं। इसके साथ रोगी में अरुचि या वमन आने का लक्षण भी होता है। इसके बाद जब रक्तवाहिनियां फैल जाती हैं तब एक ओर की कनपटी या नेत्र पश्चिम प्रदेश पर चुभने वाला शूल आरम्भ हो जाता है। जिस आंख में अन्धेरा सा आता है उससे विपरीत दिशा की ओर यह दर्द आरम्भ होता है। धीरे धीरे वह अधिक अधिक प्रदेश पर फैलता जाता तथा तीक्ष्ण तर होता जाता है। हिलने से, प्रकाश पड़ने से, शोर गुल से यह शूल और बढ़ता है। शूल के साथ अरुचि होकर वमन होने का लक्षण भी होता है। वमन से शूल को कुछ आराम मिलता है। २-४ घन्टों तक शूल बढ़ा हुआ रहने के बाद क्रमश: घटने लगता है। जिधर दर्द होता है उधर पुतली बहुधा फैली हुई होती है शाखाओं में निर्बलता लगती है। अन्त में रोगी को नींद आ जाती है और जब वह उससे उठता है तब दर्द समाप्त हो चुका होता है। इस प्रकार यह दर्द लगभग एक दिन रहता है। रोगी को देखने पर उसका चेहरा (धमनी संकोच के कारण) कुछ फीका दीखता है (धमनियां फैली होती चेहरा कुछ लाल दीखता है)। रक्त में Eosinophils की संख्या ५-१५ % मिलती है। ऐसा भी हो सकता है कि रोगी को केवल नेत्र सम्बन्धी पूर्व रुप ही हों या मूकता (Aphasia) ही हो। सिर दर्द न हो, या नेत्र सम्बन्धी लक्षण न हों, केवल सिर दर्द ही हो या केवल वमन और पेट में बेचैनी के ही लक्षण हों। या सिर दर्द के दौरे बहुत वर्षों तक होते रहते हैं। मध्यमायु के बाद हल्के पड़ जाते और बन्द हो जाते हैं। पर आयु पर इनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

चिकित्सा :-

कपाल पर की रक्त वाहिनियाँ के फैल जाने से यह दर्द होता है। इसलिये सिर को कस कर बान्ध देने से (या cold compress से) इसमें कुछ कमी हो जाती है। इसी प्रकार Ex.Carotid Art. के दबाने से भी यह दर्द घट ...

Methy sergide maleate को 8 मिलि० दैनिक मात्रा में विभक्त करके लेने से भी रोग का आक्रमण रुक जाता है ऐसा कहा जा रहा है।

जाता है । Phenacetin १० ग्रेन, Aspirin १० ग्रेन, Caffeine ५ ग्रेन की एक पुड़िया के लेने से या Luminal १½ ग्रेन के लेने तथा आवश्यकता पड़ने पर इनके दुहराने से यह दर्द शान्त हो जाता है । मस्तिष्क व सिर के बाहर की धमनियों के लिये संकोचक (Vasotonic) होने से Ergotamine Tartrate (Femergan) इस रोग में प्रयुक्त होता है । इसका १ सी०सी० मात्रा का अम्प्यूल जिसमें ½ मिलिग्राम औषधि होती है, मिलता है । इसके ½ सी० सी० की मात्रा में मांस द्वारा देने से १ घन्टे में आराम आ जाता है । और आवश्यकता हो तो दो घन्टे बाद फिर आधा सी०सी० मात्रा में दे सकते हैं Dihydroergotamine(Migril-Cafergot) उपर्युक्त औषधि की अपेक्षा अधिक निरुपद्रव है । इसका एक मिलिलि० का इंजेक्शन जिसमें २ मिलि० औषधि होती है ½ मिलिलिटर मात्रा में मांस द्वारा दिया जाता है । आवश्यकता हो तो १ घन्टे बाद इसे दुहराया जा सकता है । मुख द्वारा भी इसका प्रयोग किया जाता है परन्तु वमन हो जाने की आशंका रहती है । इसकी १ मिलिग्राम की गोली के जीभ के नीचे रखकर चूसने से और आधे आधे घन्टे में इसी प्रकार इन गोलियों के ३-४ तक चूस कर लेने से लाभ हो जाता है । आवश्यकता हो तो ६-७ गोलियों तक लेने से कोई हानि नहीं है । १०० मिलि० Caffeine के साथ देने से इसकी कम मात्रा देनी पड़ती है । इस औषधि के लेने के बाद रोगी को १-२ घन्टे लेटे रहना चाहिये तथा कुछ खाना पीना न चाहिये । पर जहां तक हो मुख द्वारा न देके मांस या त्वचा द्वारा ही इसे देना चाहिये । इन औषधियों से अरुचि व वमन का उपद्रव हो तो Dramamine, Cyclizine २५ मिलि० या Largactil १० मिलि० से वह ठीक हो जाता है । Prednisolone के १०-२० मिलि० मात्रा में देने से हो सकता है उपर्युक्त औषधि की देने की आवश्यकता न हो । आगे के इस रोग की रोकथाम के लिये Phenobarbitone (या Sod. amytal) ½, १ ग्रेन मात्रा में रात को एक बार कुछ महीनों तक लेते रहना चाहिये । निद्रा व विश्राम लेने से इस रोग में आराम पड़ता है । Nicotinic Acid रक्तवाहिनियों के संकोच को रोकता है (वह Antispastic है) उसके १०० मिलिग्राम मात्रा में दिन में दो तीन बार भोजन बाद कुछ काल तक लेते रहने से भी यही लाभ होता है । ~~विटामिन बी२ के इंजेक्शन लेते रहने या~~ Riboflavine १० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार ५-६ मास लेने और फिर ५-१० मिलि० एक बार लेते रहने से भी लाभ होता है Gowers Mix. (Liquor Trinitrin) १ बुन्द, Tincture Nuxvomica १० बुन्द, Tincture Gelsemium १० बुन्द, Dilutehydro Bromic Acid ५ बुन्द, Sod. Brom. १० ग्रेन, के दिन में दो तीन बार कुछ मास तक देने से भी यह दर्द नहीं होता । Carbachol (Doryl) के भी Vasodilator होने से २ मिलि० मात्रा में दिन में २-३ बार लेते रहने से रोग का वेग ~~होने से~~ नहीं होता ।

Vitamin B_{12} के ५० मिलि० मात्रा में त्वचा या मुख से प्रतिदिन लेते रहने से भी लाभ होता है। अति मानसिक तथा शारीरिक श्रम से तथा मलबन्ध और अजीर्ण से बचा जाय, घृत तेल आदि से की आहारों व मांस का सेवन न किया जाय और आंखों पर अधिक जोर न डाला जाय तो भी इस रोग का वेग नहीं होता। आर्तव कालिक अर्धावभेदक रोग में आर्तव से एक सप्ताह पहले ही Progesterone ५ मिलि० मांस द्वारा तीसरे दिन २-३ बार दे दें या इसे ५०-१०० मिलि० दैनिक मात्रा में ४-५ दिन मुख से दें या Ethisterone ३० मिलि० दैनिक मात्रा में ४-५ दिन दे दें।

आयुर्वेद में अर्धावभेदक शूल :-

आयुर्वेदानुसार कपाल की रक्तवाहिनियों और मांस पेशियों में वायु के प्रकुपित होने से अर्थात् उनकी प्राण शक्ति की हीनता से आधे सिर में यह दर्द उठता है जो कुछ कुछ दिनों के अन्तर से होता है। सुश्रुत ने इसे वात प्रधान त्रिदोषज शूल कहा है। अन्यों ने इसे प्रधानतया वायु वृद्धि और गौण रूप में कफ वृद्धि से होने वाला शिरो रोग कहा है। इनकी वृद्धि अध्यशन, अत्यशन से तथा मलबन्ध, अति शारीरिक-मानसिक श्रम तथा निद्रा के कम लेने से होती है।

(च०।चि०।२६।, सुश्रुत उत्तर २८)

शिर में विद्यमान वातिक निर्बलता की शान्ति के लिये रोगी को बादाम पाक (बादाम, चारमगज, ब्राह्मी, द्राक्षा ५-५ तोला की पिट्ठी, घृत २ पाव में भुनकर १ सेर मिश्री की चासनी में डालकर बनाया) दो तोला की मात्रा में मुक्ता-पिष्ठी या मुक्ता-शुक्ति १½ रत्ती के साथ मिलाकर दिया जाता है। वातशामक दशमूल कषाय में थोड़ा लवण तथा घृत मिला कर उसे नाक द्वारा पीने से या दूध के नाक द्वारा पीने से भी शिर की वातिक दुर्बलता शान्त होती है। योगराज गुग्गुलु का कुछ काल सेवन करना भी हितकर है। दशमूल क्वाथ से साधित तैल के सिर पर कुछ काल तक मलने से, नाक में किसी रेचक नस्य तथा षड्बिन्दु तैल या माष तैल या घृत या नारायण तैल, या अणुतैल के नस्य लेते रहने से भी इस शूल का निवारण होता है। त्रिफला के जल द्वारा या गुडूची, चिरायते, नीम, दारु हल्दी के कषाय के साथ लेते रहने से, शूल के समय गूगल ६ माशा, कटहरी के फल ६ माशा, वत्सनाभ १ माशा मिला पीसकर कनपटी पर लेप करने से या कुष्ठ और सोंठ बराबर बराबर मिला कर उसके लेप से या तिलों को पीसकर उसकी लुगदी में कुछ नमक और जातिफल चूर्ण के मिला कर उसका सिर पर लेप करते रहने से, माथे का शूल शान्त होता है। इस प्रकार वायु शामक चिकित्सा तथा मलबन्ध शामक चिकित्सा से इस रोग में लाभ होता है।

दृष्टिशक्ति की निर्बलता में ciliary muscle पर अधिक जोर पड़ने से सिर में दर्द होता है। अथवा आँख में कोई शोथ हो जैसे corneal ulcer, Iritis, अथवा तज्जनित शोथ हो या आँख के अन्दर के द्रव के अन्दर्गत बाहिर न होने से उसके अन्दर के भार के बढ़ जाने पर उस भार के sclera तथा uveal tract की नाड़ियों Nerves पर पड़ने से आँख में जो दर्द Glaucoma में उठता है उससे भी सिर में दर्द होता है।

रक्तभार के बढ़ने से External carolid artery के अन्दर कि जो मस्तिष्कावरणों को रक्त देती है अधिक ~~खिंचाव होने~~ ~~से~~ प्रबल धमन होने से शिरःदर्द होता है जो सवेरे उठने पर अधिक लगता है फिर दिन में धीरे धीरे कम हो जाता है।

चिन्ताशील व्यक्तियों में (Psychic headache)

शिरो रोग - शिरः शूल :- (Head Ache):-

कपालान्तर्गत धमनियों में रक्त के अधिक भर जाने और उनके फैल जाने व उनके प्रबल स्पंदन से, कपाल के अन्दर दबाव के बढ़ जाने से बहुधा सिर दर्द हुआ करता है जैसे विषम ज्वर, मन्थर ज्वर, Influenza आदि में होता है। सामान्यतः रक्त में जीवाणु हों, (Bacteriaemia) हों, कोई विष द्रव्य हो, (Sepsis हो), तो सिर दर्द हो जाता है। इसी प्रकार कोई सिरा प्रसारक Vasodilator औषधि जैसे Nitrite अधिक मात्रा में लिया जाय तो भी सिर दर्द हो जाता है। शरीर में Histamine के बढ़ जाने या किसी बाह्य तथा प्रतिकूल प्रौटीन के शरीर में आ जाने से मस्तिष्क के आवरणों (Pia तथा Dura) की धमनियों के शिथिल होकर फैल जाने से भी सिर में दर्द हो जाता है। क्रोधादि तीव्र मानसिक आवेश से कपालान्तर्गत धमनियों में शैथिल्य (Dilatation) होकर सिर दर्द होता है। दूसरी ओर चिन्ता के कारण कपाल की मांस पेशियों में तनाव (Tension) के बढ़ जाने से भी सिर दर्द रहता है। रक्त में किसी असामान्य विष के आ जाने से भी, Co, Co_2 या चिरस्थायी वृक्क रोग जनित मूत्र विष (Uraemia) या मलबन्ध जनित किसी विष के कारण भी सिर दर्द हो जाता है। कुछ मस्तिष्क रोगों जैसे मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis) मस्तिष्क अर्बुद, मस्तिष्क विद्रधि, मस्तिष्क में जल वृद्धि (Hydrocephalus) तथा मस्तिष्क के Subarachnoid प्रदेश में रक्त स्राव हो जाने से भी शिर में भारी दर्द होता है। इनके अतिरिक्त नेत्र के Iritis, Glaucoma, Eye strain रोगों, तथा कान, नाक, गले, दांत आदि के रोगों के कारण भी सिर में दर्द होता है। चिकित्सा कारणानुसार ही होनी चाहिये।

अर्दित :- Facial Paralysis, Bell's Palsy, Rheumatic Facial Paralysis:-

मस्तिष्क सप्तम नाड़ी (Facial N.) का मोटर न्यूक्लियस Pons के निम्न भाग में होता है। इससे ऊपर के इस नाड़ी के चेष्टा सूत्रों में (Supranuclear भाग में) जो दूसरी ओर से क्रास करके आते हैं जब रोग होता है जैसे कि पक्षाघात रोग में, मस्तिष्क रक्त स्राव (Haemorrhage) या मस्तिष्क धमनी रोध (Cere. Thrombosis) के कारण होता है तब भी एक ओर के चहरे में विशेषतः उधर के चेहरे के निचले भाग की मांस पेशियों में घात (Paralysis) का लक्षण होता है। यह रोग ५०-६० वर्ष की आयु के बाद हुआ करता है तथा इस अवस्था में उधर की शाखाओं में भी न्यूनाधिक घात होती है।

परन्तु इस नाड़ी के निचले सिरे में जो कि Stylomastoid छिद्र के बाहर रहता है अर्थात् Chordatympani नाड़ी के निकलने के बाद का है, कभी कभी सर्दी लग कर शोथ हो जाने का रोग हो जाता है। फिर यह शोथ इसके Facial Canal के अन्दर विद्यमान भाग में भी प्रसरण कर जाता है। यह शोथ यद्यपि इस नाड़ी के आवरण (Sheath) में होता है। पर आवरण के स्थूल हो जाने से बीच के नाड़ी सूत्र भी दब जाते हैं। उनके दब जाने से उनका पोषण कम हो जाता एवं उसमें क्षीणता (Degeneration) उत्पन्न हो जाती है जिससे आधा चेहरा मर जाता है जिसे Infranuclear Paralysis of the Face. कहते हैं। हो सकता है इस नाड़ी की पोषक धमनियों (Vasa Nervosa) में अवरोध हो जाने से इसमें घात हो जाता है। जिव्हा के अग्रिम दो तिहाई भाग से स्वाद का वहन करने वाली Chordatympani. भी Facial Canal में इस नाड़ी के साथ साथ ही रहती है। इसलिये यदि वह भी दब जाये तो कभी कभी इस रोग के कारण उत्पन्न लकवे के साथ साथ उधर की आधी जीभ में स्वाद नाश का लक्षण भी मिलता है। यह लकवे का रोग २०-२५ वर्ष की आयु में पाया जाता है। इस रोग में शाखाओं में घात नहीं होता।

लक्षण :-

यह लकवा या आर्दित का रोग सहसा आरम्भ होता है। कभी कभी इसके होने से पहले कान के नीचे वेदना होती है। तथा स्पर्शाक्षमता भी होती है जो Parotid ग्रन्थि के खोल के उस भाग में जो इस Foramen में प्रवेश करता है, शोथ (Fibrositis) के हो जाने के कारण होती है। इसमें आधा चेहरा भाव हीन और उसकी मांस पेशियां शक्ति हीन हो जाती है। रोगी को उधर का चेहरा स्तब्ध या अकड़ा हुआ अनुभव होता है। उधर के मस्तक पर बल नहीं पड़ सकते। उधर की आंख की पलकें पूरी तरह बन्द नहीं होतीं। पलकें बन्द करें तो नेत्र गोलक ऊपर और बाहर की ओर मुड़ जाता है। उधर के ओष्ठ भी परस्पर एकत्रित नहीं हो सकते। जिससे पिया हुआ द्रव्य उधर से स्रवित हो जाता है। रोगी का भाषण भी अस्पष्ट हो जाता है। विशेषत: होठ से बोलने वाले अक्षर स्पष्ट नहीं होते। खाया हुआ भोजन उस ओर मुख के अन्दर संचित हो जाता है। रोगी का चेहरा स्वस्थ पक्ष की ओर फिरा हुआ मालूम होता है। चेहरे की उधर की मांस पेशियों में स्वल्प विक्षोभ भी रोम हर्षक हो जाता है। उधर चेहरे के ऊपर के भाग में घात निचले चेहरे की अपेक्षा कम होता है। उधर के चेहरे पर स्वेद भी कम आता है।

यदि रोगी की आयु बड़ी न हो, पलकों को झपकने की कुछ शक्ति हो तो यह रोग २-३ महीनों में अच्छा हो जाता है।

यदि इसमें स्वाद नाश का लक्षण भी हो तो यह कुछ देर में अच्छा होता है। १५ दिन बाद उंघार की Orbicularis Palpebrarum आदि मांस पेशियों में Faradic Response आ जाय तो यह रोग ३-४ मास में अच्छा हो जाता है। प्राय: ८० % रोगियों में यह ठीक हो जाता है।

मुख स्तम्भ (Facial Spasm):- Nucleus से नीचे के इस नाड़ी के प्रदेश में किसी प्रकार का विक्षोभक कारण होने से एक आंख की पलकों तथा पास के प्रदेश में रह रहकर प्रबल स्तम्भ (Twitchings) होने का लक्षण हुवा करता है। इसके कारण रोगी को कोई कष्ट तो नहीं परन्तु बेचैनी तो होती है। किसी मानसिक आवेश के होने पर ये स्तम्भ शीघ्र शीघ्र होने लगते हैं।

कर्ण सम्बन्धी कक्षा विस्फोट :- Herpes of Geniculate Ganglia:-

इस नाड़ी के Genicular Ganglion में कक्षा विस्फोट (Herpes) के Virus का संक्रमण होने पर बहि:कर्ण, कान तथा मुख में कक्षा विस्फोट निकल आते हैं जिससे कान से स्राव निकलता रहता है। मुंह अन्दर से लाल हो जाता तथा कान सूज जाता है। इन विस्फोटों के साथ कान तथा गले में दर्द भी होता है।

चिकित्सा :-

जब तक कान के नीचे दर्द रहे रोगी को गर्म स्थान पर पड़े रहना चाहिये तथा Stylomastoid छिद्र पर गर्म गर्म पोल्टिस (Kaolin) की बांधनी चाहिये या वहां गीला सेक कर गर्म रुई हर समय बान्धी रखना चाहिये। Infrared Irradiation या Short Wave Diathermy के उंघार देने से भी लाभ होता है। प्रतिदिन किसी विरेचन औषधि का प्रयोग करना चाहिये तथा इस नाड़ी के शोथ को दूर करने के लिये Pot.Iod. ३-५ ग्रेन, Sod.Salicyl. १०-२० ग्रेन, Soda Bicarb २० ग्रेन, Syr.Aurant. २० बुन्द, जल १ औंस मिलाकर ऐसी एक मात्रा दिन में तीन बार दे देनी चाहिये। Vitamin B_1 १०० मिलिग्राम की मात्रा में त्वचा द्वारा प्रतिदिन १ मास तक दे देने से भी इस रोग में कुछ लाभ होता है। Nicotinic Acid १०० मिलि० दिन में १-२ बार देना चाहिये। Cortisone (Cortistab, Cortisyl, Cortelan) के २५ मिलि० मात्रा में देने से इस रोग में विशेष लाभ प्रतीत होता है। Prednisone २० मिलि० पहले दिन ही दे दिया जाय तो विशेष लाभ दिखाता है फिर थोडी मात्रा में इसे एक सप्ताह तक देना चाहिये। रोग प्रारम्भ होने के एक सप्ताह बाद किसी गर्म तेल या लिनिमेन्ट के द्वारा उंघार के चेहरे पर ५-१० मिनट के लिये मालिश आरम्भ कर देनी चाहिये। दूसरी तरफ के हाथ के अंगूठे से गाल को अन्दर से सहारा देकर तर्जनी से बाहर ५ मिनट के लिये मालिश करनी चाहिये

इस प्रकार दिन में तीन बार करना चाहिये । उधार के नेत्र की रक्षा के लिये काली ऐनक तथा ज़िंक बोरिक ड्राप का प्रयोग करना चाहिये । मुख स्तम्भ के लिये शामक (Sedative) औषधि उपयोगी हो सकती है । अथवा १४-१५ दिन बाद उधार की मांस पेशियों को मृदु Faradic Current दो दो दिन के अन्तर से देकर उत्तेजित करना चाहिये ताकि उनमें Atrophy या क्षीणता न आ जाय । विटामिन बी12 के 2000 मा. ग्रा. मात्रा में प्रतिदिन देने से प्रभावित मांसपेशियों में शक्ति शीघ्र आ जाती है ऐसा कुछ डाक्टरों का अनुभव है

आयुर्वेद में अर्दित रोग :-

मस्तिष्क सप्तम नाड़ी में बड़ी आयु में तो वायु का और छोटी आयु में कफ और वायु का प्रकोप होने से (अर्थात् इस नाड़ी में Rheumatic शोथ तथा कुछ Degenerationके होने से) यह रोग होता है ।

इस रोग में अलसी तथा तिलों को पीसकर उस लुगदी में लवण तथा सरसों तथा तिल का तेल उचित मात्रा में मिलाकर बनाया हुआ लेप गर्म गर्म कानों के नीचे के प्रदेश पर बांधा दिया जाता है तथा एक सप्ताह बाद फिर माष तेल या नारायण तेल या सैन्धवादि तेल की मालिश आरम्भ कर दी जाती है ।

वायु तथा कफ दोषों की शान्ति के लिये दशमूल, भलावा, गिलोय, हरड़, पुनर्वा, देवदारु, प्रत्येक समान समान मिलाकर बनाये क्वाथ द्रव्य को दो तोला मात्रा में लेकर ½ सेर जल में पका २-३ औंस शेष रहने पर दिन में एक बार पिलाया जाता है । माष, कौंच बीज, रास्ना, बला, अश्वगन्धा, गन्धा तृण, एरण्ड मूल के क्वाथ में कुछ नमक मिला नाक द्वारा इसे कुछ दिन पिलाते रहने से भी लाभ होता है । योग राज गुग्गुलु की दो दो गोली दिन में दो बार दी जाती हैं । लशुन का मक्खन के साथ सेवन कराया जाता है । उड़द की बड़ीयों के रसे के साथ रोटी खाने को दी जाती है । षड्बिन्दु तेल या घृत का या अणु तेल, माष तेल आदि का नस्य दिन में दो बार दिया जाता है। मल्ल सिन्दूर तथा महागन्धक १-१ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ दिन में दो बार देने से भी इस रोग में आराम प्रतीत होता है ।

अन्त वात शूल :- Trigeminal Neuralgia, Tic.Douloureux या Epileptiform Neuralgia:-

५० वर्ष या इसके लगभग की आयु में मुख पर, मस्तिष्क पन्चम नाड़ी (Trigeminal) के प्रदेश पर, वेगों में होने वाला यह एक तीव्र शूल का रोग है । जिसे अन्तवात शूल कहते हैं ।

मस्तिष्क पंचम नाड़ी की नीचे की तरफ जाने

वाली (Peripheral) तीन संज्ञावाही शाखाओंमेंसे प्रथम नेत्र गामिनि (Ophthalmic) नाड़ी (१) Lacrimal ग्रन्थि, Conjuctiva कार्निया, नेत्र के अन्दर के कोये, (२) कपालाग्र भाग, मस्तक, ऊपर की पलक, नासा मूल, नासा प्रान्त भाग, नासा की ऊपर ऊपर की श्लेष्म कला से संज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। (२) द्वितीय ऊर्ध्व हनु शाखा (Maxillary) ऊपर के दांत, निचली पलक, नासा पार्श्व और ऊर्ध्वौष्ठ के बीच की त्वचा, कठोर तथा मृदु तालु, गले के ऊर्ध्व भाग Tonsil, Uvula और नासिका की निम्न श्लेष्मकला से संज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। (३) तृतीय अधोहनु शाखा (Mandibular) ~~संज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है~~। निम्नोष्ठ, ठोड़ी, गाल, कनपटी, कान, कर्ण छिद्र के वाह्य भाग की त्वचा, Parotid ग्रन्थि, मुख की निम्न श्लेष्म कला, गाल की श्लेष्मकला लाला ग्रन्थियाँ, निचले दांतों, तथा Lingual नाड़ी द्वारा जिव्हा के अग्रिम दो तिहाई भाग से संज्ञा का वहन मस्तिष्क तक करती है। तथा इसके चेष्टा वाही सूत्र चबाने वाली पेशियाँ Masseter, Temporal, बाहर तथा अन्दर की Pterygoids, Mylohyoid, Digastric (Ant. Belly) Tensor tympani और Tensor Veli Palatini को चेष्टा देते हैं।

इनमें से किसी शाखा के (a) प्रायः maxillary या mandibular चेहरे पर के प्रदेश में शूल हो सकता है। यह शूल चेहरे के एक ओर ही होता है + दोनों ओर एक साथ नहीं होता। अर्थात् कभी तो आंख के ऊपर भ्रू में यह शूल होता है, (Supra-orbital Foramen Neuralgia) कभी आंख के नीचे गाल पर होता है। (Infraorbital Foramen Neuralgia) या कभी कभी ठोड़ी में यह शूल होता है (Mental Foramen में) यह शूल सहसा विद्युद्गति के सदृश आरम्भ होता है और इतना तीक्ष्ण होता है कि रोगी को तप्तशूल या नश्तर चुभता लगता है। रोगी एक दम अवाक् और निश्चेष्ट होकर पड़ जाता है। थोड़ा बोलने या हिलने से उसे इसके फिर वेग हो जाने का भय रहता है। यह शूल का वेग कुछ सेकन्ड ही रहता है। और कुछ कुछ मिनटों के अन्तर से फिर उसी प्रकार का शूल का वेग उठता है + और घन्टों तक ऐसा हो सकता है यह शूल का वेग रोगी को कार्य करते समय में होता है + आराम करते समय कभी नहीं उठता। वेग के समय उधार के चेहरे पर स्तब्धता (Spasm) का लक्षण भी होता है। उधार की आंख, नाक तथा मुख से स्राव भी कभी कभी होता है। रोग के चिरस्थायी होने से इसका शरीर तथा मन पर निर्बलता जनक प्रभाव होता है।

कारण :-

पंचम मस्तिष्क नाड़ी के पोषण में न्यूनता के हो जाने से अर्थात् पोषक रक्तवाहिनियों में संकोच या स्तम्भ या अवरोध के

होने से यह रोग होता प्रतीत होता है । इसके बढ़ी वायु में होने से भी पता लगता है कि धमनी काठिन्य Arteriosclerosis भी इस का कारण है । क्योंकि ज्वर आदि से जब कोई निर्बल हो जाता है या जब मुख पर सहसा शीत वायु या शीत जल का प्रबल स्पर्श होता है तब इस शूल का वेग आरम्भ होता है अर्थात् शीत के लगने से इस नाड़ी को रक्त देने वाली रक्तवाहिनियों में संकोच (Spasm) होकर जब इसे रक्त कम मिलता है तब इसमें शूल आरम्भ होता है। मुख धोने, कुल्ला करने, हजामत बनाने या खाने के स्वल्प विक्षोभ से भी यह वेग आरम्भ हो जाता है ।

Supraorbital Neuralgia:-या अर्ध मस्तक शूल या सूर्यावर्त शूल :-

पंचम मस्तिष्क नाड़ी की Supra Orbital शाखा में कभी कभी दर्द होता है पर वह इतना तीव्र नहीं होता । सम्भवत: Frontal Sinus में शोथ होकर उसके उपद्रव रूप में वह होता है । इसकी Duramotor को जाने वाली शाखा में रोग होने से शिर दर्द भी होता है ।

नेत्र गत कक्षा विस्फोट Facial या Corneal Herpes:-

इस नाड़ी के Ganglion में कक्षा विस्फोट के Virus का दुष्प्रभाव हो के इसकी प्रथम शाखा से सम्बन्धित त्वचा या कार्निआ पर भी विस्फोट निकल आते हैं । इस नाड़ी की दूसरी शाखा पर दुष्प्रभाव हो तो तालु पर और तीसरी शाखा पर उसका प्रभाव हो तो जिव्हा मुख की नीचे की श्लेष्म कला, गाल के अन्दर और ठोड़ी पर कक्षा विस्फोट निकल आते हैं ।

चिकित्सा :-

वेदना युक्त प्रदेश पर गर्म सिकाई करने से अर्थात् गर्म रबर की बोतल रखने से आराम प्रतीत होता है । इस रोग का रोगी तीन चार सप्ताह पूर्ण विश्राम कर ले और Gower's Mixture दिन में तीन बार लेता रहे तथा रात को Nembutal १½ ग्रेन ले तो भी फिर उसे दर्द नहीं उठता । शरीर की शक्ति को बढ़ाने के लिये उसे Vitamin B_{12} के एक हजार माइक्रोग्राम मात्रा में, विटामिन बी$_1$ (५०-१०० मिलि०) के साथ १०-१४ दिन इंजेक्शन दे देने चाहियें । इसके बाद साप्ताहिक २ इंजेक्शन कुछ महीनों तक देने से इस रोग के होने का भय शान्त हो जाता है । Dilantin (Epanutin) .१ ग्राम के दिन में तीन बार लेते रहने से भी लाभ रहता है । Nicotinic Acid (Vasodilator) के १०० मिलि० मात्रा में भोजन से पहले रात को एक बार प्रतिदिन दे देने से फिर इस शूल के होने की आशंका नहीं रहती । Tolazoline (Priscol) २५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार लेने

से इसके आक्रमण को रोका जा सकता है । Posterior Sensory Root Resection का शल्य कर्म इसका अन्तिम इलाज है ।

आयुर्वेद में अनन्त वात शूल :-

सुश्रुत ने मस्तिष्क पञ्चम नाड़ी के क्षेत्र जैसे भ्रू, शंख, गण्ड, हनु आदि प्रदेशों में होने वाले तीव्र शूल को अनन्तवात कहा है। इसे विशेषत: तो वायु तथा सामान्यत: पित्त कफ दोषों की वृद्धि के कारण भी उत्पन्न होने वाला शूल कहा है ।

इसके लिये पहले पित्त कफ दोषों की शामक और फिर वायु शामक चिकित्सा होनी चाहिये । अर्थात् एरण्ड तेल या अन्य औषधियों द्वारा मृदु रेचन देने तथा कपाल की शिरा में से कुछ रक्त निकालने के बाद रोगी को बादाम पाक, घृत, जांगल मांस, दूध आदि द्वारा पोषण चिकित्सा करनी चाहिये । दशमूल क्वाथ, कल्क तथा दूध से बने तेल की सिर पर नित्य मालिश करनी चाहिये । षड्बिन्दु तैल या घृत का नस्य लेते रहना चाहिये । दूध में घृत मिला उसे नाक से पीना चाहिये ।

(सु०।उत्तर २५।२६ अ०)

शिरोभ्रम (Vertigo) तथा कर्णनाद :- (Tinnitus)

मस्तिष्क अष्टम नाड़ी या श्रवणनाड़ी (Auditory Nerve) के कुछ सूत्र अन्त:कर्ण से Vestibule में स्थित Scarpa के या Vestibular Ganglion से आरम्भ होकर नीचे तो शब्द के ग्रहण स्थान Semicircular Canal,Utricle और Saccule में समाप्त होते ऊपर Pons में स्थित एक तो Medial दूसरे Lateral Vestibular (Deiter's) न्युक्लियस के सेलों में समाप्त हो जाते हैं । Semicircular Canals से सम्बन्धित सूत्र शारीरिक चेष्टाओं की प्रतीति का ऊपर मस्तिष्क की ओर वहन करते हैं । Utricle और Saccule (Otolith organs) से सम्बन्धित सूत्र शारीरिक स्थिति की प्रतीति का ऊपर की ओर वहन करते Lateral Vestibular Nucleus में से फिर सूत्र Medial Longitudinal Bundle(Fasciculus) में ऊपर की तरफ जाते हैं जिनसे यह Nucleus ऊपर तीसरी चौथी तथा छटी Oculomotor नाड़ियों के Nuclei के साथ भी सम्बन्धित रहता है । जिससे शरीर के सन्तुलन का सम्बन्ध नेत्र की चेष्टाओं के साथ कायम रहता है । इसी Bundle के द्वारा इसका सम्बन्ध नीचे ११वीं मस्तिष्क नाड़ी (Spinal Accessory) के न्युक्लियस के साथ भी रहता है जिससे शिर की गतियाँ तथा शरीर के सन्तुलन का परस्पर सम्बन्ध कायम रहता है । इन Vestibular Nuclei में Cerebellum से भी सूत्र आते (Afferent) तथा इनमें से सूत्र (Efferent) Cerebellum में निचले Pedun-

cle. से जाते हैं । Lateral Vestibular Nu. में से चेष्टा वाही सूत्र Vestibulospinal Tract के रूप में सुषुम्ना काण्ड में नीचे उतरकर (Ante.Horns) में समाप्त होते हैं जिससे हाथ पांव की मांस पेशियों का शरीर के सन्तुलन के साथ सम्बन्ध कायम रहता है । इस प्रकार श्रवण नाड़ी का यह Vestibular System शरीर की स्थिति (Equilibrium) को कायम रखने में सहायक होता है । शरीर की स्थिति संज्ञा को ग्रहण करने वाली (Proprioceptor) इस इन्द्रिय का सम्बन्ध विशेषत: नेत्रों के साथ तथा ग्रीवा, जांघ आदि की मांस पेशियों के साथ है । यह बात ऊपर के वर्णन से स्पष्ट ही है ।

(१) इस नाड़ी को अन्त:कर्ण Brain Stem. या ऊपर मस्तिष्क में रक्त कम मात्रा में मिले जैसे कि मस्तिष्क धमनी काठिन्य या रक्तभार वृद्धि में होता है या हृदय की सहसा उत्पन्न हुई दुर्बलता अथवा रक्तभार की न्यूनता में होता या तीव्र पाण्डु रोग में होता है ।

(२) या इस नाड़ी पर किसी वाह्य या आभ्यन्तर विष विशेषत: आंतों में से आई किसी विष का दुष्प्रभाव हो Labyrith में कोई तीव्र जीवाणु संक्रमण (Infection) जनित शोथ हो (Labyrinthitis हो)

(३) या जुकाम के कारण Eustachian Tube तथा मध्यकर्ण में शोथ (Otitis Media) हो ।

(४) या अन्त:कर्ण में न्यूनाधिक क्षीणता (Corti's Organ में Degen.) हो तथा Membrane से बने Labyrinth में Endolymph बहुत भर गया हो (Hydrops) एवं वहां रक्तवाहिनियां दब गई हों या किसी शारीरिक विष द्रव्य के प्रति असहन शीलता (Allergy) के कारण वहां की रक्तवाहिनियों में शिथिलता (Dilatation) या स्तम्भ (Spasm) हो गया हो तो रोगी, स्थिति कायम नहीं रख सकता एवं चक्कर खाकर गिर जाता या गिरने लगता है । इस प्रकार शिरोभ्रम के वेग समय समय पर होते रहें तथा कभी कभी इसके साथ कर्णघोष (Tinnitus) और वधिरता का लक्षण भी हो तो इसे Meniere's Disease कहते हैं । [illegible]

चिकित्सा :-

मध्य कर्ण में शोथ हो तो उसे हटायें ।

Endolymph. के अधिक भर जाने से यह रोग हो तो लवण बन्द कर दें तथा जल की मात्रा कम कर दें या Hydrochlorethiazide १०० मिलि प्रात: एक २ दिन छोड़ के दें । Pot.Chlor. भी दें । रक्त के कम मात्रा में मिलने से यह रोग हो तो Nicotinic Acid. (५०) १०० मिलिग्राम मात्रा में

३-४ बार दिन में देना चाहिये । Pyridoxine Hyd. २५ मिलिग्राम मात्रा में भी तीन बार देना लाभदायक होता है । Allergy के कारण यह लक्षण होता हो तो किसी Antihystamine (Promethazine) औषधि का प्रयोग करना चाहिये । जैसे Diphenhydramine Hydrochlor.(Bendaryl) Dimenhydrinate (Dramamine) ५०,१०० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार दिये जा सकते हैं । Phenobarbitone के [redacted] १५-६० मिलिग्राम मात्रा में या 1 or 2 tab soluble aspirin (sol prin) दि 2-3 बार देने से Quinine Sulphate के ¼ ग्रे० मात्रा में दिन में तीन बार देने से भी भ्रम शांत होता है ।

श्रवण नाड़ी के दूसरे संज्ञावाही सूत्र जो अंत: कर्ण के Spiral Ganglion से प्रारम्भ होकर नीचे शब्द ग्रहण स्थान Organ of Corti के Hair Cells में, ऊपर Pons के एक Dorsal दूसरे Ventral Cochlear Nuclei में समाप्त होते हैं तथा शब्द ज्ञान का वहन करते हैं + Cochlear Nerve कहते हैं । Pons के इन दोनों Nuclei में से इसके दूसरे सूत्र आरम्भ होकर मध्य रेखा को क्रास करके एक Dorsal (Striae Acusticae) तथा दूसरे Ventral (Corpus Trapezoidum) दो सूत्र समूहों में ऊपर जाते हैं । इन दोनों के मिल जाने से बने हुए चढ़ते हुऐ सूत्र समूह को Lateral Lemniscus कहते हैं । Cochlear Nuclei में से आरम्भ हुए कुछ सूत्र बिना क्रास किये उसी ओर के Lemniscus में ऊपर चढ़ते जाते हैं । Mid Brain में पहुंच कर कुछ सूत्र Inferior Corpus Quadrigeminum में कुछ Medial Geniculate Body में जिन्हें Lower Auditory Centres कहते हैं समाप्त हो जाते हैं । ये दोनों तरफ के Centres आपस में जोड़ने वाले Commissural) सूत्रों द्वारा सम्बन्धित हैं । कुछ एक सूत्र Medial Longitudinal Bundle में चले जाते हैं ताकि इस नाड़ी का सम्बन्ध नेत्र की Oculomotor नाड़ियों के साथ कायम हो जाय । अब इन श्रवण सम्बन्धी निम्न केन्द्रों से नये सूत्र आरम्भ होके Internal Capsule के पिछले भाग में से होते हुए Superior Temporal Gyrus (Higher Auditory Centre) में समाप्त होते हैं । जैसे किसी संज्ञावाही नाड़ी की उत्तेजना से उस संज्ञा की प्रतीति तीव्र हो जाती है वैसे ही श्रवण नाड़ी (Auditory N.) की विदाहशीलता या उत्तेजना (Paraesthesia) से रोगी को घोष या नाद की प्रतीति होती है । (Watkin Thomus १९५३) इस नाड़ी के संज्ञावाही सूत्रों की उत्तेजना से कर्णघोष का लक्षण होता है तथा इन संज्ञा सूत्रों की उत्तेजना चेष्टा वाही या Efferent सिम्पैथेटिक सूत्रों के द्वारा होती प्रतीत होती है । ~~xxxxxxxx~~ (Baillie १९५६) अर्थात् प्रधानत: इस नाड़ी पर किसी प्रकार का विदाहक प्रभाव हो तो कर्णनाद

(Tinnitus) का रोग होता है। इस नाड़ी को रक्त कम मिले अर्थात् धामनी काठिन्य रोग या रक्त भार वृद्धि का रोग हो या जुकाम के कारण Eustachian Tube या मध्य कर्ण में शोथ हो तो यह नाड़ी विक्षुब्ध हो जाती है। शरीर का स्वास्थ्य गिरा हुआ हो अर्थात् सामान्य विक्षोभ शीलता बढ़ी हुई हो तो भी यह लक्षण हो सकता है। Phenobarbitone (Gardinal,Luminal) के $\frac{1}{2}$,$\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा में तीन बार प्रतिदिन लेने या किसी चित्त शामक औषधि के लेने से या आराम करने से तथा स्वास्थ्य के सुधार जाने से यह लक्षण शान्त हो जाता है। Pot.Iod. तथा Pot.Brom. का प्रयोग भी किया जाता है। Nicotinic Acid से भी इस रोग में कुछ शान्ति मिलती है (Atkinson १९५४) Prostigmine भी Vasodilator प्रभाव के कारण कभी कभी दिया जाता रहा है। कर्णघोष का ध्यान या चिन्तानकरने से भी इस का कष्ट कम हो जाता है।

वाधिर्य :- Deafness

यह लक्षण एक तो श्रवण नाड़ी के रोग के कारण (Perceptive Defect) से होता है। अन्त:कर्ण में विद्यमान इस नाड़ी के, मध्य कर्ण या गले से बार शोथ के चिरकाल तक रहने और उससे उत्पन्न क्षीणता (Sclerosis) से इसमें कुछ बधिरता आ जाती है। फिरंग विष, तमाखु तथा कुछ एक तीव्र ज्वरों की विषों से भी इस नाड़ी में क्षीणता उत्पन्न हो सकती है। किसी Allergic विष से भी यह रोग हो सकता है। इस अवस्था में घड़ी की टिकटिक बहुत कम या नहीं सुनती है।

दूसरा शब्द मार्ग में किसी प्रकार का अवरोध होने (Conductive Defect) से जैसे पर्दे (Tympanic Membrane) में कान की छोटी छोटी अस्थियों (Ossicles) में किसी प्रकार का रोग होने से शब्द के मार्ग में रोध होकर बधिरता हो सकती है। इस अवस्था में घड़ी को Mostoid Process पर लगा के सुनने पर टिक टिक की आवाज साफ सुनी जा सकती है।
Prostigmin से इस रोग में कुछ लाभ हो सकता है

आयुर्वेद में कर्णनाद, वाधिर्य तथा भ्रम :-

सुश्रुत (उत्तर,२०) ने कहा है कि शरीर में क्षीणता के हो जाने या अति श्रम करने से यदि शब्द वहा नाड़ी में वायु का प्रकोप हो जाय अर्थात् उसकी प्राण शक्ति कम हो जाय तो कर्णनाद का रोग हो जाता है। उसमें वायु का या कफानुगत वायु का प्रकोप हो तो वाधिर्य का रोग होता है अर्थात् वह दो प्रकार का है। इसके लिये उसने सरसों के तैल डालने या अपामार्ग क्षार के जल में बनाये हुऐ तिल तैल के डालने या दशमूल

P.S. Nicolaier (१८८४) ने पहले पहल मट्टी का इंजेक्शन देके पशुओं में इस रोग को उत्पन्न होते देखा। Kitasato (१८८९) ने पहले इसके जीवाणु Clostridium tetani का पता लगा लिया उसी ने तथा Von Behring ने इसके antiserum का निर्माण किया। Ramon (१९२५) ने tetanus toxoid को बनाकर उससे इसके लिये active immunity उत्पन्न कर दी।

कषाय में साधित तैल के डालने एवं माष तैल के डालने, विल्व फल के कल्क तथा अजा दुग्ध से साधित तैल के डालने का विधान किया है ।

श्रवण नाड़ी में पित्त सहित वायु की वृद्धि होने अर्थात् अन्त:कर्ण Labyrinth में पैत्तिक शोथ होने तथा इसका पोषण कम हो जाने से भ्रम रोग भी हो सकता है । शरीर में हुई पित्त की वृद्धि का प्रभाव इस नाड़ी पर होकर वात पित्तज भ्रम भी हो सकता है । जैसा कि तीव्र ज्वरों में होता है(Toxic Vertigo) शरीर में उत्पन्न किसी आम द्रव्य का दुष्प्रभाव इस नाड़ी पर होकर वात कफज भ्रम भी होता है ।(Allergic Vertigo) इस नाड़ी में रक्त की कम मात्रा पहुंचने से भ्रम हो तो निम्बु और शहद से मिश्रित जल दिन में १-१ पाव करके ३ बार लेना चाहिये। शरीर के पोषण को बढ़ाने के लिये किसी बलवर्धक योग का प्रयोग करना चाहिये । दूध के साथ बला वीज चूर्ण लेना चाहिये या दूध के साथ मुनक्कों का सेवन करना चाहिये या शतावरी से फकाया हुआ दूध लेना चाहिये । ब्राह्मी के घृत, आरिष्ट, चूर्ण आदि के प्रयोग तथा सर्प गन्धा के चूर्ण के प्रयोग तथा मुक्ता या मुक्ताशुक्ति के प्रयोग करने से भी शिरोभ्रम शान्त होता है । पित्त प्रधान भ्रम हो तो शीत गुण औषधि जहर मोहरा, वंशलोचन, छोटी इलायची के चूर्ण को २-४ रत्ती मात्रा में आंवले के मुरब्बे के साथ लेना चाहिये । त्रिफला को दूध से लेना चाहिये । कफाधिक भ्रम हो तो नमक, घृत आदि बन्द करके रोगी को रुक्षाहार पर रखना चाहिये । गर्म जल अधिक देना चाहिये ।

स्तम्भ रोग :-Tetanus

मट्टी ~~[illegible]~~ में रहने वाला एक कृमि Tetanus Bacillus Gram Positive दण्डाकृति होता है । उसके बीज(Spores) मुट्ठ वाले दण्डाकृति (Drum Stick) होते हैं । कभी कभी हाथ पैर में कील आदि के चुभ जाने से उत्पन्न क्षत के द्वारा या प्रसव जनित क्षत या कान में से पूय स्राव होता हो तो यह Clostridium Tetani नामक जीवाणु जो गाय, घोड़े, भेड़ आदि की आंतों में से बाहर ~~[illegible]~~ मट्टी में आकर रहता है, हमारे शरीर में प्रवेश कर जाता है तथा वहां क्षत प्रदेश के मृत हुए अवयव पर रोहण करता रहता है तथा एक विष(Exotoxin) या Tetanospasmin. को जिसे नाड़ी किण होने से Neurotoxin कहते हैं तथा जो इतना विषैला होता है कि इसकी .0005 मिलि० मात्रा से चूहे की मृत्यु हो जाती है उत्पन्न करता है जो चेष्टावाह नाड़ी सूत्रों के द्वारा ऊपर चढ़ता चढ़ता सुषुम्ना काण्ड तथा मस्तिष्क के निम्न भाग तक प्रसरण कर जाता है । जीवाणु ग्रस्त भाग से सम्बन्धित Ventral Horns तक

P.S. याज्वाहो

इस विष के पहुंचने पर क्रमशः स्तम्भ का लक्षण प्रकट होता है परिचम मूल में विद्यमान Ganglia उधार से इसे ऊपर नहीं जाने देते । बहुधा चोट लगने के लगभग दो सप्ताह के अन्दर अन्दर रोगी को अपने जबड़े या पश्चिम ग्रीवा की मांस पेशियाँ (Mosseter आदि) में कुछ स्तम्भ सा प्रतीत होने लगता है । यद्यपि यह रोग चोट लगने के १ मास के लगभग समय तक हो सकता है । इस विष के सुषुम्ना काण्ड पर फैलते हुऐ दुष्प्रभाव से धीरे धीरे शरीर की सभी voluntary मांस पेशियां विक्षोभ शील हो जाती हैं जिससे स्वल्प कारण से उनमें स्तम्भ का लक्षण उत्पन्न होता है । पहले मुख का खोलना कठिन हो जाता है । मुख और ग्रीवा में स्तम्भ के बाद धड़ और फिर शाखाओं में भी स्तम्भ हो सकता है । गले में, कण्ठ में तथा श्वास मांस पेशियों में भी स्तम्भ हो सकता है । पेट काष्ट की तरह कठोर हो जाता है। यह रोग जब प्रबल रुप में होता है विशेषत: जब चेहरे या कान में विद्यमान व्रण से इस जीवाणु का प्रवेश हुआ हो तब बड़ा भयंकर और घातक होता है। कंठ में स्तम्भ होकर मृत्यु हो जाती है । इस रोग में स्तम्भ का एक प्रधान लक्षण होता है जो रोगी को छूने या हिलाने डुलाने से और अधिक प्रबल रुप लें लेता है । शोर गुल या सहसा प्रकाश के पड़ने से भी हो उठता है । तापमान, श्वासगति, नाड़ीगति तथा रोगी के होश में कोई विशेष विकृति नहीं होती । स्तम्भ इतना प्रबल हो सकता है कि रोगी पीठ पर पीछे की ओर कमान की तरह अत्यधिक मुड़ जाता है (opisthotonos) या आगे की ओर (Emprosthotonus) या बाजू की ओर (Pleurosthotonus) अत्यधिक मुड़ जाता है । ~~(Opisthotonus)~~ ~~तब~~ तापमान भी कुछ ऊंचा होता है । निगरण में भी कठिनता होती है । किसी दात लगने के बाद १०-१५ दिन के अन्दर अन्दर ग्रीवा मुख आदि में कुछ स्तम्भ प्रतीत होने लगे तो इस रोग की आशंका कर लेनी चाहिये । यह एक घातक रोग है । मृत्यु ३-४ दिन में हो सकती है । जो गले के घुट जाने या Pneumonia से होती है । परिपाक काल (Incubation Period) तथा प्रथम हनुस्तम्भ की प्रतीति और प्रथम शारीर व्यापी स्तम्भ के बीच का समय (Period of onset) क्रमश: ७ और २ दिन से लम्बा हो तो रोग को सुख साध्य समझना चाहिये । इससे कम हो तो कष्ट साध्य समझना चाहिये । शरीर में वृक्क, हृदय, पुफुस सम्बन्धी कोई रोग हो, तो भी यह कष्ट साध्य होता है ।

प्रतिषेधक चिकित्सा :-

चोट के बाद स्तम्भ की प्रतीति की अवस्था में इस रोग के प्रतिरोध के लिये रोगी की मांस द्वारा Tetanus Antitoxin ३००० Units की मात्रा में एक एक दिन छोड कर तीन बार दे देना चाहिये

इसके बाद अर्थात् इसका प्रभाव हो जाने के बाद व्रण को हाईड्रोजन से साफ करके इसमें २० में १ ताकत के कार्बोलिक लोशन की भीगी गाज़ भर देनी चाहिये तथा शीघ्र शीघ्र ४-६ घन्टे के अन्तर से बदल देनी चाहिये । व्रण के अन्दर बढ़ते हुऐ बेसिल्लाई तथा स्पोर्स पर इस Antitoxin का कोई प्रभाव नहीं होता । उनसे उत्पन्न विष - Toxin - पर ही इसका विनाशक प्रभाव होता है । उस विष पर भी जब वह नाड़ी सेलों (Nerve Cells) में प्रविष्ट हो जाता है फिर इसका कोई प्रभाव नहीं होता । इस रोग के लिये पहले से ही प्रतिशक्ति (Active Immunity) उत्पन्न करने के लिये Tetanus का हलका किया हुआ विष Tetanus Toxoid $\frac{1}{2}$,१ मिलिलिटर मात्रा में त्वचा के नीचे डाल दिया जाता है । इसके १$\frac{1}{2}$ मासबाद इसी को फिर १ मिलिलिटर मात्रा में इसी प्रकार दे दिया जाता है । ... triple vaccination (Diphtheria-Pertussis-Tetanus) ...

चिकित्सा :-

अतः रोगी में लक्षण प्रकट होते ही और विष को नाड़ी मण्डल में जाने से रोकने के लिये इसी औषधि (Antitoxin) को १ लाख या २ लाख यूनिट की मात्रा में शिरा द्वारा दे देना चाहिये । Cole तथा Spooner (१९३५) ने बताया कि २ लाख यूनिट Antitoxin देने के ७ दिन बाद भी ५० हजार यूनिट उन्होंने रक्त में इसके पाये अतः एक सप्ताह बाद इसके ५० हजार यूनिट मांस द्वारा दे देना भी ठीक है । अथवा इसके ६० हजार यूनिट शिरा द्वारा धीरे धीरे तथा ४० हजार यूनिट साथ ही मांस द्वारा दे देवें । (Allergy ... adrenaline (1000-1) ...) इससे पहले Allergy निवारक किसी औषधि को मांस द्वारा दे देना उचित है अथवा १ पा० ग्लूकोज़ सेलाइन में A.T.S. के ६० हजार यूनिट, Antistin २ सी०सी०, Mag.Sulph. २५ % सोल्यूशन ४-८ सी०सी० Myanesin या Tolseral १० % १० सी०सी० Atropine Sulph $\frac{1}{100}$ ग्रे० Cal.Gluco. १० % १० सी०सी० मिला के शिरा द्वारा बुन्द बुन्द करके देदें । इसे मांस द्वारा ही देना हो तो इससे १५ मिनट पहले Antistin २ सी०सी०, Adrenaline $\frac{1}{2}$ सी०सी०, Atropine $\frac{1}{100}$ ग्रैन मांस द्वारा दे देना चाहिये । A.T.S. से केवल रक्त में विद्यमान विष नष्ट हो सकता है, नाड़ियों में व्याप्त हुआ विष नष्ट नहीं होता । अतः रोग आरम्भ हुए नौ-दस दिन हो गये हों तो इससे लाभ नहीं हो सकता । रोग के आरम्भ होते ही १$\frac{1}{2}$ से ५ वर्ष में ३०, ६-१० वर्ष की आयु में ४०, ११-१३ वर्ष की आयु में ५०, २० वर्ष तक ७० हजार यूनिट की मात्रा में मांस द्वारा इसका प्रयोग करना चाहिये । ११-१२ की आयु के बाद इसका आधे से ज्यादा भाग शिरा द्वारा, शेष मांस द्वारा देना ठीक है । २० वर्ष के ऊपर ६० हजार शिरा द्वारा, ४० हजार मांस द्वारा देना ठीक है । स्तम्भ

P.S. या Siquil 10–20 मि.लि. मात्रा में
६-६ घं. बाद शिरा द्वारा दें। Sod. Phenobarbitone
के साथ किसी Relaxant के जैसे mephenesin के देने
से इस योग में विशेष लाभ रहता है।

P.S. प्रतिदिन ८ दिन देवें।

शान्ति के लिये Seconal ३-४ ग्रेन को ३-४ घन्टे बाद देना या Sodium Phenobarbitone ३ ग्रेन की मात्रा में प्रति ६ घन्टे पर मांस द्वारा दे देना उचित है। Basal Anaesthetic, Avertin Fluid (Bayer) या Bromethal ६ सी०सी० नार्मल सैलाइन २०० सी०सी० मिला के गुदा में रोकने से या Myanesin .५ सी०सी० (१-२%) के धीरे धीरे शिरा द्वारा देने या ५ सी०सी० १० प्र०श० सोल्यूशन के मांस द्वारा देने से भी स्तंभ शान्त होता है। कभी Paraldehyde ४-६ सी०सी० के मांस द्वारा तथा कभी Largactil के २५ मिलि० मात्रा में शिरा द्वारा या ५० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा देने से स्तम्भ शान्त हो जाता है। ६-६ घन्टे बाद इन्हें दुहराया जा सकता है। कुछ लोग Tetanus Toxoid १ सी०सी० को त्वचा द्वारा भी दे देते हैं। Proc.Penicillin के या Streptomycin ५-१ ग्राम के देने से व्रण के रोहण में तथा Pneumonia की रोकथाम में सहायता मिलती है। अथवा Ilotycin (Erythromycin) १ गोली दिन में ६ बार इसी प्रयोजन से दी जाती है। रोग प्रबल हो तो रोगी की शक्ति वृद्धि तथा A.T.S. के प्रति Allergy की रोक थाम के लिये रोगी को .५-१० मिलि० Prednisolone ३ बार दे देना चाहिये। रोगी को १५०० कैलोरीज़ का भोजन ग्लूकोज़, फल रस, दूध, सूप आदि के रूप में प्रतिदिन मिलना चाहिये या Intravenous Drip के द्वारा ग्लूकोज़ देते रहना चाहिये। Broncho Pneumonia के लिये आक्सिजन, मूत्राघात के लिये कैथिटर का प्रयोग करना चाहिये। पेडू पर गर्म बोतल रखें या मूत्राशय मांस को उत्तेजित करने के लिये Carbachol (Chloryl-Doryl-Moryl) का जो Chalenergic या Parasympathetic नाड़ियों का उत्तेजक है $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{2}$ मिलि० मात्रा में त्वचा द्वारा या १-४ मिलि० मात्रा में मुख से प्रयोग करना चाहिये।

खल्ली रोग, कर-पाद स्तम्भ, Tetany, Carpopedalspasm अथवा Hypocalcemia:-

हमारे रक्त के Serum की १०० सी०सी० मात्रा में १० मिलि० के लगभग कैल्सियम होता है जो भोजन से हमें प्रतिदिन $\frac{1}{2}$ ग्राम के लगभग मिलता है। इसके कारण हमारी वात नाड़ियों और मांस पेशियों को बल मिलता है एवं उनमें संकोच की क्रिया ठीक ठीक होती है।

जब भोजन में कैल्सियम कम हो जाय या उसमें विटामिन "डी" की कमी से या Pancreas के रस के कम निकलने से उसका विलयन कम हो अथवा चिरातिसार, वतिवमन या अस्थि शोथ (Rickets) के कारण बालक के रक्त में कैल्सियम घट जाय (६ मिलि० प्र०श० से कम हो जाय) तब उसकी मांस पेशियों और संज्ञावाही वात नाड़ियों में क्षमता या

विक्षोभशीलता बढ़ जाती है। शरीर में या सेलों के अन्दर Potassium की न्यूनता के हो जाने से भी नाड़ी मण्डल विक्षोभशील हो जाता है। इसकी न्यूनता Supra Renal ग्रन्थि के Certex के Aldosterone की अधिकता (Hyperal Dosteronism) के कारण होती है क्योंकि उसके कारण शरीर में Sodium तथा जल अधिक रुक जाते तथा पौटासियम अधिक निकल जाता है। जिससे विशेषत: चेष्टावाही हाथ तथा बाहु की मांस पेशियों में प्रबल स्तम्भ (Contraction) के दौरे होने लगते हैं। हाथ, बाहु या पांव में रह रहकर होने वाले इन स्तम्भों को सल्ली या कर पाद स्तम्भ या Tetany या Carpopedal Spasm कहते हैं। पहले ज्वर (Infection) होकर फिर प्राय: अस्थि शोष प्रकृति के बालकों में यह कर पाद स्तम्भ का रोग होता है।

स्तम्भ के वेग के समय हाथ की अंगुलियों में प्रसार (Extention) होता है पर अंगुलियां हथेली पर संकुचित (Flexed) होती हैं और एक दूसरे के साथ लगी होती हैं। अंगूठा भी अंगुलियों के साथ लगा हुआ (Adducted) होता है। पांव में जब स्तम्भ होता है तब वह ऊपर और अन्दर को अकड़ा हुआ (Extended) तथा उसकी अंगुलियां तलुए की तरफ संकुचित होती हैं। इस रोग में स्तम्भ का वेग कुछ सेकन्ड या मिनट के लिये ही रहता है। इसके बाद फिर मांस पेशियां शिथिल हो जाती हैं। इस रोग के कारण शरीर की नाना मांस पेशियों में हलके हलके कम्प भी हो सकते हैं।

छः मास से दो वर्ष की आयु के शिशुओं में जिन्हें अतिसार भी होता है शिशु कण्ठ स्तम्भ या श्वास कृच्छ्रता का जो रोग (Laryngospasm) होता है वह भी इसी रोग का एक विभिन्न रूप है। जिसमें सर्दी लगके कण्ठ में स्तम्भ हो जाता एवं श्वास रोध होकर बालक का रंग नीला पड़ जाता है।

यह कथन भी अप्रासंगिक न होगा कि रक्त में कैल्सियम की न्यूनता देर तक रहे तो नेत्र कांच में धुंधलापन (Cataract) हो जाता है। मस्तिष्क पर इसकी न्यूनता का दुष्प्रभाव होकर मानसिक अशान्ति, चिन्ताशीलता उदासीनता (Depression), स्मृति मन्दता, विचार शक्ति की हीनता के लक्षण हो जाते हैं। हृदय पर इसका दुष्प्रभाव होकर उसमें कम्प होने का लक्षण हो जाता है। बालकों में आक्षेप का रोग भी कैल्सियम की न्यूनता से हो सकता है। इसीलिये अस्थि शोष युक्त शिशुओं में अपस्मार सदृश आक्षेप भी होते हुए देखे जाते हैं।

बालक में तथा बड़ी आयु में सल्ली का रोग हो तो यह कष्ट साध्य होता है। कण्ठ में स्तम्भ हो जाने से या मांस पेशियों के विक्षोभ के कारण व्याप्त आक्षेप Convulsions होकर मृत्यु होती है।

वृद्धों के हाथ पांवों में होने वाला स्तम्भ रोग जीर्ण

वृक्क रोग (Uraemia) जनित कैल्सियम की कमी (Hypocalcaemia) के कारण उन के हाथ पांव की मांस पेशियों के विद्योभ शील हो जाने से होता है तथा रात को बिस्तरे में पड़े हुऐ विशेष होता है। उनमें भी यह रोग प्रायः अच्छा नहीं होता।

चिकित्सा :-

रक्त में कैल्सियम की मात्रा को बढ़ाने के लिये Calcium Gluconate के १० प्र०श० घोल को १० मिलि०लि० या Calc. Chloride १०% Solution को ५-१० मि०लि० की मात्रा में शिरा द्वारा प्रतिदिन दे देना चाहिये या इनमें से किसी के १०-५० मि०लि० को ५% ग्लूकोज़ सोल्यूशन में मिला बून्द बून्द करके देना चाहिये या Calcium Glucon. ३० ग्रेन मात्रा में दिन में चार बार मुख द्वारा देते रहना चाहिये अथवा Calc.Lact. १०-१२० ग्रेन मात्रा में या Calc.Chlor.३० ग्रे० मात्रा में दिन में चार बार दिया जा सकता है। इसके ठीक ठीक विलयन के लिये (Liquor Calciferol(Solu.of Vit.D.)) को ४० हजार (१.२ मिलि०लि०) से २ लाख युनिट तक प्रतिदिन देना चाहिये। या Dihydrotachysterol(Hytakerol) या Antitetanic No. १० जो १५ मि०लि० की शीशियों में मिलती है उसकी ४-१० मिलि०लि० मात्रा प्रतिदिन २-४ बार तक दे देनी चाहिये। फिर १-२ सप्ताह तक उसकी १ मिलि०लि० मात्रा प्रतिदिन देनी चाहिये। अथवा बालक को Ostelin की दो गोलियां (१ गोली में ५० हजार युनिट्स) सप्ताह में ५ दिन प्रति दिन दे देनी चाहिये।

बालक की आंतों को १-२ पाइंट नार्मल सेलाइन से एक एक दिन छोड़कर साफ करते रहना चाहिये। स्तम्भ की शान्ति के लिये Chloral Hydr: ५-१० ग्रेन की मात्रा में मुख द्वारा तीन बार प्रतिदिन २-३ दिन तक दे देना चाहिये। बालक को इससे आधी मात्रा देनी ठीक है।

रोगी को कैल्सियम प्रधान आहार अर्थात् फल, सब्जी, थोड़ी रोटी, दूध, घृत, मक्खन आदि पर रखना चाहिये। सवा सेर (१.२ लिटर) दूध में एक ग्राम कैल्सियम होता है + इसलिये वह ठीक आहार है। पर उसमें फोस्फोरस भी अधिक होता है और क्योंकि इस रोग में वह १०० सी०सी० रक्त में ३½ मिलिग्राम से पहले ही अधिक होता है। अतः उसका अधिक प्रयोग भी ठीक नहीं रहता। रोग के ठीक हो जाने पर रोगी को ऐसे भोजन पर रख के उसे Calc.Lactate ५-१० ग्रेन प्रतिदिन देते रहना चाहिये।

बड़ी आयु में चिरस्थायी वृक्क रोग के कारण हाथ पैरों में खल्ली रोग होता है। Albright आदि के अनुसार वृक्कों की Acid Radicles(Phosphatic Sulphates) को निकालने की शक्ति कम हो

जाती है जिससे Acidosis बढ़ जाता है तथा कैल्सियम पोटासियम आदि Base अधिकमात्रामें बाहर निकलने लगते हैं । अतः लवण, प्रोटीन भोजन बन्द करके रोगी को फल, सब्जी, घृत पर रखना चाहिये । Calcium Gluconate १० प्रतिशत के १० सी०सी० मात्रा में रक्त द्वारा देने या Calc.Lactate के १५ ग्रेन की मात्रा में मुख द्वारा प्रतिदिन तीन बार देने और सप्ताह में दो दिन मृदु रेचन देने से आराम रहता है । साथ ही Soda Bicarb. ३० ग्रेन दिन में ३-४ बार तथा Adexolin ४५ बुन्द (Vit.D.) दिन में १ बार देना चाहिये । इससे Osteoporosis जो इस रोग का एक लक्षण है, शान्त रहता है ।

आयुर्वेद में खल्ली रोग :-

आयुर्वेद में कहा है कि हाथ पैर की मांस पेशियों की प्राण शक्ति के कम हो जाने से उनमें प्रबल संकोच उठने लगते हैं ।

(च०।चि०।२८)

उनकी वायु वृद्धि को शान्त करने के लिये हाथ पैरों पर माष तैल, नारायण तैल आदि कोई बल्य तैल मलना चाहिये तथा उनका स्वेदन करना चाहिये । रोगी को घृत तथा बादाम रोगन आदि कोई वात शामक स्नेह पिलाना चाहिये । मुक्ता पंचामृत १-२ रत्ती मात्रा में मधु के साथ दिन में तीन बार देना चाहिये ।

नाड़ी शोथ :-Neuritis,Polyneuritis Tissue,Peripheral Neuritis:-

हाथ पैर आदि प्रान्त भागों तक जाने वाली वातनाड़ियां संज्ञावह, चेष्टावह, पोषक तथा अनैच्छिक चेष्टावह सूत्रों के मिलने से बनी होती हैं । इनके ये सूत्र परस्पर स्नायु तन्तु (Conne.Tissue) के द्वारा बन्धे हुऐ तथा ढके हुऐ रहते हैं । पहले इनमें अर्थात् आभ्यन्तर (Endoneurium) तथा बाह्य स्नायु तन्तु (Perineurium) में सामान्य शोथ होता है । बाद में इनके Myelin आवरण में क्षीणता होती है और फिर वास्तविक सूत्रों (Axis Cylinders)में भी क्षीणता हो जाती है । इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में जब नाड़ियों के स्नायु तन्तु में शोथ होता है इसे Interstitial Neuritis या अन्तर्वातिक नाड़ी शोथ कह सकते हैं । इस अवस्था में पहले तो वहां उत्पन्न हुऐ द्रव (Exudate) से और फिर फूले हुऐ (Over Grown) स्नायु तन्तु से क्योंकि नाड़ी सूत्र दब जाते हैं इसी से लक्षण उत्पन्न होते हैं । शोथ जनक कारणों के चिरकाल रहने के बाद जब इन नाड़ियों में क्षीणता का लक्षण भी हो जाता है तो उसे वास्तविक (Parenchymatous Degenerative) नाड़ी शोथ कहते हैं । वस्तुतः बहुधा तो नाड़ियों में शोथ इतना नहीं होता जितनी क्षीणता होती है । अतः इस रोग को नाड़ी

रोग (Neuropathy) कहना अधिक ठीक है । प्राय: क्षीणता की प्रक्रिया मन्द रुप में ही होती है अत: रोग के कारण को दूर कर दिया जाय तो इनकी क्षीणता को रोका जा सकता है । नाड़ियों में क्षीणता उनके प्रान्त भागों से आरम्भ होती है तथा शरीर के दोनों ओर एक सी होती है । इसीलिये इसे अनेक नाड़ी शोथ (Peripheral Polyneuritis) कहते हैं ।

किसी वाह्य या आभ्यंतर विष द्रव्य के दुष्प्रभाव से यह नाड़ी शोथ का रोग होता है जैसे (चेष्टा सूत्रों के लिये विष) संखिया, (Lead) मद्य, Carbon Monoxide आदि के चिरकाल तक शरीर में जाते रहने से या मधु मेह जनित या कैन्सर जनित किसी विष से, आंत में उत्पन्न किसी विष से या शरीर में विद्यमान पूय विष (Sepsis) से या फिरंग रोग, विषम ज्वर, महा कुष्ठ आदि किसी की विष से या Vitamin B_1 या Complex की अति न्यूनता से या वृद्धावस्था में धमनीकाठिन्य रोग से नाड़ियों का पोषण कम हो जाने पर इनमें क्षीणता (Ischaemic Degen.) की प्रक्रिया होने लगती है । वाह्य या आभ्यन्तर विष पदार्थ नाड़ियों तक रक्तवाहिनियों के द्वारा जाते हैं और बहुधा इनके विषैले प्रभाव से पहले से उनमें क्षीणता (Degene.) की प्रक्रिया ही आरम्भ होती है । W. E. Adams का कहना है कि मधुमेह वृद्धावस्था आदि के कारण प्रान्तीय नाड़ियों में जाने वाली पोषक धमनियों (Vasanervosa) में अवरोध होकर नाड़ियों के पोषण में कमी आ जाती है जिससे उनमें क्षीणता होती है ।

लक्षण :-

यह रोग २०-४० वर्ष की आयु में पाया जाता है । इसका आरम्भ क्रमश: होता है । शाखागत वात नाड़ियों के संज्ञावह सूत्रों में सबसे पहले क्षीणता होती है जिससे दोनों और हाथ पैर आदि में सुप्ति (Numbness) चिम चिमाहट फनफनाहट (Paraesthesia) या स्पर्श के बुरा लगने (Hyperaesthesia) का लक्षण होता है अथवा संज्ञावह सूत्रों के ग्रस्त होने से हाथ, पैर, जंघा, बाहु आदि में वेदना का लक्षण होता है, जो नाड़ी पर खींच पड़ने से बढ़ती है अथवा रात को आराम करते समय पैरों, पिंडिलियों आदि में उद्वेष्टन (Cramps) की वेदना होती है । पिण्डिलियों व पाद तल की मांस पेशियों को दबाने से उनमें दर्द होने का लक्षण भी होता है या पैर गर्म लगते हैं या अधिक शीतल लगते हैं ।

इस अवस्था में परीक्षा करने पर Tendon Jerks घटे हुऐ होते तथा Plantar Reflex नीचे की ओर होता है । शाखाओं की नाड़ियों के चेष्टा वह सूत्र कुछ देर बाद ग्रस्त होते हैं जिससे पहले उनमें वेदना होने का लक्षण होता है उसके बाद हाथों पैरों की मांस पेशियां क्षीण होने

लग जाती हैं अर्थात् उनमें मांस मय अवयव के स्थान पर वसा आने लग जाती है। पहले अंगुलियों की सूक्ष्म मांस पेशियां क्षीण होती हैं जिससे बारीक काम करने या लिखने की शक्ति घट जाती है। फिर अंगुलियों तथा कलाईयों को पसारने वाली तथा पैरों को ऊपर की ओर फेरने वाली मांस पेशियां (Dorsiflexors) क्षीण हो जाती हैं जिससे पैर नीचे को ढलक से जाते हैं (Foot Drop) अर्थात् निम्न चेष्टावाही सूत्र (Lower Motor Neurones) क्षीण होने लगते हैं। इस रोग में निम्न शाखाओं की मांस पेशियों में निर्बलता विशेष होती है। शाखागत नाड़ियों में विद्यमान पोषक (Trophic) सूत्रों के क्षीण हो जाने से हाथ पैर सिर आदि की त्वचा का पोषण कम हो जाता है जिससे त्वचा, नखों तथा बालों का पोषण कम हो जाता है। त्वचा काली पड़ जाती, नखों में लकीरें पड़ जाती हैं। इस अवस्था में हाथ पैर आदि में व्रण हो जाय तो उसका रोहण देर से होता है। मधुमेह के रोगी के पैर में ऐसा व्रण बहुधा देखा जाता है जो सम्भवत: सिरा नियामक सूत्रों की क्षीणता से बढ़ होता है।

शाखागत नाड़ियों में विद्यमान अनैच्छिक (Autonomic नाड़ी सूत्रों में क्षीणता हो जाय तो हाथ, पैर, मस्तक आदि पर स्वेद अधिक आने लगता या उसका आना बन्द हो जाता है।

इन नाड़ियों में विद्यमान सिरा नियामक (Vasomotor) सूत्रों में क्षीणता हो जाय तो हाथ पैरों की अंगुलियां, कान आदि या तो अधिक लाल और गर्म रहने लगते हैं, या अधिक ठंडे रहने लगते हैं।

कुछ एक नाड़ी शोथ :-

१.. बाहु नाड़ी शोथ (Brachial Neuritis) बाहु सम्बन्धी नाड़ी जाल (Plexus) जो ५ वीं से ८ वीं ग्रैवेय (Cervical) नाड़ियों तथा प्रथम Thoracic की अग्रिम शाखाओं के मिलने से बनी है उसकी Axillary या Circumflex नाड़ी में जो Deltoid और Teresminor कन्धे की इन पेशियों में जाती हैं शोथ हो तो कन्धे में तथा बाहु के बाहर के ऊपर के भाग में दर्द होता है तथा बाहु को बाहर की ओर विवर्तित (Rotate) करने और ऊपर उठाने में कठिनता होती है। रात को बिस्तरे में पड़ने पर कन्धे में दर्द विशेष होता है। Deltoid के क्षीण हो जाने से कन्धे पर उभार नहीं दीखता।

इस नाड़ी जाल की Median Nerve जो Flexor Pollicis Longus (अंगूठे की संकोचक) Flexor Digitorum Profundus (Distal phalanges की संकोचक) के बाहर के भाग Pronator Quadratus (बाहु की Pronator) Abductor Pollicis, Flexor Pollicis (अंगूठे की संकोचक) तथा बाहर की २ Lumbricals (अंगुलियों की हथेली

पर संकोचक। मांस पेशियों को शाखायें देती है। रुग्ण हो तो इन मांस पेशियों की चेष्टायें मन्द पड़ जाती हैं। इसकी Palmar Cutaneous शाखा अंगूठे तथा बाहर की ओर हथेली की त्वचा को संज्ञा प्रदान करती है। इसके शोथ से अंगुलियों को सकोड़ना तथा अंगूठे को सकोड़ना व Abduct करना कठिन होता है। अंगूठे के नीचे हथेली का उभार लुप्त हो जाता है। अंगूठे और बाहर की २½ अंगुलियों की संज्ञा शक्ति भी कम हो जाती है। इन प्रदेशों में फनफनाहट या दर्द भी हो सकता है।

Ulnar Nerve-Flexor Carpiulnaris (कलाई की संकोचक), Flexor Digitorum Profundus (अंगुलिसंकोचक) के अन्दरले भाग, Palmaris Brevis (मुट्ठी बांधने में सहायक), Flexor Brevis Digitiminimi (छोटी अंगुलि की संकोचक), Abductor Digitiminimi --- (छोटी अंगुली को मोड़ने वाली), Opponeus Digitiminimi (उसकी मोड़ने वाली), Interossei (अंगुलियों को खोलने बन्द करने वाली) तीसरी चौथी Lumbricales (लिखने में सहायक) तथा Adductor and Flexor Pollicis Brevis(अंगूठे की संकोचक) को शाखायें देती है। यह नाड़ी करतल और करपृष्ठ के अन्दरले भाग की त्वचा को संज्ञा प्रदान भी करती है। इस नाड़ी में शोथ हो तो Metacarpophalangeal संधियों पर अंगुलियां स्तब्ध रहती हैं। अंगूठा अन्दर की ओर नहीं हो सकता। अंगुलियां एक दूसरी से जुदा नहीं हो सकतीं। हथेली का अन्दर का भाग सूख सा जाता है। अन्दरले भाग की त्वचा की संज्ञा में न्यूनता या विषमता आ जाती है।

Radial Nerve-Triceps, Anconeus (बाहु प्रसारक) Brachioradialis तथा Brachialis (कोहणी संकोचक) Extensor Carpiradialis Longus (कलाई प्रसारक) Extensor Carpiradialis Brevis, Extensor Carpi ulanris (कलाई प्रसारक) Abductor Pollicis Longus Extensor Pollicis Brevis, Extensor Pollicis Longus (अंगूठे को मध्य रेखा से हटाने वाली तथा अंगूठे की प्रसारक) Extensor Indicis (प्रथमांगुली की प्रसारक) को शाखायें देती है। यह नाड़ी ऊर्ध्व बाहु के बाहर की निचली त्वचा को (Lower Lateral Brachial Cutaneous) अग्र बाहु के पृष्ठ की त्वचा को (Post. Antibracheal Cutaneous) भी संज्ञा देती है। हाथ के बाहर के तथा पीछे के आधी पृष्ठ प्रथम अंगुलि के दोनों बाजुओं, मध्यमांगुलि के बाहर के पृष्ठ की त्वचा को भी संज्ञा देती है। इस नाड़ी के रोग में हाथ कलाई पर ढीला हो जाता है। (Wrist Drop) अंगुलियों को फैलाना या अग्रबाहु का फैलाना हथेली का पृष्ठ ऊपर की ओर फिराना (Supination) कठिन हो जाता है।

cervical

बड़ी आयु में ग्रीवा कशेरुकाओं में अतिवृद्धि (Spondylosis) हो जाने से एक बाहु की चेष्टा शक्ति कम हो जाती है । ग्रीवा का चेष्टा क्षेत्र भी कम होता है । नाड़ियों पर दबाव पड़ने से दर्द बाहु में अंगुलियों तक जाता है । उनमें झनझनाहट भी होती है ।

Lumbosacral Plexus की Femoral Nerve :-

ऊर्ध्व जंघा के अगले पृष्ठ पर विद्यमान Pectineus, Sartorius, Iliacus (जो ऊर्ध्व जंघा को पेट की ओर संकुचित करती हैं या अन्दर या बाहर की ओर करती हैं) Qudriceps Femoris (जो टांग को फैलाती हैं तथा धड़ को टांग पर थामती है) को शाखायें देती है । इसलिये इस नाड़ी में शोथ होने पर ऊर्ध्व जंघा में निर्बलता आ जाती है । रोगी को ऐसा लगता है जैसे उसके गोड़े उसे सहारा नहीं देते । इस नाड़ी के रोग से जंघा को फैलाने में विशेषत: और कुछ कुसकोड़ने में भी अशक्ति प्रतीत होती है । सीढ़ी चढ़ना या उतरना कठिन हो जाता है । क्योंकि यह नाड़ी ऊर्ध्व जंघा, जंघा और पैर के अन्दर की ओर की त्वचा को संज्ञा प्रदान करती है (Medial Cutaneous तथा Saphenous Nerve के द्वारा) अत: [illegible] इसके रुग्ण होने के कारण ऊर्ध्व जंघा, अधोजंघा, तथा पैर के अन्दर की ओर की त्वचा में संज्ञानाश, झनझनाहट (Paraesthesia) या शूल (Crural Neuralgia) के लक्षण भी हो सकते हैं ।

गृध्रसी (Sciatic) नाड़ी अपनी दो शाखाओं Medial तथा Lateral Popliteals में विभक्त होने से पहले ऊर्ध्व जंघा के पीछे की Biceps Femoris, Semimembranosus, Semitendinosus तथा Adductor Magnus के Head को जो जानु की संकोचक हैं शाखायें देती है । इसकी Lateral Popliteal शाखा Fibula के शिर के पीछे एक गहरी Anterior Tibial दूसरी उथली Musculocutoneous शाखा में बंट जाती है । इनमें से Anterior Tibial शाखा Tibialis Anterior (गुल्फ संकोचक) Extensor Hallucis Longus, Extensor Digitorum Longus (अंगूठे, बीच की अंगुलियाँ व छोटी अंगुलि को तथा पैर को संकुचित करने वाली या Dorsiflexors) को शाखायें देती है । दूसरी Musculocutaneous या Superficial Peroneal शाखा Peroneus Longus तथा Brevis को जो बाहर के गुल्फ पर पैर को बाहर और ऊपर फिराने का काम करती हैं शाखायें देती है । पैर के ऊपर की त्वचा के अन्दर तथा बाहर के भागों को छोड़कर बीच के भाग को संज्ञा प्रदान करती है । बाहर के भाग को Sural Nerve तथा अन्दर के भाग को Ant. Tibial Nerve संज्ञाप्रदान करती है । टांग के पीछे की Posterior Tibial, नीचे बाहर के गुल्फ पर पहुंच कर Medial तथा Lateral दो Planter (पादतल की) शाखाओं में विभक्त हो जाती है । यह Post. Tibial नाड़ी पिण्डली की ---

Gastrocnemius, Solius, Plantaris को जो पांव को नीचे पाद तल की ओर संकुचित करती हैं । शाखायें देती है । Tibialis Posterior Popliteus को जो पैर को अन्दर की ओर विवर्तित करती है शाखा देती है । Flexor Digitorum Longus, Flexor Hallucis Longus को जो पांव की अंगुलियां को नीचे की ओर संकुचित करती हैं । शाखायें देती है । यह नाड़ी निचली एक तिहाई जांघ के पीछे के बाहर के भाग की त्वचा को, एडी तथा पाद तल के पिछले भाग की त्वचा को भी संज्ञा प्रदान करती है । Medial Plantar Nerve पादतल में Abductor Hallucis, Flexor Hallucis Brevis, Flexor Digitorum brevis, प्रथम Lumbrical Muscle को जो पादांगुलियों की संकोचक हैं शाखायें देती है । यही नाड़ी (L-4-5) पादतल के अन्दर के भाग की ३½ अंगुलियां तक की त्वचा को संज्ञाप्रदान करती है । Lateral Plantar Nerve (S-1-2) पांव की शेष बची हुई छोटी मांस पेशियां को शाखायें देती है तथा पादतल के बाहर के १½ अंगुलि तक के प्रदेश की त्वचा को संज्ञा प्रदान करती है । इस नाड़ी में शोथ हो तो उसे गृध्रसी (Sciatica) रोग कहते हैं ।

गृध्रसी शूल :-Sciatica:-

कसेरुओं (Vertebrae) तथा उनको परस्पर जोड़ने वाली तरुणास्थि की बनी टिकियों (Discs) के मिलने से रीढ़ की हड्डी बनी है । इन टिकियों का बाहर बाहर का खोल कुछ कठोर होता है । (Annulus Fibrosus) और इनका केन्द्रिय भाग अधिक लचकीला होता है । (Nucleus Pulposus) रीढ़ की हड्डी के ऊपर ले भाग में कसेरु तथा उनके बीच की टिकियां पीछे की ओर से Posterior Common Ligament के द्वारा पुरी तरह से ढकी रहती हैं । परन्तु रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में अर्थात् Lumber प्रदेश में यह Ligament कुछ तंग होती है एवं इन कसेरुओं और टिकियों को पूर्णतया ढकती नहीं । इसलिये कमर की रीढ़ पर कभी कभी भारी दबाव पड़ जाने से वहां की एक टिकिया (Disc) एक पार्श्व की ओर खिसक सकती है ।

छोटी आयु में ये टिकियां अधिक लचकीली होती हैं एवं ऊपर नीचे के कसेरुओं के साथ दृढ़ता पूर्वक बंधी होती हैं । बड़ी आयु में इनका लचकीलापन तथा इनका ऊपर नीचे के कसेरुओं के साथ सन्धान कुछ घट जाता है । जिससे रीढ़ की हड्डी पर भारी दबाव पड़ने से जैसे आगे की ओर झुक कर किसी भारी बोझ को उठाते समय जब कमर की हड्डी पर जोर पड़ता है तब या तो एक सारी टिकिया पीछे की ओर खिसक जाती है या उसके फट जाने से उसके अन्दर का लचकीला भाग (Nucleus Pulposus) पिछली Ligament के एक पार्श्व की ओर खिसक जाता है । बहुधा करके पांचवीं Lumber कसेरु और Sacrum के बीच की टिकिया

पीछे एक पार्श्व की ओर खिसक जाया करती है। बहुधा तो साधारण से झटके से ही कशेरुकाओं के बीच की टिकिया (Disc) खिसक जाती है; इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था में पृष्ठ वंशास्थियों में विशेषत: कटि कशेरुकाओं में अति वृद्धि (Spondylosis या Hypertrophic Spondylitis) का रोग होता है। उससे भी इस नाड़ी पर दबाव पड़ सकता है। ठीक जैसे कि ग्रैवेय कशेरुकाओं और उनके बीच की टिकियों में दाणता जनित अति वृद्धि से Cervical Rediculitis या ग्रैवेय सौषुम्न नाड़ियों के Roots के दब जाने से अधिकत: तो हाथ के तथा बाहु के बाहर की ओर (Cervical 5,6,7,8) के भाग में सुप्ति-झनझनाहट के लक्षण होते हैं। कभी कभी इस Cervical Spondylosis या ग्रीवा सम्बन्धी पृष्ठ वंशास्थि रोग के कारण कन्धों, बाहु और अंगुलियों तक जाने वाली वेदना भी होती है। इसी प्रकार पृष्ठ वंशास्थि के रोग के कारण एक पैर में झनझनाहट का लक्षण हो सकता है।

सुषुम्ना कांड में से निकलने वाली प्रत्येक सौषुम्ना (Spinal) नाड़ी अग्रिम तथा पश्चिम दो मूलों (Roots) के मिलने से बनती है। इन दोनों का मिलन Inter Vertebral Foramena के अन्दर हो जाता है। पीछे की तरफ खिसकी हुई इस टिकिया का दबाव पिछली Root पर विशेषत: पड़ता है जिससे उसमें शोथ (Radiculitis) हो जाता है। अब क्योंकि पांचवीं Lumber तथा विशेषत: प्रथम और द्वितिय Sacral Spinal Roots के मिलने से Great Sciatic Nerve बनती है और बहुधा Lumber कशेरुकाओं और Sacrum के बीच की टिकिया ही पीछे की ओर खिसकती है, इसलिये उसके कारण प्रथम Sacral Nerve की पिछली Root पर दबाव पड़ जाता है। जिसके कारण इस Sciatic नाड़ी के क्षेत्र में तथा कटि में शूल का लक्षण हो जाता है। इसके Root में शोथ हो जाने के बाद इस गृध्रसी नाड़ी के स्नायु तन्तु (Conne.Tissue) में भी शोथ प्रसरण कर जाता है जिसे गृध्रसी नाड़ी शोथ (Sciatic Neuro Fibrositis) कहते हैं।

क्योंकि दूसरे, तीसरे, चौथे Lumber Roots के संयोग से Femoral Nerve बनती है इसलिये इनमें से किसी में शोथ (Radiculitis) होने से या Lumber ३ और ४ के बीच की टिकिया खिसक गई हो तो ऊर्ध्व जंघा के अगले पृष्ठ पर उस नाड़ी के क्षेत्र में वेदना सुप्ति व चिमचिमाहट (Tingling) आदि लक्षण हो जाते हैं जो नीचे अन्दरले गिट्टे तक प्रतीत होते हैं।

कभी कभी Lumber Spinal नाड़ियों के अग्रिम Roots पर इस खिसकी हुई टिकिया का दबाव पड़ जाता है जिससे उनमें शोथ विशेष होता है तब शूल के बजाय जांघ की मांस पेशियों में निर्बलता का

लक्षण विशेष होता है। इस नाड़ी के Sciatic Notch के प्रारम्भिक भाग पर विद्यमान मांसपेशियाँ (Piriformis Biceps-Hamstrings) तथा Sacrosciatic स्नायु में यदि आम वातिक शोथ (Fibrositis) हो या उनमें चोट या ज़ोर (Strain) पड़ जाने से शोथ हो जाय तो क्योंकि इनमें Sacral Plexus से शाखायें जाती हैं, इससे इनकी दर्द गृध्रसी नाड़ी में जाती प्रतीत होती है तब इसे आम वातिक Fibrositic या Interstitial गृध्रसी शूल कहते हैं।

कारण :-

इस प्रकार इस नाड़ी में आम वातिक शोथ या Interstial Neuritis (१) आम वात (Rheumatism) (२) शरीर में कहीं पूय की उपस्थिति (Focal Sepsis) या (३) मधुमेह के कारण हो सकती है। Sciatic Notch के समीप की मांस पेशियों में शोथ (Fibrositis) हो तो इस नाड़ी के खोल में भी शोथ प्रसरण कर जाता है। इनके अतिरिक्त रीढ़ की हड्डी में शोथ (Spondylitis) हो या अति वृद्धि (Spondylosis या Hypertrophy) हो या Lumbosacral ... Osteoarthrosis या वहां की कोई टिकिया स्थान भ्रष्ट हो गई हो तो उनके दबाव से भी इस नाड़ी में रोग हो सकता है। मध्यम आयु में यह रोग कटि प्रदेशीय (Lumber) तथा नितम्बदेशीय (Gluteal) मांसपेशियों में आघात जनित शोथ के इसके अन्दर प्रसरण कर जाने से होता है जिनमें आघात किसी आकस्मिक झटके या किसी भारी बोझ को उठाने से लगता है।

लक्षण :-

गृध्रसी नाड़ी की Roots पर विशेषत: प्रथम पिछली Sacral Root पर दबाव पड़ने के कारण एक दम कटि की मांस पेशियों में स्तम्भ होकर कटिशूल (Lumbago) का लक्षण हो जाता है। यह दर्द कटि के मध्य में एक ओर विशेष होता है। आराम से लेट जाने पर दो दिन में ठीक हो जाता है। अब कटि पर से यह दर्द स्फिक् प्रदेश में और वहां से नीचे उतर निम्न जंघा के पिछले तथा बाहर के पृष्ठ पर से होता हुआ पांव के बाहर के पृष्ठ तक जाता है + जो चलने फिरने से बढ़ जाता है। प्रथम Sacral Root के दबने से ऐसा होता है। पांव का यह बाहिर का पृष्ठ सोया हुआ सा होता या उसमें चिमचिमाहट सी होती है पर जब पांचवीं Lumber Root में शोथ होता है तब पांव के अन्दर के पृष्ठ पर दर्द या सुप्ति का लक्षण प्रतीत होता है। जब कटि और स्फिक् प्रदेश की मांसपेशियों से शोथ इस नाड़ी के खोल में फैलने लगती है तब भी पहले कटि प्रदेश में दर्द तथा स्तब्धता के कष्ट प्रतीत होते हैं। कुछ काल बाद एडी में सुप्तता का लक्षण प्रतीत होता है + जो रात को बिस्तरे से उठने पर अधिक स्पष्ट होता है। फिर ऊर्ध्व जंघा के पिछले पृष्ठ पर दर्द का लक्षण प्रकट होता है जो क्रमश:

बढ़ता जाता है जिससे चलना फिरना कठिन हो जाता है । गृध्रसी नाड़ी का यह दर्द यों तो बराबर बना रहता है पर बिना गोड़े के मोड़े आगे फुकने से, खांसने छींकने से बढ़ता है । टांग को सीधा पेट पर ६० डिग्री तक सकोड़ने से भी बढ़ता है । अर्थात् इस नाड़ी पर खींच पड़ने से रोगी को दर्द होता है। इसीलिये वह अपने स्वस्थ पार्श्व पर, रुग्ण टांग को जानु तथा वंक्षणसंधि पर संकुचित करके लेटा रहता है ।

परीक्षा :-

यदि खड़े हुये रोगी के पीठ पीछे देखने पर उसका कमर का स्वाभाविक खम (Curvature) न दिखाई पड़ता हो तो समझना चाहिये कि कटि और Sacrum की संधि पर या Sacrum और Ilium के जोड़ पर खींच पड़ गई है और एक ओर या दोनों ओर के Sacrospinalis मांस में स्तम्भ (Spasm) हो गया है ।

यदि देखने से रीढ़ की हड्डी में एक पार्श्व की तरफ मोड़ (Scoliosis) दिखाई पड़े और यह गृध्रसी शूल की विपरीत दिशा में (Contralateral) हो तो समझना चाहिये कि उधर के कसेरुओं के बीच के प्रदेश को बड़ा करने तथा इस प्रकार उधर की Roots पर फिसली हुई टिकियों के भार को कम करने के लिये यह वक्रता हो गई है । यदि रीढ़ की हड्डी की यह वक्रता उसी तरफ हो जिधर गृध्रसी शूल है (अर्थात् Homolateral Scoliosis हो) तो उधर की गृध्रसी नाड़ी पर पड़ने वाली खींच को कम करने के लिये यह हुई है ऐसा समझना चाहिये ।

रोगी को कमर के भार लिटाकर टांग को गोड़े पर बिना मोड़े वंक्षण संधि पर संकुचित करने से यदि थोड़ी उठाने पर दर्द होने लगे तो उसके पीछे की मांस पेशियों (Hamstrings) के उपरले भाग में शोथ (Fibrositis) का सन्देह करना चाहिये अर्थात् Fibrositic Sciatica -आमवातिक गृध्रसी शूल-का सन्देह करें । अब यदि टांग को और उठाये बिना केवल उसके पैर को गुल्फ संधि पर ऊपर की ओर मोड़ा जाय जिससे गृध्रसी नाड़ी पर खींच पड़े और इससे दर्द हो तो गृध्रसी नाड़ी में शोथ का अनुमान करना चाहिये । यदि टांग को थोड़ा उठाने से दर्द न हो पर अधिक ऊंचा उठाने पर दर्द हो जिससे कि Sacrum और Ilium के संधि स्थान में चेष्टा हो जाती है तो समझना चाहिये कि उस संधि में विद्यमान स्नायु तन्तुओं (Sacroiliac Ligaments) में शोथ है ।

Piriformis तथा Facialata में शोथ के कारण गृध्रसी शूल हो तो Greater Trochanter के ऊपर और पीछे के प्रदेश पर दबाने से स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है तथा इससे सारी गृध्रसी

नाड़ी में भी दर्द होता है । किसी कशेरु सम्बन्धी टिकिया के फिसल जाने से रोग हो तो Radiography से इसका निश्चय हो सकता है । इस रोग में पांव के बाहर के और की त्वचा या ऊपर के पृष्ट की त्वचा में सुप्ति का लक्षण न्युनाधिक रुप में हुआ करता है । ऊर्ध्व जंघा के पिछले पृष्ठ या पिण्डली पर किसी प्रदेश में स्पर्शाक्षमता का लक्षण भी होता है । टांग की मांस पेशियों में घात या Paralysis का लक्षण प्राय: नहीं होता तो भी जानु संकोचक (Homstrings) में कुछ निर्बलता हो जाती है । कभी कभी पांव की अंगुलियों को ऊपर की ओर संकुचित करने वाली मांस पेशियों में निर्बलता पाई जाती है । टिकिया के फिसलने (Disc-Prolapse) से यह रोग हो तो चौथी या पांचवीं Lumber Spine पर टकोरने से स्पर्शाक्षमता प्रतीत होती है तथा ऊर्ध्व जंघा के पीछे इस नाड़ी पर स्पर्शाक्षमता प्रतीत होती है ।

नाड़ी शोथ की चिकित्सा :-

नाड़ियों में क्षीणता (Neuropathy) जनक कारण का पता लगा कर उसे दूर करना चाहिये । मधुमेह हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । नाड़ी के पोषण को बढ़ाने के लिये स्वेदन (गर्म नमक की पोटली आदि) तथा मर्दन उपयोगी है । रुग्ण नाड़ी की निर्बलता को दूर करने के लिये Vitamin B_1 (Berin) को ५०-१०० मिलिग्राम की मात्रा में दिन में दो बार दो सप्ताह तक देना चाहिये । और उसके बाद ५० मिलि० मात्रा में दिन में एक बार कुछ सप्ताहों तक देना चाहिये या ५०-१०० मिलि० मात्रा में कुछ सप्ताह तक बी१२ ३० (२२०) माइक्रोग्राम के साथ मांस द्वारा देने तथा साथ ही Nicotinic Acid को १०० मिलि० मात्रा में मुख द्वारा दिन में दो बार देते रहने से भी क्षीण हुई नाड़ी के पोषण में वृद्धि होती है । अथवा Vitamin B Complex के बड़ी मात्रा में कुछ दिन देने से भी क्षीण हुई नाड़ी के पोषण में वृद्धि होती है ।

नाड़ी शूल जो नाड़ी में आमवातिक शोथ के कारण होता है दुखते अंग को आराम देने व स्वेदन से, Oil of Winter Green के तेल या वैज़लीन में १० प्रतिशतक मात्रा में मिलाकर लगाने से या Liniment Aconite १ भाग, Liniment Bella, २ भाग, Lini. Chloroform ३ भाग मिलाकर लगाने से तथा Aspirin १० ग्रैन, Pyramidon ५ ग्रैन, Heroin $\frac{1}{12}$ ग्रैन के मिलाकर प्रातः सांय देने से अथवा Aspirin $3\frac{1}{2}$ ग्रैन, Phenacetin $2\frac{1}{2}$ ग्रै० Caffeine $\frac{1}{2}$ ग्रैन और Codeine Phosphate $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{4}$ ग्रैन की मात्रा में मिलाकर दिन में तीन बार देने से या केवल Aspirin ५ ग्रै० Codeine Phosphate $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{2}$ ग्रैन मिलाकर मुख द्वारा दिन में तीन बार देने से आराम आ जाता है । बाहु में आमवातिक शूल हो तो Short Wave Diathermy और बाहु को आराम देने से आराम आ जाता है ।

आयुर्वेद में नाड़ी शोथ :-

वातिक नाड़ी शोथ :-

किसी बाह्य या आभ्यंतर विघ्न के द्वारा हाथ पांव की वात नाड़ियों की प्राण शक्ति के घट जाने से वहां जो मन्द मन्द शूल या सुप्ति के लक्षण हो जाते हैं उसे वातिक नाड़ी शोथ कहते हैं। यह रोग बड़ी आयु में होता है।

(च०।नि०।२८।श्लो० ३६।सिरागतवायु) तथा
(सु०।नि० १।२६ श्लो०)

वात श्लेष्मिक नाड़ी शोथ :-

शरीर में आम दोष के बढ़ जाने से उसके विपरीत प्रतिक्रिया के रूप में नाड़ी में जो वातानुगत श्लेष्मिक शोथ होता है उसे आम वातिक शोथ या वात श्लेष्मिक नाड़ी शोथ कहते हैं। यह प्रथम या मध्यमायु में होता है।

इनकी चिकित्सा के लिये वस्तियों द्वारा या एरण्ड तैल आदि के रेचन के द्वारा दोष शोधन करने के बाद रोगी को कुचले से बनी गोली (कुचला १० तो०, रससिन्दूर, लौह, जायफल, लवंग, सौंठ, मरिच, तगर, जटामांसी १½,१½ तो०) दिन में तीन चार बार देनी चाहिये। शतावरी घृत, जीवनीयघृत आदि किसी बल्य घृत तथा चतुर्मुख चिन्तामणि या स्वर्ण लक्ष्मी-विलास का दो रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार मधु के साथ प्रयोग करने से भी लाभ होता है। चन्द्र प्रभा तीन चार गोली के प्रतिदिन लेने तथा नारायण तैल, माष तैल, शतावरी तैल आदि के अभ्यंग और स्वेदन से भी क्षीण हुई नाड़ी का पोषण बढ़ता है।

श्लेष्मिक नाड़ी शोथ के लिये योगराज गुग्गुलु का या एरण्ड पाक का काल प्रयोग करना चाहिये तथा तिल तैल १ सेर में १ पाव लशुन कल्क और १ सेर जल मिलाकर तैयार किया तैल मलना चाहिये या तारपीन तैल ५ तो० में १ तो० कपूर मिलाकर मल सकते हैं।

गृध्रसी शूल की चिकित्सा :-

आमवातिक कटि शूल तथा गृध्रसी शूल के होने पर रोगी को ~~एक~~ दो तीन सप्ताह तक आराम से लेटे रहना चाहिये। टांग पर मालिश नहीं करनी चाहिये, इससे कष्ट बढ़ता है। वस्ति के द्वारा आंतों को साफ रखना चाहिये। मधुमेह हो तो उसकी चिकित्सा तत्परता के साथ करनी चाहिये। किसी दांत की जड़ में पूय हो तो उसकी उचित चिकित्सा करनी चाहिये। तथा स्फिक् प्रदेश और कमर पर गर्म बोतल से या Diathermy द्वारा का स्वेदन करना चाहिये। दर्द की

शान्ति के लिये Sodium Salicylate १० ग्रे० की मात्रा में ३-४ बार Codopyrin, Aspirin १० ग्रेन या Butazolidin(Phenylbutazone) २००-४०० मि० दैनिक का प्रयोग करना चाहिये। कमर के नीचे तकिया देने तथा टांग को कुछ Abiuction में फैला के रखने से दर्द घटता है। जब उठने बैठने या चलने फिरने से दर्द न हो तो बिस्तरे से उठना चाहिये। हिली हुई टिकिया से उत्पन्न नाड़ी शोथ भी ३-४ सप्ताह के आराम से शान्त हो जाता और Root संकुचित मार्ग के अनुसार अपने को ढाल लेती है।

यह रोग जीर्ण रुप में हो तो कमर तथा टांग पर गर्म तैल(Winter Green Oil) की मालिश करने तथा Kruschen Salt का प्रात: प्रयोग करने से आराम प्रतीत होता है। मांस पेशियों में शोथ के कारण जो Adhesions हो जाते हैं वे मालिश से टूट जाते हैं। गृध्रसी नाड़ी जो Great Trochanter के पिछले उपरले किनारे तथा Ischium की Tuberosity. दोनों के मध्य में से नीचे Popletial Fossa के उपरले कोण तक उतरती है इसमें तथा इसके आसपास ४ इंच लम्बी नीडल से नार्मल सेलाइन २-३ औंस की मात्रा में डाल देने से भी दर्द शान्त हो जाता है।

आयुर्वेद के अनुसार गृध्रसी नाड़ी में वात श्लेष्मिक (Rheumatic) शोथ हो जाने से या शुद्ध वातिक (Degenerative) प्रकोप होने से २ प्रकार का गृध्रसी शूल होता है। वात श्लेष्मिक की शान्ति के लिये विश्राम तथा योग राज गुग्गुलु का दशमूल क्वाथ या रास्नादि क्वाथ के अनुपान से कुछ काल सेवन करना चाहिये। या सुरंजान, सनाय, शिव श्यामा त्रिवृत् समान समान के चूर्ण को $\frac{1}{2}$ माशा के मात्रा में बराबर खाण्ड के साथ मिला दिन में २ बार लेना चाहिये या सुरंजान और त्रिफला चारों द्रव्यों को समान समान मिला २ माशे की मात्रा में दिन में २ बार लेना चाहिये

या हरड़ सुरंजान व मुनक्का के वटी गोलियां लेनी चाहियें।

रास्नादि क्वाथ में पका कर बनाया एरण्ड तेल भी इस रोग के लिये दिया जाता है। कटि तथा स्फिक् प्रदेश पर स्वेदन देने से भी दर्द में आराम आ जाता है।

जीर्ण गृध्रसी रोग में एरण्ड पाक, हिंगुत्रिगुण तेल या रसोन वटी का सेवन करते रहना चाहिये। शुद्ध वातिक गृध्रसी के लिये वात शामक शतावरी, घृत, दशमूलादि घृत, जीवनीय घृत, चतुर्मुख चिन्तामणि, रसराज आदि का कुछ काल सेवन करना चाहिये।

(च०। चि०। २८)

बाल पक्षाघात :-Poliomyelitis, Acute Anterior Poliomyelitis Infantile Paralysis.

कारण :-

एक अति सूक्ष्म नाड़ी विष या Filtrable

Neurotropic Virus के शरीर में प्रविष्ट हो जाने के कारण दो से पांच वर्ष के छोटे बालकों में कहीं कहीं पर (Sporadic रूप में) होने वाला तथा कभी कभी संक्रामक रूप में होने वाला यह रोग है जिसमें सुषुम्ना काण्ड के अग्रिम शृंगों (Anterior Horns) के सेल और कभी कभी Medulla में विद्यमान मस्तिष्क नाड़ियों के चेष्टावाही (Motor Nuclei के) सेल मर जाते हैं। और उनसे सम्बन्धित मांस पेशियां शिथिल (Flaccid) हो जाती हैं। इस प्रकार काली मज्जा में (Polio= काली, Myelitis= मज्जा) शोथ हो जाने वाले इस रोग को Poliomyelitis कहते हैं।

यह बाल पक्षाघात का रोग संक्रामक है। इस बात का पता पहले पहल Wickman (१६०८) ने दिया और उसी वर्ष Landsteiner ने इसके संक्रमण के कारण भूत Virus का पता भी निकाल लिया यह रोगी बालक के मुख गले के स्राव तथा पुरीष में रहता है। अर्थात् इसका प्रवेश मुख से होता तथा मल के द्वारा इसका निष्क्रमण होता है रोग के आरम्भ काल के ५ दिन पहले से लेकर एक सप्ताह बाद तक यह उसके मुख में देखा जाता है तथा उसके पुरीष में २-३ सप्ताह पहले से लेकर २-३ मास बाद तक भी देखा जाता है। ऐसे मृदु रोगियों से जिनमें यह रोग इतने अस्पष्ट रूप में होता है कि इसका पता ही नहीं चलता, तथा रोगी के निकट सम्पर्क में आये व्यक्तियों से कि जिनमें इस Virus का प्रवेश अज्ञात रूप में हो जाता है यह उनके मुख से निकले छींटों के द्वारा तथा उनके पुरीष के कुछ अंश के जल और भोजन द्रव्यों में प्रविष्ट हो जाने से दूसरों में संक्रमण करता है। क्योंकि बड़े व्यक्तियों के सीरम में इस Virus के विपरीत Antibodies उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये उन्हें यह रोग अधिकतः नहीं होता। छोटे बालकों में जिनमें अभी तक इसके विपरीत ये उत्पन्न नहीं हो पाये हैं यह रोग सुगमता से हो जाता है इसलिये बहुधा यह बालकों में होता दिखता है। और क्योंकि बड़ी आयु के व्यक्तियों के सीरम में इस Virus के विपरीत Antibodies पाये जाते हैं जिससे पता चलता है कि अनेकानेक व्यक्तियों को यह रोग अज्ञात और अस्पष्ट रूप में हो चुका होता है। बालकों में जिनमें इस Virus के विपरीत प्रतिरोधक शक्ति भी उत्पन्न नहीं हो पाती उनमें प्रभाव तथा Medulla के anterior horns के cells पर इसका दुष्प्रभाव होता है तथा जिनमें यह शक्ति भी उत्पन्न हो जाती है उनमें यह दुष्प्रभाव नहीं होता।

यह Virus प्रयुक्त होने वाली अनेक जीवाणुनाशक औषधियों से नहीं मरता परन्तु ६० सेन्टिग्रेड डिग्री पर ३० मिनट तक रखने से अर्थात् Pasteurization की विधि से मर जाता है। बर्फ की पेटी में भी महीनों रखने से यह नष्ट नहीं होता। यह एक प्रकार का न होकर तीन किस्म (Types) का पाया जाता है। तीनों किस्म का Virus आदि से उत्पन्न है।

गर्मी में अर्थात् ग्रीष्म ऋतु तथा शरद काल में इसका संक्रमण सुगमता से होता है। इस प्रकार गर्मी इस रोग के प्रसरण में सहायता करती है।

मुख में या गले में कोई घाव हो जैसे कि दांत निकाला गया हो या Tonsilleclomy का शल्य कर्म हुआ २ हो तथा यदि अतिसार के कारण आंत में शोथ हो तो इस Virus का इन स्थानों की लसीका वाहिनियों द्वारा शरीर में प्रवेश सुगमता से हो जाता है। क्योंकि इसमें नाड़ियों के लिये विशेष आकर्षण रहता है। (यह Neurotropic है) लसीका व रक्त में से यह विष Neurones में चला जाता और उनके द्वारा ऊपर को प्रसरण करता है। परन्तु इसकी वृद्धि नाड़ी सम्बन्धी सैलों में ही होती है।-इसलिये सुषुम्ना काण्ड के चेष्ठा सूत्रों से सम्बन्धित Anterior Horns के सैलों में ही इनकी वृद्धि होती है। इस Virus के संक्रमण काल में या रोग की प्रारम्भिक अवस्था में जिन मांस पेशियों पर अधिक कार्य भार पड़ता है उनमें ही पक्षाघात के होने की अधिक आंशका रहती है।

विकृति :-

सुषुम्ना काण्ड में विशेषत: उसके कटि प्रदेशीय उभार (Lumber Enlargement) में और कभी कभी उसके ग्रीवा प्रदेशीय उभार (Cervical Enlargement) में शोथ दृष्टिगत होता है तथा सूक्ष्म वीक्षक द्वारा देखने से काले भाग में विशेष शोथ होता है। श्वेत भाग में तथा आवरणों (Pia तथा Arachnoid) में भी श्वयथु का लक्षण प्रतीत होता है जो सुषुम्ना के Ant. Median Fissure पर विशेष होता है। रक्तवाहिनियों में रक्त संचय भी विशेष होता है। उनके आसपास श्वेत कण (Lymphocytes तथा Polymorphs) अधिक संख्या में संचित होते हैं। अनेकानेक Anteriorhorns के सैलों में मृत्यु (Necrosis, Chromatolysis Nissel Bodies Dissolution) की प्रक्रिया न्यूनाधिक हो जाती है। प्रारम्भ में अनेक सैल इस रोग से अर्थात् प्रारम्भिक शोथ से ग्रस्त होते हैं पर धीरे धीरे उनमें से बहुत से सैल ठीक हो जाते हैं (और Neurones ... हो जाते हैं)। कुछ एक सैल स्थायी तौर से मृत हो जाते हैं। जो स्थायी तौर से मृत होते हैं उनके Neurones नष्ट हो जाते हैं (तथा उनके स्थान Neuroglia से ... जाता है)। समीपस्थ रक्तवाहिनियों के आसपास बड़ी मात्रा में संचित हुए Microglia (या Amaeboid) सैल तथा Polymorphonuclear श्वेतकण और Lymphocytes इन मरे हुए सैलों को वहां से उठाकर ले जाते हैं।

तीव्र रोग की अवस्था में Medulla, Pons आदि के Nuclei Cerebellum के Cortex और Precentral Gyrus के सैलों में भी उपर्युक्त विकृति पाई जाती है। इस रोग में मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal द्रव) कुछ बढ़ा होता है। उसमें प्रोटीन तथा सैलों (Lymphocytes तथा Polymorphs) की संख्या भी बढ़ी हुई होती है।

मृत मांस की परीक्षा करने पर उसमें लघुता (Atrophy) तथा वसा वृद्धि की विकृति पाई जाती है। इस प्रकार रोगी के शरीर में यह Virus, Motor Cortex, Diencephalon, Mesencephalon, Medulla-Oblongata, Pons तथा Spinal Medulla सूक्ष्मान्त्र और गले की दीवार में तथा पुरीष में पाया जाता है। रोगी के रक्त में यह नहीं मिलता।

लक्षण :-

सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी (Spinal Form of Poliomyelitis) संक्रमण के लगभग १० दिन बाद इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। साधारणत: इसका परिपाक काल ४ से ३० दिन तक माना जाता है। सम्भवत: यह रोग इतना ही व्यापक है जितना खसरा (Measles) परन्तु बहुधा इसके अव्यक्त रुप में होने से इसकी पहचान नहीं हो पाती है। इस प्रकार (१) कभीकभी यह रोग बालक को होता है पर व्यक्त रुप में नहीं होता जिससे इस रोग के होने का पता भी नहीं चलता। (२) कभी कभी इस विष के रक्त पर दुष्प्रभाव पड़ने से अर्थात् Viremia के होने से इस रोग के प्रारम्भिक लक्षण जैसे ज्वर, हड़फूटन (Malaise) सिरदर्द, शरीर में दर्द, गले में दुखन के लक्षण होते हैं। इनके साथ अतिसार का लक्षण भी हो सकता है। ये लक्षण एक दो दिन रहके ठीक हो जाते हैं। इनको देखकर यह रोग Poliomyelitis है ऐसा नहीं कहा जा सकता (बहुधा Cold या Gastrointestinal रोग हुआ ऐसा माना जाता है)। पर यदि आसपास कहीं यह रोग हो गया हो या हो रहा हो तो इसका अनुमान ही किया जा सकता है। इसे इस रोग का अव्यक्त या मृदु (Sub-Clinical या Mied या Abortive) रुप ही कह सकते हैं। (३) अपने वास्तविक रुप में जब यह रोग होता है तब उसके क्रमश: तीन रुप होते हैं। प्रथम रुप में Virus के गले व नाक में स्थानिक प्रभाव से जुकाम व गले में दुखन के लक्षण होते हैं। आंत में उसके दुष्प्रभाव से वमन तथा अतिसार अथवा मलबन्ध के लक्षण होते हैं तथा रक्त पर इसके दुष्प्रभाव से ज्वर १०२-१०३ डिग्री तक हो जाता है। वह सहसा प्रारम्भ होता और सर्दी के साथ चढ़ता है। शिर दर्द, शरीर में दर्द, तन्द्रा, अरति और क्रोध शीलता के लक्षण भी होते हैं। ये ज्वर आदि लक्षण एक दो दिन रह के शांत हो जाते हैं। इसे इस रोग का प्रारम्भिक रुप (Initial Phase) कहते हैं। इन लक्षणों के बाद फिर इसका मस्तिष्कावरण सम्बन्धी रुप आरम्भ होता है जिसमें Meninges के ग्रस्त होने के सूचक लक्षण होते हैं। इसे इसका दूसरा मस्तिष्क सम्बन्धी रुप (Meningeal Phase) कहते हैं। इसमें रोगी को तीव्र शिर: शूल तथा तन्द्रालुता रहती है। वह उदासीन सा पड़ा होता है, स्पर्श प्रकाश आदि को सहन नहीं करता। क्रोधी हो जाता है, डरता है, उसका चेहरा लाल हो जाता है।

उसकी कमर की तथा ग्रीवा की मांस पेशियों में स्तब्धता पाई जाती है। इस प्रकार यदि ग्रीष्म ऋतु में छोटे बालक में ये लक्षण पाये जायें तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये। इन लक्षणों के साथ कुछ कुछ मूत्राघात (Retention) का लक्षण भी हो सकता है। हो सकता है कि इस अवस्था तक पहुंच कर भी यह रोग २-३ दिन में शान्त हो जाय और इसके बाद का पक्षाघात का रूप ना ही हो। उपर्युक्त मृदु रूप या Minor Illness के विपरीत इसे इस रोग का प्रधान रूप या Major Illness कहते हैं। सौभाग्य से बहुधा यह रोग इसी पक्षाघात शून्य Non Paralytic Major रूप में होकर भी ठीक हो जाता है। पर कभी कभी (•१ से १% रोगियों में) इसके बाद इसका पक्षाघात का रूप भी आरम्भ होता है। जो रोग के आरम्भ होने के दूसरे, तीसरे, चौथे या पांचवें दिन होता है। १,१½ दिन वृद्धि करता है। फिर एक सप्ताह तक उसी अवस्था में रहता है और उसके बाद कुछ सप्ताहों तक पक्षाघात का लक्षण शान्त होता होता बहुत कुछ ठीक हो जाता है। अर्थात् प्रारम्भ में जितना पक्षाघात होता है अन्त में उसका एक अंशमात्र ही रह जाता है, शेष ठीक हो जाता है जिसका अभिप्राय यह है कि जो सेल अंश मात्र में इस Virus के द्वारा प्रभावित होते हैं उनसे सम्बन्धित मांस पेशियां क्रमशः बहुत कुछ ठीक होती जाती हैं। जो सुषुम्ना काण्ड के सेल प्रभावित होने से बच गये हैं उनसे सम्बन्धित मांस पेशियां पूर्णतया ठीक हो जाती हैं। केवल जो सेल पूर्णतया मृत हो गये हैं उनसे सम्बन्धित मांसपेशियां ही ठीक नहीं हो पातीं। तीन सप्ताह बाद भी जिन मांसपेशियों पर Faradic बिजली का प्रभाव होता दीखता है वे ठीक हो जायगी ऐसा समझना चाहिये। जिन मांसपेशियों ने ठीक होना होता है वे प्रायः तीसरे महीने के अन्त तक ठीक हो जाती हैं। जिन मांस पेशियों ने ठीक नहीं होना होता वे प्रारम्भ से ही शिथिल होतीं, शीघ्र ही आकार में छोटी हो जातीं तथा उनके कारण अंग में संकुचन (Contracture) का लक्षण हो जाता है।

पक्षाघात प्रायः किन्हीं मांसपेशियों में होता है सारे अंग में नहीं होता। तथापि इस रोग के कारण एकांग घात, या दोनों जंघाओं में घात, या चारों शाखाओं में घात हो सकता है तो भी दोनों टांगों में से किसी एक टांग की कुछ एक पेशियों में यह रोग विशेष होता है। जैसे गिट्टे पर पैर को सकोड़ने वाली (Dorsiflexor) मांसपेशियों (Peroneus Tertius, Tibialis Anterior) में तथा जानु और वंक्षण संधि पर टांग को फैलाने वाली मांसपेशियों (Quadriceps) (Extensors में रोग विशेष होता है) में पक्षाघात विशेष होता है। बाहु में Deltoid नामक कन्धे की मांस पेशी में पक्षाघात विशेष होता है। यह पक्षाघात शिथिलता युक्त

(Flaccid) तथा वेदना और स्पर्शाक्षमता के लक्षण से युक्त होता है। इसमें Deep तथा Super Ficial सर्व प्रतिक्षेप (Reflexes) न्यूनाधिक लुप्त होते हैं। जिस अंग की मांस पेशियों में यह रोग होता है रोग के अच्छा हो जाने पर भी उसकी वृद्धि यथावत् नहीं होती अर्थात् एक टांग या बांह छोटी रह जाती है।

बाहुओं की मांस पेशियों में पक्षाघात हो अर्थात् सुषुम्ना काण्ड के उपरले उभार (Cervical Enlargement) में रोग का दुष्प्रभाव होतो पसलियों की पेशियों या Intercostals में भी पक्षाघात हो सकता तथा Diaphragm मांस पेशी में भी इसका प्रभाव हो सकता है। इन अवस्थाओं में श्वास कर्म फेल होने लगता है। अर्थात् श्वास तथा प्रश्वास उथला हो जाता है, रोगी गहरा श्वास नहीं ले सकता, थोड़ी देर के लिये भी वह श्वास को रोक नहीं सकता, एक तरफ की Intercostals के निर्बल होने से दोनों तरफ छाती की चेष्ठा एक सी नहीं होती, अन्त: श्वास के समय उभार की नीचे की पसलियां तथा पसलियों के बीच के प्रदेश अन्दर को धंसते हुऐ दीखते हैं।

मस्तिष्क सम्बन्धी पक्षाघात :- (१) Bulbar Poliomyelitis:-

इस रोग के सूक्ष्म विष या Virus के नीचे से ऊपर की ओर प्रसरण कर जाने से या Tonsillectomy के शल्यकर्म के बाद गले में इस विष के शरीर में संक्रमण करने से Medulla Oblongata के १० वीं मस्तिष्क नाड़ी के Nucleus Ambiguus पर इसका दुष्प्रभाव हो जाय तो तालु, गले, और कण्ठ के एक ओर या दोनों ओर पक्षाघात हो जाता है। परिणामत: तालु पीछे गले की ओर शिथिल होकर गिर जाता है, निगलना कठिन हो जाता है (Dysphagia)। गले के प्रदेश में मुख का स्राव अधिक मात्रा में जमा हो जाता है। भोजन के कुछ अंश के श्वास मार्ग में चले जाने और वहां जीवाणु संक्रमण करदेने का भय भी रहता है। एक या दोनों स्वर तन्त्रियों (Vocal Cords) में पक्षाघात होने से भाषण अस्पष्ट हो जाता है। तालु के निर्बल हो जाने से मुख में डाला द्रव नाक से बाहिर वापिस आ जाता है। Medulla में विद्यमान Glossopharygeal या ९ वीं मस्तिष्क नाड़ी के Nucleus में रोग हो जाय तो गले के एक ओर की मांस पेशियों में पक्षाघात हो जाता है। वहीं पर १२ वीं नाड़ी (Hypoglossal Nerve) के केन्द्रीय सेलों पर भी इस विष का दुष्प्रभाव हो जाय तो जिव्हा में भी पक्षाघात हो जाता है जिससे निगलने व बोलने में कठिनता होती है। वहीं पर ११ वीं मस्तिष्क नाड़ी (Spinal Accessory) का भी Nucleus है जहां से गले व कण्ठ की चेष्टावाही सूत्र आते हैं। उसके ग्रस्त होने से भी इन अंगों में निर्बलता

हो जाती है । सातवीं मस्तिष्क नाड़ी का Nucleus,Pons के निचले भाग में है उसके ग्रस्त होने से एक ओर या दोनों ओर चेहरे की मांसपेशियों में पक्षाघात हो जाता है । Medulla तथा Pons में विद्यमान श्वास-केन्द्र तथा रक्त-संचार केन्द्र ग्रस्त हो जाय तो श्वास उथला हो जाता, विषम हो जाता, बीच बीच में कुछ देर रुक जाता और अन्त में बन्द हो जाता है । रक्त संचार केन्द्र के ग्रस्त होने से चेहरा लाल हो जाता, हृदय गति तीव्र हो जाती और नाड़ी गति विषम हो जाती है ।

रोग के आरम्भ में यदि मनोविभ्रम तथा तन्द्रालुता के लक्षण हों, श्वास प्रश्वास में विषमता हो, त्वचा व आंखों मे लाली हो, नाड़ी में विषमता हो तो Medulla के ग्रस्त होने का अनुमान कर लेना चाहिये । इस रूप में यह रोग भयंकर होता है ।

Brain Sten किस्म के पक्षाघात में नेत्र सम्बन्धी छटी, चौथी या तीसरी मस्तिष्क नाड़ियों में से कोई नाड़ी इस रोग में ग्रस्त हो सकती है जिससे किसी नेत्र सम्बन्धी मांस पेशी में पक्षाघात हो जाता है । यदि Cerebellum ग्रस्त हो जाय, शिर में तीव्र शूल, शिरोभ्रम, शिर को हिलाने पर वमन, अव्यक्त भाषण के लक्षण होते हैं । ऊर्ध्व मस्तिष्क (Cerebrum) के ग्रस्त होने से आक्षेप, पक्षाघात, उरुस्तम्भ आदि लक्षण जिनमें Plantar Reflex ऊपर की ओर होता है हो जाते हैं । किसी रीढ़ की हड्डी से सम्बन्धित किसी मांस पेशी (Spinal Muscles) में यह रोग हो तो पृष्ठ वंश में आगे पीछे की दिशा में या एक बाजू की ओर वक्रता उत्पन्न हो जाती है जिसे कुब्जता (Scoliosis-Kyphosis) कहते हैं ।

रोग विनिश्चय :-

प्रारम्भिक अवस्था में इस रोग का भ्रम Influenza Tonsillitis, प्रतिश्याय आदि से हो सकता है पर ये रोग ग्रीष्म ऋतु में नहीं होते । यदि ज्वर के साथ बालक की ग्रीवा पीठ व ऊर्ध्व जंघा की Hamstring मांसपेशियों में स्तब्धता का लक्षण मिले तो इस रोग का सन्देह हो जाना चाहिये । उपर्युक्त मांस पेशियों के स्तम्भ के कारण उसकी टांग को फैला नहीं सकते ।

मस्तिष्क द्रव (Cerebrospinal द्रव) की परीक्षा करने से श्वेत कण प्रति क्युबिक मिलिमीटर में ८ से अधिक हों और प्रोटीन १०० सी०सी० में ३५ मिलिग्राम से अधिक हो तो इस रोग का सन्देह करना चाहिये । रक्त परीक्षा करने पर श्वेताणु वृद्धि का लक्षण भी पाया जाता है। Cerebrospinal या कण्ठ कुब्ज ज्वर से इसका सन्देह न होना चाहिये । उसमें पक्षाघात का लक्षण नहीं होता, उसमें ग्रीवा स्तम्भ भी प्रबल होता है ।

साध्यासाध्य तथा उपद्रव :-

रोग के आरम्भ में यदि बालक में व्याकुलता अथवा भयातुरता के लक्षण हों तो ये अशुभ सूचक होते हैं । चारों शाखाओं में पक्षाघात हो गया हो तो वह भी असाध्य होता है । श्वास मांसपेशियों में पक्षाघात भी रोग की भयंकरता का सूचक लक्षण है । ६ से १२ मास तक बीत जाने पर भी जितना पक्षाघात रह जाता है वह फिर ठीक नहीं होता जो मांस पेशी मृत होकर ठीक नहीं होती उसमें लघुता एवं संकुचन के हो जाने से नाना प्रकार के पाद वैषम्य (Talipes) के उपद्रव हो जाते हैं । Peroneal मांसपेशियों में पक्षाघात होने से एड़ी ऊपर उठ जाती, रोगी पैर के बाहर के अगले किनारे पर चलता है । (Talipes Equino-varus) Tibia की मांसपेशियों में पक्षाघात होने से रोगी अंगूठे से लेकर एड़ी तक के पांव के अन्दरले किनारे के भार चलता है । (Talipes Valgus) उस और जानु की प्रसारक मांसपेशियों में इस रोग का दुष्प्रभाव होने से इनमें न्यूनाधिक संकोच रह सकता है । इसी प्रकार कटि की मांस पेशियों में न्यूनाधिक पक्षाघात हो जाने से रीढ़ की हड्डी एक तरफ मुड़ जाती है । (Scoliosis).

चिकित्सा :-

प्रतिरोधक (Preventive) चिकित्सा :-

Salk's Killed Virus Vaccine-१९५९ में जब बन्दर के गुर्दे सम्बन्धी सैलों के Tissue Culture में इस रोग के Virus की खेती करके इसे बड़ी मात्रा में प्राप्त किया जा सका तब पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के डाक्टर Jonas Salk ने इस Virus की तीनों किस्मों की खेती करके उसे Formal Dehyde से मृत या निष्क्रिय करके एक Vaccine तैयार किया जिसे Salk का Killed या Inactivated Virus Vaccine कहते हैं । इसके तैयार करने में ध्यान रखा गया कि (१) इसमें Virus का कुछ अंश जीवित न रहे ।(२) उसमें और किसी जीवाणु का मिश्रण न होने पाय । (३) उसमें बन्दर के गुर्दे का कोई Antigen भी न आने पाय पर उसमें केवल Poliomyelitis Virus का Antigen पूर्ण रूप से रहे । इसकी १ सी०सी० की मात्रा त्वचा या मांस द्वारा १-१ मास बाद ८-६ मास के छोटे बालक को दे दी जाती है । ६-८ मास बाद फिर तीसरी मात्रा दी जाती है । इससे पर्याप्त काल के लिये (लगभग ४ वर्ष के लिये) बालक में इस रोग के Virus के प्रति प्रतिरोधक शक्ति (Immunity) उत्पन्न हो जाती है । Tonsillectomy के शल्य कर्म से पहले इस वैक्सीन का देना उचित समझा जाता है । इस वैक्सीन की स्थानिक या व्यापक कोई प्रतिक्रिया नहीं होती । तथापि देखा गया कि यह Virus कहीं बाहर से आकर फिर भी उस व्यक्ति की आंत में वृद्धि कर

सकता है । यद्यपि वह फिर उसमें रोग का कारण तो नहीं बनता क्योंकि उसके रक्त में Anti Bodies होते हैं । परन्तु उसमें से दूसरे बालकों में जिनमें प्रतिरोधक शक्ति नहीं है पहुंचकर यह रोगोत्पादक बन सकता है ।

सेबिन का मुख से दिये जाने वाला निर्बलीकृत वाइरस वेक्सीन :- Oral Attenuated Poliovirus Vaccine of Sabin:-

डाक्टर सेबिन का जिन्होंने यह वेक्सीन निकाला है कथन है कि इस जीवित परन्तु निर्बलीकृत वेक्सीन के देने से न केवल शरीर में प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होती है जिससे फिर यह रोग नहीं होता पर साथ ही उसकी आंत में भी ऐसी प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि उसमें कहीं बाहर से पहुंचकर यह Virus फिर वृद्धि नहीं कर सकता । इस "मृदु जीवित" वेक्सीन के पेट में जाने पर हलका सा रोग उत्पन्न होता है और उसके बाद शरीर में और आंत में दोनों में वह प्रतिरोधक शक्ति हो जाती है । कि फिर यह सूक्ष्म विष उसकी आंत में नहीं रह सकता और वह रोग का वाहक (Carrier) भी नहीं बन सकता जैसे कि वह Salk के वेक्सीन के लेने के बाद भी रहता था । इस वेक्सीन की जो तीनों किस्मों के Virus से तैयार की जाती है जिसे trivalent vaccine कहते हैं तथा जिसकी ... में दिया जाता है । १-१ मास के अन्तर से तीन मात्राओं के खाण्ड में मिलाके मुख द्वारा खाली पेट पानी के साथ दे देने से फिर इस रोग के होने या इस Virus के आंत में रह जाने दोनों बातों की आशंका नहीं रहती । अब सभी देशों ने इस वेक्सीन की उपयोगिता को स्वीकार कर लिया है । इसके द्वारा उत्पन्न प्रतिरोधक शक्ति या Immunity कम से कम ८ वर्ष तो रहती है । इसके प्रयोग से सम्भव है इस रोग को निर्मूल किया जा सके । बाजार के दूध, भोजन व लोगों के पीने के पानी को मक्खियों से बचाना चाहिये । क्योंकि मक्खियों के द्वारा पुरीष में से इस रोग के Virus का प्रवेश भोजन पदार्थों में हो सकता है । रोग के हो जाने पर उसके सम्पर्क में आने वाले बालकों को gamma globulin injection दे देना चाहिये ताकि उन्हें रक्षा व ... जा सके

प्रतिषेधक चिकित्सा :-

मृदु रूप में रोग हो तो रोगी को ३ सप्ताह और तीव्र रूप में या पक्षाघात युक्त रोग हो तो रोगी को ६ सप्ताह के लिये दूसरों से पृथक करके बिस्तर में रखना चाहिये रखना चाहिये । रोगी के सम्पर्क में आये व्यक्तिओं से बच्चों को ३ सप्ताह तक बचा के रखना चाहिये । सम्पर्क में आने वाले बालकों को gamma globulin ... दे देना चाहिये । रोगी के साथ रहने वाले व्यक्तिओं को चाहिये कि वे मल त्याग के बाद हाथों को भली प्रकार और विशेष रूप से साफ करें । उन्हें दूसरों को भोजन देने का काम सर्वथा नहीं करना चाहिये । ग्रीष्म ऋतु में जब यह रोग आसपास किसी को हो तो जल व दूध उबाल के लेने चाहियें फल भली प्रकार स्वच्छ करके लेने चाहियें । बालकों को बिना पकाया जल दूध व भोजन सर्वथा नहीं देना चाहिये । उन दिनों Tonsillectomy का शल्यकर्म नहीं करना चाहियें ।

ग्रीष्म ऋतु में छोटे बालक को ज्वर के साथ यदि तन्द्रालुता चिड़चिड़ापन, ग्रीवा में स्तब्धता के लक्षण भी हों और इस रोग का स्वल्प सा सन्देह हो तो बालक को ज्वर काल में तथा ३-४ दिन के लिये बाद में भी पूर्ण विश्राम के साथ लिटाये रखना चाहिये। विश्राम से पक्षाघात के लक्षण के होने की आशंका कुछ कम हो जाती है। जब यह रोग भयंकर रूप में होता है तब कटि तथा ग्रीवा में स्तब्धता का लक्षण अधिक स्पष्ट होता है। जिससे उठ के बैठ जाने व अपने गोडों को मस्तक लगा सकने में रोगी को कठिनता होती है। इस अवस्था में उत्पन्न हुऐ पक्षाघात से युक्त टांग तथा पैर को ज्वर काल में तथा बाद में भी १-१½ मास के लिये पूर्ण विश्राम में रखना चाहिये। मृत अंग पर किसी प्रकार की खींच न पड़े उसमें विषमता न आ जाय इसके लिये पांव के तुलुए पर फट्टे आदि का सहारा रखना चाहिये तथा दोनों और तकिये या रेत की थैलियां रखी रहनी चाहियें या फट्टियों (Splints) के द्वारा अंग को अपनी प्राकृतिक स्थिति में रखना चाहिये। अंग में तीव्र वेदना या स्तम्भ का लक्षण जब तक हो तब तक उबलते पानी में से निकाले कपड़े को निचोड़ कर उसके द्वारा ३-३ घन्टे के अन्तर से ½,½ घन्टे के लिये या Short Wave Diathermy के द्वारा उस अंग की सिकाई करनी चाहिये। ग्रस्त अंग को गर्म रूई में लपेट कर रखना चाहिये। उसमें रक्त की आमद को बढ़ाने के लिये Priscol का युवकों में २५ मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार प्रयोग भी करना चाहिये। वेदना शामक औषधियां (Aspirin- ५-१० ग्रेन ३ बार) का भी प्रयोग करना चाहिये। श्वास पेशियें के निर्बल होने की आशंका में निद्रा के लिये Barbitones का प्रयोग नहीं करना चाहिये। किसी Nondepressing Sedative जैसे Ethchlorvynol (Placidy) का प्रयोग किया जा सकता है। रोगी को जल पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये। ताकि मल मूत्र खुलकर आते रहें। मलरोध हो तो बस्ति द्वारा या Neostigmine (Prostigmine) ½ मिलि० का सूचीवेध द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

कन्धे की मांस पेशियों में पक्षाघात हो तो श्वास पेशियों में पक्षाघात के होने की आशंका कर लेनी चाहिये। यदि बोलने से या एक दो तीन गिनने से उसे सांस चढ़ जाता हो या एक गहरा सांस लेकर वह २० तक न गिन सकता हो, यदि श्वास उथला हो, या यदि वह श्वास लेकर पेट को न फुला सकता हो तो श्वास पेशियों की निर्बलता की आशंका कर लेनी चाहिये। तब Artificial Respiration का प्रयोग करना चाहिये।

Medulla रोग ग्रस्त हो अर्थात् गले में पक्षाघात होने से गले में श्लेष्म स्राव संचित होने लगा हो, जल देने पर श्वास घुट जाता हो तो रोगी का मुंह कुछ नीचे की ओर करके उसकी चारपाई के पांयते को १८ डिग्री ऊंचा कर देना

चाहिये। यदि Medulla के अन्दर रोग होने के साथ साथ श्वास पेशियों में भी निर्बलता या पक्षाघात हो तो Tracheotomy का शल्यकर्म आवश्यक हो जाता है। जिसमें ग्रीवा को पीछे की ओर फैला (Extend) करके Cricoid -- के लेवल पर चीरा देकर उसे दात न करते हुऐ Cricoid के नीचे प्रथम Tracheal Ring में से ट्यूब गले में गुजारी जाती है। इस ट्यूब पर Rubber Cuff लगा के Pressure Respirators या Radcliffe Respiration Pump के द्वारा Artificial Respiration दिया जाता है। यह चिकित्सा हस्पताल में विशेषज्ञों के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। जलपान तथा भोजन Nasal Tube के द्वारा दिया जाता है। मूत्राघात के लिये Catheter का प्रयोग या Carabachol (Doryl) का २ मिलि०मात्रा में मुख द्वारा या $\frac{3}{4}$, $\frac{1}{2}$ मिलि०मात्रा में त्वचा द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

रोग शान्त हो जाने पर अर्थात् रोग के प्रारम्भ होने के १ मास बाद ६ मास के समय के व्यतीत होने से पहले मृत मांसपेशियों में रक्त संचार को बढ़ाने के लिये Radiant Heat तथा मालिश के प्रयोग से लाभ होता है। पर प्रबल रोग की अवस्था में मालिश का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मृत अंग की मांस पेशियों की शक्ति वृद्धि के लिये पहले Passive और फिर Active व्यायाम करने चाहिये। अर्थात् पहले चिकित्सक अपने बल से और फिर रोगी अपने बल से व्यायाम करे।

स्तम्भ युक्त पक्षाघात, कम्प युक्त पक्षाघात :- Paralysis Agitans, Parkinson's Disease:-

पहले पहल १८१७ में Shoreditch के एक चिकित्सक ~~Shore-Ditch~~ James Parkinson ने इस रोग की ओर हमारा ध्यान खींचा था। ५०-६० वर्ष की ढलती आयु में विशेषत: पुरुषों में बहुत धीरे धीरे होने वाला यह एक रोग है जिसमें अंगों की सामान्य मृदुता एवं लचक क्रमश: कम होती जाती है और उसके स्थान पर उनमें स्तब्धता (Rigidity) आने लगती है। पहले यह लक्षण एक ओर के हाथ में या अग्रबाहु में प्रतीत होता है फिर क्रमश: उस ओर की ही टांग में यह प्रकट होने लगता है। इस प्रकार हो सकता है कि यह स्तब्धता का और उसके कारण उत्पन्न होने वाली निर्बलता का लक्षण वर्षों तक आधे अंग में ही सीमित रहे। पर कुछ काल बाद यह दूसरी ओर की बाहु में और टांग में भी आरम्भ हो जाता है। आरम्भ होने से २-३ वर्ष तक धड़, ग्रीवा, चेहरे आदि शरीर की सभी मांस पेशियों में व्यापक स्तब्धता का लक्षण व्याप्त हो जाता है। चलते समय जैसे दोनों बाहुएं झूलती हैं। रोगी में स्तब्धता के कारण उनका यह झूलना बन्द हो जाता है। चेहरे पर हर्ष, शोक, आदि भावों की सूचक चेष्टाओं के लुप्त हो जाने से वह भी भाव शून्य सा दीखने लगता

है । पलकों में झपकने की चेष्टा कम हो जाती या लुप्त हो जाती है । जीभ, होठों और कण्ठ की मांस पेशियों की स्तब्धता से रोगी की आवाज़ एक सी चलती है । उसमें पाये जाने वाला उतराव चढ़ाव लुप्त हो जाता है । ग्रीवा की मांस पेशियों की स्तब्धता के कारण रोगी को एक तरफ को मुख मोड़ना हो तो उसे सारा धड़ मोड़ना पड़ता है । टांगों की स्तब्धता के कारण उसकी गति मन्द हो जाती, कदम छोटे छोटे हो जाते तथा उसमें पाये जाने वाली स्वाभाविक स्फूर्ति और लचक जाती रहती है । एक हाथ या दोनों हाथों की अंगुलियों के बीच की Interossei मांस पेशियों के कि जो अंगुलियों को परस्पर पास लाने तथा दूर हटाने का काम करती हैं कठोर हो जाने से अंगुलियां परस्पर जुड़ी रहती हैं । अंगूठा भी प्रथम अंगुलि के आगे अंगुलियों के साथ जुड़ा रहता है । अंगुलियां निचले जोड़ अर्थात् Metacarpophalongeal जोड़ों पर संकुचित तथा अपने बीच के Inter Phalangeal संधियों पर फैली हुई रहती हैं । हाथ के इस तरह कठोर हो जाने के कारण रोगी का लिख सकना कुछ कठिन हो जाता है । उसके अक्षर छोटे छोटे होते तथा अक्षरों की रेखायें कांपती हुई होती हैं ।

स्तब्धता तथा निर्बलता इन दो प्रधान लक्षणों के अतिरिक्त रोगी की मांस पेशियों में कम्प या वेपथु (Tremor) का लक्षण भी होता है । यदि स्तब्धता का लक्षण स्पष्ट हो तो वेपथु का लक्षण कुछ अस्पष्ट सा रहता है । यदि वेपथु का लक्षण अधिक स्पष्ट हो तो स्तब्धता का लक्षण कुछ अस्पष्ट सा होता है । अर्थात् कुछ एक में एक, और कुछ एक में दूसरा लक्षण अधिक स्पष्ट रुप में रहता है । इसलिये यहां इस रोग को कम्प युक्त पक्षाघात या स्तम्भ युक्त पक्षाघात कहा है । यह कम्प का लक्षण हाथ में या अग्रबाहु में आरम्भ होता है और इन्हीं में अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है । पर यह निम्न हनु, ग्रीवा, चेहरे आदि स्थानों पर भी दिखाई पड़ सकता है । और कभी कभी तो सारे अंगों में ही न्यूनाधिक कम्प दिखाई पड़ता है । इसके कारण अंगुलियों तथा अंगूठे में चेष्टा ऐसी होती रहती है कि जैसे हाथ से गोलियां बनाते समय होती है । कलाई पर हाथ के संकुचित और प्रसारित होते रहने या हाथ के अधोमुख ऊर्ध्व मुख होने (Pronation Supination) या अन्दर बाहर की ओर झुकने (Radioulnar Deviation) की चेष्टा होती रहती है । विश्राम के समय यह नियमित रुप से होने वाला कम्प अधिक हो जाता है । किसी प्रकार के मनोविक्षोभ के होने पर भी इसकी गति स्पष्ट और तीव्र हो जाती है पर निद्रा के समय हाथ आदि में होने वाले ये कम्प (Rhythmic Tremors) सर्वथा शान्त हो जाते हैं । इच्छा करने पर भी रोगी इन चेष्टाओं को रोक सकता है । किसी बारीक काम के करते समय हाथों में जो कम्प होने लगता है जिसे Intention Tremor कहते हैं वे विश्राम के समय

न हो के किसी बारीक काम के करते समय भी होते हैं । वे नियमित (Rhythmic) नहीं होते तथा Cerebellum के नियन्त्रण की शिथिलता के कारण होते हैं । उस कम्प से इस रोग के कम्प में बहुत विभिन्नता रहती है । धड़ की मांस पेशियों में स्तम्भ के रहने के कारण रोगी को बिस्तरे में पड़े हुये करवट बदलते समय विशेष कठिनता प्रतीत होती है । मांस पेशियों में हर समय स्तम्भ के रहने से रोगी को शरीर में हलका हलका दर्द भी प्रतीत होता है । पाद तल की मांस पेशियों में स्तम्भ के रहने से पादांगुलियां कुछ नीचे की तरफ संकुचित रहती हैं । जिससे चलते समय उनके दब जाने की आशंका रहती है ।

कारण :-

मस्तिष्क के Basal Ganglia में विशेषत: Lenticular Nucleus के Globus Pallidus में और Substantia Nigra की पोषक धमनियों (Arteries & Capillaries) में धमनी काठिन्य (Arteriosclerosis) रोग के हो जाने से जब उनके सेल नष्ट होते जाते हैं और सेलों के स्थान Glial Tissue या स्नायुतन्तु आता जाता है, तब शरीर की मांस पेशियों में स्तब्धता और कम्प के लक्षण उत्पन्न होने लग जाते हैं । इन Ganglia के रुग्ण होने से मांसपेशियों में स्तब्धता या अति चेष्टा क्यों होती है यह बात अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई है ।

यह रोग एक बार प्रारम्भ होकर धीरे धीरे बढ़ता ही जाता है । तथा स्तब्धता का लक्षण क्रमश: सभी ऐच्छिक मांसपेशियों में उत्पन्न होता जाता है । इसी प्रकार कम्प भी एक अंग से दूसरे अंग में प्रसरण करता जाता है । १०-१५ वर्ष तक क्रमश: यह रोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है जिससे अन्त में लिखना, बोलना, पढ़ना, कठिन और कठिनतर होता जाता है। परन्तु रोगी में बुद्धि या संज्ञाशीलता अन्त तक पूरी तरह बनी रहती है ।

चिकित्सा :-

इस रोग की कोई सन्तोषजनक चिकित्सा नहीं । जिन उपायों से नाड़ी मण्डल का पोषण बढ़े जैसे पोषक आहार द्रव्यों विटामिन बी, कम्पलेक्स, आदि पोषक औषधियों का प्रयोग कराना चाहिये । शरीर की मांस पेशियों के पोषण को बढ़ाने के लिये नित्य मालिश होनी चाहिये । जितनी व्यायाम सहन हो सके उतनी नित्य करनी चाहिये । हाथ, कलाई, अग्रबाहु, ग्रीवा, अंगुलियां इनकी मांसपेशियों की व्यायाम प्रतिदिन होती रहें तो रोग के वेग को रोका जा सकता है । शेष इसकी चिकित्सा केवल लाक्षणिक है। शरीर की मांस पेशियों मे बढ़े हुये स्तम्भ को शान्त रखने के लिये कुछ एक औषधियों का प्रयोग जारी रखना पड़ता है । उदाहरणत:

Belladonna और उसका Alkaloid Atropine जो स्तम्भ शामक (Parasympatholytic, Antispasmodic) है इस रोग में दिया जाता रहा है ।

(१) Tr.Belladonna १५ बुन्द दिन में ३ बार आरम्भ करके क्रमश: बढ़ाते हुए इसे ३० बुन्द मात्रा में दिन में तीन बार तक दिया जाता है । परन्तु यदि आंख में Glaucoma हो तो इसे नहीं दिया जा सकता । इसके अति प्रयोग से [struck-over] दृष्टि में कुछ धुन्धलेपन, मुख शोष, शिरोभ्रम, हृत्कम्प के उपद्रव हो सकते हैं ।

(२) Atropine Solution ½ प्र०श० ३ बुन्द की मात्रा में दिन में ३-४ बार प्रारम्भ करके ३-३ दिन बाद १-१ बुन्द बढ़ा के इसे १० बुन्द मात्रा में दिन में तीन बार दिया जाता है । इसके अधिक मात्रा में लेने से भी उपर्युक्त उपद्रव हो सकते हैं । अब Atropine सदृश प्रभाव की जिन कृत्रिम औषधियों का प्रयोग किया जाने लगा है उनमें से कुछ एक निम्नलिखित हैं-

(3) Benzhexol Hydrochloride (Artane, Lederly) --- जो स्तम्भ शामक, कम्प शामक और निर्बलता हर है पहले १ या २ मिलि० दैनिक मात्रा में ३ बार विभक्त करके दी जाती है । फिर क्रमश: इसकी मात्रा बढ़ाते हुए इसे ५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार तक दे सकते हैं । इसे इस रोग की उपर्युक्ततम औषधि समझा जाता है । औषधि का प्रयोग [struck-over] दिन में करना चाहिये । [struck-over] सांय या रात को इसके प्रयोग करने से कोई लाभ नहीं । इसके साथ रात को ५०-१०० मिलि० की एक मात्रा Diphenhydramine (Benadryl) की दे देनी चाहिये । इस औषधि का प्रभाव Atropine के समान भी है । साथ ही शामक (Sedative) तथा कम्प हर भी है ।

(४) Procyclidine Hydrochloride (Kemadrin) B.W. यह एक स्तम्भ शामक औषधि है जिससे Atropine से होने वाले उपद्रव भी विशेष नहीं होते । इसे २.५ से ५ मिलि० मात्रा में दिन में ३ बार दिया जाता है ।

(५) Ethopropazine Hydrochloride (Parsidol तथा Lysivane. May & Baker) के २५-३० मिलि० मात्रा में दिन में ३-४ बार देने से स्तम्भ में शान्ति मिलती है । कम्प और अशक्ति को दूर करने के लिये भी यह औषधि लाभदायक है ।

(६) Cycrimine Hydrochloride (Pagitane) के १.२५ से २.५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से Artane के समान ही लाभ होता है । इसके अधिक प्रयोग हो जाने से भी मुख शोष का उपद्रव नहीं होता ।

(७) Orphenadrine Hydrochloride (Disipal) ५० मिलि० मात्रा में ३ बार देने से स्तम्भ शामक है ।

(८) Coramiphen Hydrochloride (Parpanit geigy, तथा Panparinit) भी स्तम्भ शामक औषधि है जिसे पहले १२.५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन

बार प्रारम्भ करके फिर क्रमश: इसे इसी मात्रा में चार बार फिर पांच बार दिया जाता है। इसकी प्रत्पम दैनिक मात्रा १२५ मिलि० तक है।

(६) Diphemanil Methyl Sulphate(Diparcol) भी स्तम्भ शामक है। ५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार प्रारम्भ करके १ ग्राम दैनिक मात्रा तक दी जा सकती है। जिसमें $\frac{3}{8}$ ग्राम, प्रात: $\frac{3}{8}$ ग्राम दोपहर, तथा $\frac{3}{4}$ ग्राम सांय ५ बजे दे दी जाती है।

(१०) Stromonium के Tincture के देने से भी कम्प तथा स्तम्भ शान्त होते हैं। इसे पहले १५ बून्द मात्रा में आरम्भ करके ६० बुन्द मात्रा तक दिन में तीन बार दिया जाता है।

(११) Diphenhydramine Hydrochloride (Benadryl) के ५० मिलि०मात्रा में दिन में दो बार देने से कम्प के शान्त होने में भी सहायता मिलती है। यह कुछ निद्राजनक होती है। अत: सांय या रात को इसका प्रयोग होना चाहिये।

(12) Benztropine (cogentin) की २ मिलि. की गोलियां भी [illegible] पहले आधी गोली दिन में १ बार देनी चाहिये।

शरीर की वेदना की शान्ति के लिये Aspirin १० ग्रेन मात्रा में दी जासकती है। इससे निद्रा में भी सहायता मिलती है। अत: रात को इसका या Phenobarbitone का १ ग्रेन मात्रा में या Soneryl का $१\frac{१}{२}$ ग्रेन मात्रा में प्रयोग किया जा सकता है। मानसिक विषाद-Depression [illegible] भी हो तो Amphetamine भी दें। मानसिक [illegible] तो [illegible] Equanil [illegible] औषधि दें।

उरुस्तम्भ Paraplegia:-

अभिप्राय :-

दोनों निम्न शाखाओं में ही चेष्टा शक्ति न्यून हो जाय तो इसे उरुस्तम्भ (Paraplegia) कहते हैं।

सुषुम्ना काण्ड में रोग हो तो उसके चेष्टा सूत्र प्रधानत: ग्रस्त होते हैं :- सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) के किसी प्रदेश पर आघात लग जाने या दबाव (Compression) पड़ जाने से सबसे पहले उसमें ऊपर से नीचे उतरने वाले ऐच्छिक चेष्टा सूत्रों (Lateral Column) पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है और प्राय: सुषुम्ना के दोनों ओर इसका असर होता है। जिससे इसे Transverse Myelitis भी कहते हैं। अत: पहले पहल टांगों से इच्छानुसार चेष्टा करने की शक्ति घट जाती है। यदि आघात गहरा पहुंचा हो या बाहर का दबाव अधिक अधिक होता जाय तो फिर काल बाद संज्ञावाही सूत्रों के भी दब जाने से टांगों में संज्ञा (सुप्ति या चिमचिमाहट) सम्बन्धी लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। सुषुम्ना काण्ड (Cord) के ग्रैवेय (Cervical) भाग के उपरले प्रदेश में दबाव पड़ जाय तो क्योंकि बाहु में जाने वाले निम्न चेष्टा सूत्र (Lower Motor Neurones) भी ग्रस्त हो जाते हैं। इसलिये बाहुओं की मांसपेशियों में न्यूनाधिक शिथिलता युक्त घात (Flaccid Paralysis) हो जा है और टांगों में जाने वाले चेष्टा सूत्रों (Upper Motor Neurones) के ग्रस्त होने

से टाँगों में स्तब्धता युक्त निर्बलता (Spa tic Weakness) हो जाती है। इस प्रकार ऊर्ध्व तथा निम्न चारों शाखाओं में निर्बलता का लक्षण हो जाता है + इसे Quadriplegia कहते हैं।

सुषुम्ना काण्ड का शरीर विज्ञान :-

सुषुम्ना काण्ड (Spinal Cord) ऊपर Medulla Oblongata से आरम्भ होकर पृष्ठवंशास्थि की गुहा में नीचे प्रथम कटि कशेरु (Lumber Vertebra) के निचले किनारे तक उतरता है और लगभग १८ इंच लम्बा होता है। प्रत्येक कशेरु (Vertebra) में ऊपर से नीचे तक इसके दोनों पार्श्वों से एक एक सौषुम्न नाड़ी (Spinal Nerve) निकलती है। इनमें से प्रत्येक नाड़ी एक अग्रिम और एक पश्चिम दो मूलों (Roots) के मिलने से बनती है। सुषुम्ना काण्ड बीच में कृष्ण वर्ण और चारों तरफ श्वेत वर्ण होता है। कृष्णवर्ण भाग सेलों से तथा श्वेत वर्ण भाग सूत्रों से बना होता है। कृष्ण वर्ण भाग के अगले सिरे अर्थात् Anterior Horns के सेलों में से चेष्टावाही सूत्र निकलकर अग्रिम मूल द्वारा शरीर की मांस पेशियों में जाते हैं। पश्चिम ग्रन्थि (Posterior Ganglion) के सेलों में से सूत्र निकलकर त्वचा आदि से प्राप्त संज्ञाओं को ऊपर मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं। इन दो दो सौषुम्न नाड़ियों या दोनों ओर को मिलाकर चार चार मूलों (Roots) के कारण सुषुम्ना काण्ड ऊपर से नीचे तक ३१ खण्डों अर्थात् ८ ग्रैवेय (Cervical) १२ पृष्ठ सम्बन्धी (Dorsal), ५ कटि सम्बन्धी (Lumber), ५ जघन सम्बन्धी (Sacral) तथा एक पुच्छ सम्बन्धी (Coccygeal) खण्ड (Segment) में विभक्त हुआ मान लिया जाता है।

सुषुम्ना काण्ड के बाह्यावरण और पृष्ठवंशास्थि के बीच की स्वल्प से अवकाश (Epidural Space) में फैट तथा शिरा जाल रहता है। बाह्यावरण तथा मध्यमावरण (Arachnoid) के बीच के स्वल्प अवकाश (Subdural Space) में लसीका सदृश द्रव रहता है फिर इस मध्यमावरण तथा सुषुम्ना पर सटकर चढ़े हुये अन्तरावरण (Piomator) के बीच के (Subarachnoid) प्रदेश में Cerebrospinal Fluid रहता है।

पृष्ठ वंशास्थि की अपेक्षा सुषुम्ना काण्ड छोटा होता है। इसी लिये पृष्ठवंशास्थि के ग्रैवेय भाग में पांचवें कशेरु के कण्टक (Vertebral Spine) के सामने सुषुम्ना काण्ड का छटा खण्ड (Segment) होता तथा छटे कशेरु के कण्टक के सामने सातवां खण्ड होता है। पृष्ठ प्रदेश पर कशेरु कण्टकों तथा सुषुम्ना खण्डों में परस्पर दो का अन्तर हो जाता है अर्थात् तीसरे पृष्ठ कशेरु कण्टक के आगे पांचवां पृष्ठ खण्ड (Dorsal

Segment) होता है तथा चौथे पृष्ट कसेरु कण्टक के आगे छटा " पृष्ट खण्ड" होता है। नीचे आकर इनमें परस्पर ३ का फर्क पड़ जाता है अर्थात् १० वें पृष्ट कण्टक (Dorsal Segment) के सामने प्रथम कटि खण्ड (Lumber-Segment) होता है और ११ वें पृष्ट कसेरु कण्टक (Spine) के सामने तीसरा कटिखण्ड (Lumber Segment) होता है। इसी प्रकार १२ वें पृष्ट कसेरु खण्ड के लेवल पर प्रथम जघन सम्बन्धी खण्ड (Sacral Segment) होता है। सुषुम्ना काण्ड के छोटे होने से यह काण्ड प्रथम कटि कसेरु कण्टक (Lumber-spine) के पीछे ही समाप्त हो जाता है। इनमें से प्रत्येक सुषुम्ना काण्ड के अग्रिम मुल (Ant.Root) [redacted] से जिस जिस मांस पेशी को चेष्टा सूत्र जाते हैं उन उन में शिथिलता और कृशता को देखकर अनुमान लगा लिया जाता है कि सुषुम्ना काण्ड (Cord) का अमुक खण्ड रुग्ण है। भिन्न भिन्न खण्डों (Segments) से प्रधानत: जिन जिन मांस पेशियों को चेष्टा सूत्र जाते हैं उनका विवरण यहां दिया जाता है।

४ ग्रैवेय खण्ड (Cervical Segment) से Diaphragm, तथा Trapezius (कन्धो शिर को पीछे करने वाली पेशी) को

५ ग्रैवेय खण्ड (C.Segment) से Supra तथा Infraspinatus, Teresminor, Biceps, Deltoid, Brachialis Anticus, Brachioradialis (Supinator Longus-) अग्रबाहु की संकोचक) को (स्पष्ट है कि इन खण्डों में रोग हो या वाह्य दबाव हो तो बाहु को बाहर ऊपर को उठाने वाली तथा अग्रबाहु को संकुचित करने वाली पेशियों की मृत्यु से अवबाहुक रोग (Brachial Paralysis) होता है।

६ ग्रैवेय खण्ड (Cerv.Seg.) से अग्रबाहु को अधोमुख करने वाली मांस पेशी Pronator Teres, को तथा Pectoralis Major (Clanicular भाग)। Latissimus Dorsi (बाहु की Adductors) को,

७ ग्रैवेय खण्ड (Cer.Seg.) से Triceps (अग्रबाहु की प्रसारक) और कलाई तथा अंगुलियों की प्रसारक (Extensor) मांस पेशियों को,

८ ग्रैवेय खण्ड से कलाई तथा अंगुलियों को संकुचित करने वाली (Flexor) मांस पेशियों को।

१ पृष्ट सम्बन्धी खण्ड (Dorsal १) से Interossci तथा हाथ की छोटी छोटी मांस पेशियों को,

२ पृष्ट सम्बन्धी खण्ड से १० (२D से १० D) तक पसलियों की पेशियां या Intercostal Muscles को

७ पृष्ट सम्बन्धी खण्ड से १२ (७D से १२D) तक कोष्ठ की दीवार की मांस पेशियों को,

१ कटि सम्बन्धी खण्ड (१ Lumber) से Quadratus Lumborum (कटि देशीय पृष्ट वंशास्थि की प्रसारक) को,

२-३ कटि सम्बन्धी खण्डों (२-३ Lumber Segments) से ऊर्ध्व जंघा को अन्दर की तरफ खींचने वाली (Adductor) मांसपेशियां तथा Psoas Major तथा Minor Sartorius (ऊर्ध्व जंघा को मोड़ पर संकोचक पेशियां) को,

४ कटि सम्बन्धी खण्ड (४ L-Seg.) से Qudriceps Extensor Femoris जो जानु पर टांग को फैलाती है तथा ऊपर की जांघ को बाहर की तरफ खींचने वाली (Abductor) मांस पेशियां (Glutcus Medius तथा Minimus) Piriformis (Lateral Rotator) को

५ कटि सम्बन्धी खण्ड (५-L) से जानु पर अधो जंघा को संकुचित करने वाली मांसपेशियां (Flexors of Knee अर्थात् Hamsrtings) तथा अधो जंघा के आगे की मांस पेशियां Ant.Tibial Muscles जैसे Tibialis Anterior (अन्दर के गिट्टे की संकोचक) Extensor Hallucis तथा Ex.Digitorum Longus को जो पादांगुलियां को ऊपर को संकुचित करती हैं +

१ जघन सम्बन्धी खण्ड (१-Sacral) से Glutei (Gluteus Maximus ऊरु प्रसारक है) तथा पिण्डली की मांसपेशियां (अर्थात् जानु और गुल्फ संधियों के प्रसारक मांसों) को,

२ जघन सम्बन्धी खण्ड (२-Sacral) से अधो जंघा के आगे की पेशियां (अंगुलियां व पांव को ऊपर फिराने वाली) Perohei (पांव को अन्दर बाहर घुमाने वाली) पांव की छोटी छोटी अन्दरूनी मांस पेशियां को,

३-४ जघन सम्बन्धी खण्ड (३-४-Sacral) से वस्ति गुहा की मांस पेशियां को चेष्टा सूत्र जाते हैं ।

शरीर में होने वाली स्वयं चेष्टाओं या Reflexes- की परीक्षा करके भी यह जाना जा सकता है कि सुषुम्ना काण्ड का कौन सा प्रदेश रुग्ण हुआ अर्थात् आहत हो गया है या दब गया है । क्योंकि सुषुम्ना का जो खण्ड (Segment) रुग्ण होता है उस प्रदेश पर Reflex Arc. के खण्डित हो जाने से वहां होने वाली स्वयं चेष्टा लुप्त हो जाती है । तथा उस प्रदेश से नीचे होने वाली गहरी स्वयं चेष्टा (Tendon Reflex) तीव्रतर हो जाती है । उदाहरणत:...

५-६ ग्रैवेय खण्ड (Cervical Seg.) में रोग हो तो Biceps Jerk लुप्त हो जाता है (Jerc= कोहणी को ९० डिग्री तक मोड़ के तनी हुई Biceps Tendon को टकोरने से बाहु ऊपर झटका खाती है) साथ ही Supinator Jerk भी लुप्त हो जाता है (Jerc = कोहणी पर अग्रबाहु को कुछ संकुचित करके Radius के Styloid Process के ऊपर के प्रदेश पर टकोरने से अग्रबाहु ऊपर उठ जाती है ।

६-७ ग्रैवेय खण्ड (C:Seg.) में रोग हो तो Triceps Jerk लुप्त हो जाता है।

७-१२ पृष्ट सम्बन्धी खण्डों (Dorsal Segments) में रोग हो तो Abdominal Reflexes जिनके होने के लिये केवल प्रान्त (Peripheral) नाड़ियों के Sensory तथा Motor सूत्रों का स्वस्थ होना ही आवश्यक नहीं है पर Cord के अन्दर विद्यमान संज्ञावाही और चेष्टा वाही सूत्रों का (Pyramidal Tract सहित) भी स्वस्थ होना आवश्यक है, लुप्त हो जाते हैं।

२ कटिप्रदेशीय खण्ड (२ Lumber) में रोग हो तो Cremasteric Reflex. लुप्त हो जाता है।

३-४ कटि प्रदेशीय खण्ड (३-४ Lumber) में रोग हो तो Knee Jerk लुप्त हो जाता है।

१-२ जघन सम्बन्धी खण्डों (१ Sacral Seg.) में रोग हो तो Ankle Jerk लुप्त हो जाता है। इसी तरह Plantar Reflex भी लुप्त हो जाता है अर्थात् पादतल पर पेन्सिल या दियासलाई द्वारा खरोंचने से अंगूठा नीचे या पादतल की ओर जैसे मुड़ जाना चाहिये और पांव, गुल्फ संधि पर ऊपर की ओर मुड़ जाना चाहिये वैसा नहीं होता। हां जानु तथा वंक्षण संधि पर जांघ में न्यूनाधिक संकोच हो जाता है। सुषुम्ना में रोग अधिक हो तो पांव का अंगूठा नीचे की ओर फैलने (Extend) के स्थान पर ऊपर की ओर संकुचित (Flexed) होने लगता है तथापि साधारणतः व्यवहार में इसे अंगूठे का प्रसरण (Extension of the Great Toe या Extensor Plantar Response) कहा जाता है। रोग और भी अधिक हो तो तलुए पर ही नहीं पर टांग के किसी प्रदेश पर भी अकस्मात् उत्तेजना के पड़ने से यह Extensor Response हो जाता है।

मूत्र मल सम्बन्धी स्वयं चेष्टा :- Bladder तथा Rectum Reflexes.

२-३ सम्बन्धी जघन खण्डों (२-३ Sacral Seg.) से प्रारम्भ होकर Parasympathetic सूत्र (Nervierigentes या Pelvic Splanchnic के द्वारा)। मूत्राशय के मांस तथा उसके द्वार या Sphincter में आते हैं और वे मूत्राशय को तो Visceromotor सूत्रों द्वारा संकुचित करते तथा मूत्राशय द्वार (Sphincter) को Inhibitory सूत्रों द्वारा शिथिल करते हैं। साथ ही १-२ कटि प्रदेशीय खण्डों (Lumber Seg.) में से Sympathetic सूत्र भी Hypogastric Nerve (Pelvic Plexuses) के द्वारा मूत्राशय के मांस तथा उसके द्वार (Sphincter) में आते हैं जो उत्तेजित होने पर अपने Inhibitory सूत्रों द्वारा मूत्राशय मांस को शिथिल करते एवं द्वार को अपने

Motor सूत्रों द्वारा बन्द (Contract) कर देते हैं। इन दोनों प्रकार के सूत्रों के ऊपर मस्तिष्क का नियंत्रण दोनों ओर से ऊपर से आये चेष्टा सूत्रों (Upper motor Neurones) द्वारा कायम रहता है (जिससे व्यक्ति चाहे तो मूत्र को प्रवृत्त न होने दे)। जब कटि प्रदेशीय सुषुम्ना से ऊपर ऊपर का उसका कोई खण्ड दोनों ओर ही रुग्ण हो जाय तो स्पष्ट है कि मूत्र पर हमारे मस्तिष्क का नियंत्रण शिथिल हो जाता है जिससे मूत्र को प्रवृत्त करने का तथा मूत्र को रोकने का स्वाभाविक Reflex अपूर्ण या अधूरा हो जाता है। मूत्र को प्रवृत्त करने का Reflex निर्बल हो जाय तो रोगी मूत्र करना चाहता है पर वह देर से प्रवृत्त होता है। यदि मूत्र को रोकने वाला Reflex निर्बल हो गया हो तो मूत्र बिना प्रवृत्त किये भी जल्दी में निकल पड़ता है। (Precipitancy of Micturition) इनमें से पहला Reflex और भी निर्बल होता जाय तो मूत्राघात (Retention of Urine) का लक्षण हो जाता है। इन लक्षणों से सुषुम्ना काण्ड के रुग्ण होने का अनुमान कर लिया जाता है।

इसी प्रकार २-३ जघन सम्बन्धी खण्डों (२-३ Sacral Segments) से निकले सूत्र Pelvic Splanchnic Nerves के अन्दर विद्यमान Visceromotor सूत्रों के द्वारा मलाशय को संकुचित कर (तथा मल द्वार को ढीला कर) मल प्रवर्तन करते हैं। Hypogastric या Pelvic Plexus के द्वारा आये Sympathetic सूत्र उत्तेजित हो के मलाशय के मांस को शिथिल एवं गुद द्वार (Anal Sphincter) को बन्द कर देने का कार्य करते हैं (पर ऊपर से आते हुए इन पर मस्तिष्क का नियन्त्रण रहता है)। पर सुषुम्ना काण्ड में रोग होने पर मलाशय सम्बन्धी (Rectal) Reflex पर मस्तिष्क का नियन्त्रण निर्बल हो जाता है जिससे मलावरोध (Retention) का लक्षण हो जाता है और बाद में बिना इच्छा के ही मल के निकल जाने (Incontinence) का लक्षण भी होने लगता है।

त्वचा पर की संज्ञा या Sensation को देख कर भी यह कहा जा सकता है कि सुषुम्ना काण्ड का कौन सा खण्ड रुग्ण है। त्वचा पर के स्पर्श, वेदना, ऊष्मा तथा शीत सम्बन्धी संज्ञाओं के वहन करने वाले सूत्र पश्चिम मूलों द्वारा सुषुम्ना काण्ड में प्रवेश करते हैं और वहां Posterior Horns के Substantia Gelatinosa के सेलों में समाप्त हो जाते हैं। वहां से दूसरे सूत्र आरम्भ होकर नीचे के भाग में तो उपरले खण्ड (Segment) तक और ऊपर भाग में ५-६ वें खण्ड तक ऊपर चढ़ कर फिर दूसरी ओर क्रास कर जाते हैं एवं उधर के Spinothalamic Tract (Anterolateral Tract में) द्वारा ऊपर चढ़ के Medial Lemniscous के साथ Thalamus में समाप्त हो जाते हैं।

मांस, अस्थि आदि से संज्ञा का वहन करने वाले गहरे संज्ञा वाही या स्थिति संज्ञावाहक सूत्र (Sense of Position सम्बन्धी सूत्र) सुषुम्ना काण्ड में प्रवेश करके उसी ओर के Posterior Column या

Funiculus में ऊपर चढ़ते जाते हैं। जांघों के संज्ञावाही सूत्र अन्दर की ओर ऊपर चढ़ते हैं। इन्हें Tract of Gall या Fasciculus Gracilis कहते हैं। बाहुओं से आये गहरे संज्ञा सूत्र इनके बाहर की ओर ऊपर चढ़ते हैं। इन्हें Tract of Burdoch या Fasciculus Cuneatus कहते हैं। ऊपर Medulla Oblongata में ये क्रमश: Gracile तथा Cuneate Nuclei में समाप्त हो जाते हैं। निचले पृष्ठ सम्बन्धी खण्डों (Lower Dorsal Segments) तक के सूत्र Gracile में और इससे ऊपर के खण्डों से आये सूत्र Cuneate Nucleus में समाप्त होते हैं। इनमें से आरम्भ हुए दूसरे संज्ञावाही सूत्र Medulla में दूसरी ओर Fillet या Decussation of the Lemnisci के रूप में क्रास करके उधर Medial Lemniscus के रूप में चढ़ कर Thalamus के Ventral Nucleus में समाप्त हो जाते हैं। वहां से तीसरे गहरे संज्ञावाही सूत्र आरम्भ होके Internal Capsule के पिछले भाग में से होते हुए Fissure of Rolondo के पीछे के संज्ञा क्षेत्र में संज्ञा को पहुंचा देते हैं।

बाहुओं की त्वचा के संज्ञावाही सूत्र २ ग्रैवेय (२-Cervical) खण्ड से, २ पृष्ठ सम्बन्धी (Thoracic Segment) खण्ड तक आते हैं। धड़ के संज्ञासूत्र २ पृष्ठ सम्बन्धी (२-T) से, १- कटि सम्बन्धी खण्ड (१- L) तक आते हैं। जंघाओं के संज्ञावाही सूत्र २ कटि सम्बन्धी (२-L) खण्ड से, २ जघन सम्बन्धी (२- Sacral) खण्ड तक आते हैं। इस प्रकार :-

२-३ ग्रैवेय खण्ड (२-३ C)	में शिर के पीछे के भाग तथा ग्रीवा के पिछले तो केवल उपरले, तथा बाहर और आगे के सारे प्रदेश से संज्ञा सूत्र आते हैं।
४ ग्रैवेय खण्ड (४- C)	में Clavicle, प्रथम पर्शुका मध्ये देश, Deltoid के प्रदेश, तथा ग्रीवा के पश्चिम प्रदेश से;
५ ग्रैवेय खण्ड (५- C)	में ऊर्ध्व बाहु तथा अग्रबाहु के बाहर बाहर के अगले पिछले प्रदेश से,
६ ग्रैवेय खण्ड (६- C)	में ऊर्ध्व बाहु तथा अग्र बाहु के आगे पीछे के बाहर बाहर के तथा हाथ के बाहर बाहर के अंगूठे वाले प्रदेश से,
७ ग्रैवेय खण्ड (८-C)	में हाथ के आगे पीछे के बीच ऊर्ध्व की अंगुलियों वाले प्रदेश से तथा ऊर्ध्व बाहु तथा अग्रबाहु के पिछले केन्द्रीय प्रदेश से,
८ ग्रैवेय खण्ड (८- C)	में अग्रबाहु के अन्दर से तथा हाथ के अन्दर अन्दर के १½ अंगुलियों के प्रदेश से;

१ पृष्ट प्रदेशीय खण्ड (१-D) में अबाहु तथा कुछ अंश में ऊर्ध्व बाहु के अन्दर अन्दर के प्रदेश से,

२-१२ पृष्ट प्रदेशीय खण्डों (२-१२D) में छाती तथा कोष्ठ के ऊपर से नीचे के क्रमश: १२ प्रदेशों से,

१ कटि प्रदेशीय खण्ड (१-L) में नाभि से नीचे के जंघा तथा अण्ड प्रदेश से,

२ कटि प्रदेशीय खण्ड (२-L) में ऊर्ध्व जंघा के बाहर के भाग तथा उपरले २ अग्रिम भाग से,

३ कटि प्रदेशीय खण्ड (३-L) में ऊर्ध्व जंघा के निचले अग्रिम तथा सारे आभ्यन्तर प्रदेश से,

४ कटि प्रदेशीय खण्ड (४-L) में निम्न जंघा, आभ्यन्तर गुल्फ और पैर के अंगूठे वाले आगे पीछे के प्रदेश से,

५ कटि प्रदेशीय खण्ड (५-L) में निम्न जंघा के बाहर के बहुत से अगले तथा कुछ पिछले भाग से तथा पाद पृष्ट पर के अन्दर के बहुत से प्रदेश से,

१ जघन सम्बन्धी खण्ड (१-S) में अधो जंघा के पीछे नीचे के एडी के प्रदेश तथा पादतल के बाहर के १$\frac{1}{2}$ अंगुलि के प्रदेश से तथा उसके साथ लगते पादपृष्ट के बीची वाले स्वल्प प्रदेश से,

२ जघन सम्बन्धी खण्ड (२-S) में ऊर्ध्व जंघा तथा अधो जंघा पर के पीछे के मध्य के बड़े प्रदेश से,

३ जघन सम्बन्धी खण्ड (३-S) में गुदा, सीवन, जननेन्द्रिय प्रदेश से,

संज्ञावाहिनियां आती हैं जिससे इन खण्डों में रोग के होने पर संज्ञा की विषमता (Paraesthesia) या शुल के लक्षण हो जाते हैं । संक्षेपत: ५-ग्रैवेय खण्ड में रोग हो तो चारों शाखाओं में स्तम्भ युक्त निर्बलता Quadriplegia का लक्षण हो जाता है । ७- ग्रैवेय खण्ड में रोग होने से उरुस्तम्भ का लक्षण होता है । ग्रैवेय ८, पृष्ट सम्बन्धी खण्ड में १ में रोग हो तो बाहु तथा टांगों में स्तम्भ होता है । ६ पृष्ट सम्बन्धी खण्ड में रोग हो तो कोष्ठ और [redacted] टांगों में स्तम्भ का लक्षण होता है । निचले पृष्ट सम्बन्धी खण्डों तथा उपरले कटि सम्बन्धी खण्डों में रोग होने से उरुस्तम्भ का लक्षण होता है । जघन सम्बन्धी ३-४ खण्डों में रोग हो तो मल मुत्र रोध का लक्षण होता है ।

सुषुम्ना काण्ड (Cord) के रुग्ण होने के प्रधान कारण :-

(१) अभिघात (Injury) :-

किसी सवारी या ऊंचाई पर से नीचे गिर जाने पर पृष्ट वंश पर चोट लगकर किसी कशेरु की Laminae के दब जाने या कशेरु-

ओं के बीच की किसी टिकिया (Disc) के स्थान भ्रष्ट हो जाने से सुषुम्ना काण्ड (Cord) को क्षति पहुंच जाती है। ग्रीवा प्रदेश में आघात लगकर बहुधा ५-६ वें कसेरु को धक्का पहुंचता है तथा उनमें अस्थि भंग या संधि भ्रंश का रोग हो जाता है। इसी प्रकार दुर्घटनाओं के कारण पृष्ठ वंश में ११-१२ वें कसेरु को बहुधा आघात पहुंचता और उनके भंग या भ्रंश हो जाता है। इसी प्रकार ऊपर से नीचे गिर जाने पर व्यक्ति पांव के भार गिरे तो कटि प्रदेश पर आघात लगता है और उसका प्रथम कसेरु या उसके पास२के कसेरु बहुधा आहत हुआ करते हैं। दुर्घटनाओं में ग्रीवा में सहसा आगे की तरफ खींच पड़ जाती है अर्थात् उसमें तीव्र Flexion हो जाता है तब सुषुम्ना काण्ड पर भी खींच पड़ जाने से उसमें चोट पहुँच जाती है। ऊपर कहे गये लक्षणों से यह निश्चय किया जा सकता है कि सुषुम्ना काण्ड के किस प्रदेश पर आघात पहुंचा है। उदाहरणत: यदि ऐसे रोगी की दोनों बाहुएं शिथिल सी होकर धड़ के साथ सटी हुई पड़ी हों तो समझ लेना चाहिये कि ग्रीवा में सुषुम्ना काण्ड के ५-६ वें खण्डों पर आघात पहुंचा है। यदि बाहें धड़ से कुछ हटकर (Abducted) और कोहनियों तथा कलाईयों पर संकुचित होकर Pronated अवस्था में छाती पर पड़ी हों तो समझना चाहिये कि ग्रीवा के ७ वें खण्ड (Segment) पर आघात पहुंचा है। चोट लगने के बाद धक्के या Shock के कारण कुछ दिन तक मांस पेशियां शिथिल हो जाती हैं। सुषुम्ना काण्ड के क्षत प्रदेश से नीचे के प्रदेश में सर्व Reflexes लुप्त हो जाते हैं। दोनों टांगों में शिथिलता (Flaccidity) होती है। मल मूत्र भी अवरुद्ध हो जाते हैं + और मूत्राशय के भर जाने पर मूत्र बून्द बून्द करके निकलने लगता है + क्योंकि मल मूत्र सम्बन्धी Reflexes लुप्त हो जाते हैं। १-२ सप्ताह बाद फिर मृत हुई शाखाओं में स्तब्धता (Spasticity) का लक्षण हो जाता है और तब Plantar Reflex ऊपर की ओर (Dorsiflexion) होने लगता है। Tendon Reflexes प्रकट हो जाते हैं और मांस पेशियाँ ठीक होने लगती हैं। Paralysis किन मांस पेशियों में है यह पता लगा के सुषुम्ना काण्ड के किस खण्ड में आघात पहुंचा है यह पता लग सकता है। रीढ़ की हड्डी पर स्पर्शाक्षमता जहां है वहां ही चोट का अनुमान कर लेना चाहिये। यदि संज्ञा नाशक लक्षण हो तो उसकी ऊपर की सीमा का पता लगाने से सुषुम्ना का कौन सा खण्ड दब गया है यह जाना जा सकता है।

(२) सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी क्षय रोग :- (Spinal Caries):

पृष्ठ वंशास्थि में क्षय रोग जनित विद्रधि (Cold Abscess) के हो जाने पर कभी कभी सुषुम्ना काण्ड दब जाता है। या उसके कारण सुषुम्ना काण्ड के बाह्यावरण पर (अर्थात् Epidural Space में) क्षयजनित अंकुरों (Granulations) के हो जाने या Pachymeningitis से

Cord कुछ दब जाता है और उसमें श्वयथु (Oedema) हो जाता है। ऐसी अवस्था में वहां की सौषुम्नानाड़ी के पिछले Root के दब जाने से घाड़ के चारों ओर या किसी शाखा में तीव्र शूल का लक्षण होता है जो हिलने डुलने से बढ़ता है। पृष्ठ वंश में कुछ विषमता या स्पर्शाक्षमता या स्तब्धता का लक्षण भी होता है। बाद में टांगों में स्तम्भ भी हो जाता है। उनमें सुप्तता, चिमचिमाहट के लक्षण भी होते हैं। इसे क्षय जनित उरुस्तम्भ कहा जाता है। क्षय रोग के प्रकट होने के बाद इसकी पहचान सुगम है। क्षय रोग के प्रकट होने से पहले उरुस्तम्भ का लक्षण हो जाय तो इस रोग का पहचानना कठिन होता है। यदि क्षय रोग ठीक हो जाय, उसके कारण उत्पन्न श्वयथु Oedema भी शान्त हो जाय तो सुषुम्ना काण्ड फिर से ठीक हो जाता है। परन्तु जब टांगों में स्तम्भ के स्थान पर शिथिलता आ जाय और उनमें संकोच(Flexion)हो जाय तो फिर यह रोग अच्छा नहीं होता।

(३) सुषुम्ना काण्ड सम्बन्धी फिरंग रोग :- (Syphilitic Myelitis या Meningomyelitis):-

सुषुम्ना काण्ड के किन्हीं १-२ खण्डों के आवरणों (Pia तथा Arachnoid) में फिरंग जनित Gumma के उत्पन्न हो जाने से वहां की रक्तवाहिनियों में अवरोध (Endarteritis) हो जाता है और काण्ड के बाहर बाहर के सूत्रों में कुछ क्षीणता (Degeneration) का लक्षण हो जाता है। इसके कारण पीठ में या घाड़ के चारों ओर शूल होने लगता है। जो पश्चिम मूलों (Poste.Roots) के ग्रस्त होने का सूचक है। फिर क्रमश: उरुस्तम्भ का लक्षण प्रकट हो जाता है एवं मूत्र पर नियंत्रण निर्बल हो जाता है। पैरों में या उनकी अंगुलियों में संज्ञा सम्बन्धी विकृति के लक्षण भी हो सकते हैं। फिरंग जनित उरुस्तम्भ का रोग छोटी आयु या मध्यम आयु में ही होता है।

(४) पृष्ठ वंशास्थि में कैन्सर :- (Vertebral Carcinoma)

बड़ी आयु के किसी व्यक्ति में स्तन ग्रन्थि, या फुफ्फुस या प्रोस्टेट में कैन्सर प्रारम्भिक अवस्था में हो या शल्य कर्म द्वारा वहां से उसे निकाला गया हो तो उसके सेल पृष्ठ वंशास्थि में पहुंच कर वहां रोहण कर सकते हैं जिससे अनेक कशेरुओं में शीघ्र शीघ्र कैन्सर प्रसरण कर जाता है। वहां से किसी एक Inter Vertebral Foramen के द्वारा यह अन्दर के स्रोत (Canal) में भी प्रसरण कर जाता है। जिससे वहां का सुषुम्ना मूल(Root) दब जाता है। उसके आवरण (Meninges) के दब जाने से तत्सम्बन्धित प्रदेश में अति तीव्र शूल का लक्षण होता है। शूल युक्त प्रदेश पर स्पर्श संज्ञा की न्यूनता भी होती है। हिलने डुलने से यह शूल अधिक होता है। जिससे रोगी

पृष्ठ वंशास्थि तनाये हुऐ (Rigid) रखता है । इस रोग के कारण उरुस्तम्भ का लक्षण १-२ दिन के अन्दर अन्दर ही प्रकट हो जाता है । पृष्ट वंशास्थि में स्पर्शाक्षमता और स्तब्धता हो तथा रुग्ण व्यक्ति में कृशता का लक्षण हो तो इस रोग का सन्देह दृढ़ हो जाता है । इस रोग के कारण पृष्ठ वंशास्थि में कोई विषमता नहीं होती ।

(५) पृष्ठ वंशास्थि की किसी टिकिया का स्थान भ्रंश :- (Protrusion of the Intervertebral Discs):-

पृष्ट वंशास्थि के कसेरुओं (Vertebrae) के बीच बीच की टिकियाँ (Discs) का बाहर बाहर का कठोर सौत्रिक भाग Annulus Fibrosus कहाता है तथा बीच का मृदु एवं लचकीला भाग Nucleus Pulposus कहाता है । बाहर का कठोर भाग आस पास के कसेरुओं से बंधा होता है । इन टिकियों के बीच का भाग Hyaluronic Acid से बना बहुत चिप चिपा एवं मृदु होता है । उसके कारण कमर में लचकीला पन रहता है । बड़ी आयु में टिकियों का यह मृदु भाग शुष्क होकर कुछ छोटा पड़ जाता है जिससे टिकियों को कसेरुओं से बांधने वाले सूत्र भी कुछ ढीले पड़ जाते हैं । पृष्ट वंश के कसेरु तथा टिकियां पीछे की ओर से Posterior Common Ligament से ढकी हुई एवं सुरक्षित रहती हैं पर कटि प्रदेश में यह स्नायु इन्हें पूर्णतया नहीं ढकती । इसीलिये बड़ी आयु में जब कोई व्यक्ति आगे पड़े बोझ को झुककर सहसा उठाने का यत्न करता है या किसी प्रकार से भी उसके कटि कसेरुओं पर खींच पड़ जाती है तो कटि प्रदेशीय कोई टिकिया टूट सकती है । जिससे उसके अन्दर का मृदु भाग (Nucleus Pulposus) पीछे की ओर पृष्ट वंश गुहा (Canal) में स्थान भ्रष्ट हो जाता है । इससे कटि प्रदेश में तो बहुधा ५ वीं L.- कसेरु और Sacrum के बीच की टिकिया के खिसकने से ५ वीं कटि प्रदेशिय सौषुम्ननाड़ी (५- Lumber Spinal Nerve) या प्रथम जघन सम्बन्धी नाड़ी (१- Sacral Spinal Nerve) दब जाती है । इस प्रकार टिकिया के स्थान भ्रष्ट हो जाने से एक तो स्थानिक भारी दर्द होने का लक्षण होता है जिसे कटि शूल (Lumbago) कहते हैं । दूसरा रोग में गृध्रसी शूल (Sciatica) होने का लक्षण होता है अथवा Femoral Nerve (Ant. Crural Nerve) के ग्रस्त होने से Anterior Femoral Cutaneous तथा Lateral Femoral Cutaneous नाड़ियों के क्षेत्र में अर्थात् ऊर्ध्व जंघा के अग्रिम तथा बाह्य पृष्ठों पर संज्ञासम्बन्धी विकृति (Paraesthesia) के लक्षण होते हैं । नीचे पैर के बाहर बाहर के किनारे पर दर्द हो तो १- Sacral Spinal Nerve दबी हुई समझें । यदि दर्द पैर के अन्दर के किनारे पर हो तो ५- Lumber Spinal Nerve दबी हुई समझनी चाहिये ।

ग्रीवा में ५ वीं तथा ७ वीं कसेरुओं के बीच में तथा पृष्ट कसेरुओं के निचले भाग में इसी प्रकार फटका लग कर किसी टिकिया के पिछली और खिसक जाने से सुषुम्ना काण्ड न्यूनाधिक दब जाता है। जिससे ग्रीवा अथवा पृष्ठ में पहले तो स्तब्धता (Stiffness) का लक्षण होता और फिर एक या दोनों बाहुओं में धीरे धीरे स्तम्भ (Spasticity) याबाहु शूल अर्थात् Brachial Neuritis का लक्षण हो जाता है। पृष्ट प्रदेश में इसी रोग के होने पर टांगों में स्तब्धता का लक्षण हो जाता है।

(६) मस्तिष्क गत विषम ज्वर :- (Cerebral Malaria)

विषम ज्वर (Subtertion) के कारण मस्तिष्क में सिरावरोध (Thrombosis) होकर समीप के कुछ क्षेत्र का पोषण कम हो जाने (Cerebral Softening) से बाहुओं, टांगों में स्तब्धता (Spasticity) युक्त निर्बलता का लक्षण हो सकता है। पर यह उरुस्तम्भ स्थायी नहीं होता।

(७) सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा वाह्य स्तम्भों में क्षीणता :- (Combined Degeneration of the Spinal Cord, Postero Lateral Sclerosis):-

कभी कभी ४०-६० वर्ष की आयु के ऐसे व्यक्तियों में जिनमें घातक पाण्डु (Pern. Anaemia) का रोग होता है, या जिनमें आमाशय और आंत के Achlorhydria आदि किसी चिर रोग के कारण विटामिन B_{12} की न्यूनता हो जाती है, सुषुम्ना काण्ड के दोनों ओर के पश्चिम तथा वाह्य स्तम्भों के नाड़ी सूत्रों के खोलों में क्षीणता का लक्षण हो जाता है, अर्थात् उन सूत्रों का Myelin से बना खोल फैट में परिवर्तित होता जाता है। खोलों में क्षीणता के बढ़ते जाने के बाद अन्त में सूत्र (Axis Cylinders) भी क्षीण हो जाते हैं। क्षीणता की प्रक्रिया पहले पहले पश्चिम स्तम्भों (columns) में होती और वहां भी पहले जंघा सम्बन्धी सूत्रों (Funiculus Gracilis) में अर्थात् सुषुम्ना के निम्न पृष्ट सम्बन्धी भाग में फिर बाद में बाहु सम्बन्धी सूत्रों (Fasciculus Cuneatus) में होती है। फिर यही प्रक्रिया वाह्य स्तम्भों (Lateral Columns) में हो जाती है और फिर शरीर में जाने वाले नाड़ी सूत्रों (Peripheral Nerves) में भी हो जाती है। उपर्युक्त विकृति के अनुसार पहले तो पैरों की अंगुलियों के सिरों में तथा पाँवों में संज्ञा सम्बन्धी लक्षण जैसे सुप्ति, चिमचिमाहट (Tingling), दाह या दर्द, शीतलता आदि के लक्षण होते हैं। पांव में संज्ञा नाश का लक्षण न्यूनाधिक होता है। पिंडलियों में स्पर्शाक्षमता या दबाने से दर्द होने का लक्षण होता है। फिर हाथों की अंगुलियों में भी ये ही संज्ञा सम्बन्धी लक्षण होने लगते हैं और फिर ये लक्षण टांगों में ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। पैरों में स्थिति संज्ञा

(Sense of Position) भी घटती जाती है । इससे टांगें निर्बल और भारी प्रतीत होतीं तथा चलने में लड़खड़ाती सी हैं । अंधेरे में यह अस्थिरता और बढ़ जाती है । उनमें बिजली की सी चसक मारने वाली दर्द भी हो सकती है । बाद में सुषुम्ना कांड के वाह्य स्तम्भों में क्षीणता की प्रक्रिया के होने के कारण टांगों में स्तब्धता युक्त निर्बलता या उरुस्तम्भ का लक्षण हो जाता है । स्पष्ट है कि यदि टांगों में संज्ञा सम्बन्धी लक्षण या सुप्ति का लक्षण प्रबल हो तो टांगों में शिथिलता (Flaccidity) युक्त निर्बलता होती है । तथा गहरे Reflexes मन्द हो जाते हैं । यदि वाह्यस्तम्भों में रोग प्रबल हो तो टांगों में स्तब्धता युक्त निर्बलता होती है और तब ऐसी अवस्था में Knee Jerk तथा Ankle Jerk प्रबलता से होते और Planter Reflex Extensor होते हैं । वाहुओं में इस रोग का प्रभाव होने पर हाथ की छोटी छोटी पेशियाँ सूखने लगती हैं ।

सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा वाह्य सूत्रों में क्षीणता के बढ़ जाने पर मूत्र पर ऊपर का नियन्त्रण शिथिल ~~हो जाता~~ हो जाता है । पहले तो उसका रोकना कठिन हो जाता, जिससे वह कपड़ों में निकल जाता है, बाद में उसका प्रवृत्त करना कठिन हो जाता है । पुंस्त्व शक्ति भी नष्ट हो जाती है । रक्त में Macrocytic Anaemia (वातिक पाण्डु) का लक्षण होता है । बुद्धि और स्मृति भी कुछ मन्द हो जाती हैं । इस प्रकार यदि Achlorhydria, Extensor Plantar Response, टांगों की निर्बलता, पैरों में सुप्ति, चिमचिमाहट तथा पाण्डुता आदि लक्षण हों तो इस रोग का निश्चय हो जाता है ।

(८) पृष्टवंशार्बुद (Spinal Meningioma- Spinal Neurofibroma) के कारण उरुस्तम्भ :-

सुषुम्नावरणों में अर्बुद के धीरे धीरे बढ़ने तथा उसके द्वारा Cord के दब जाने से पृष्ट वंश में मन्द मन्द शूल रहता है जो खांसने, छींकने, हिलने, डुलने से होता है । फिर किसी (Thoracic) सौषुम्ना नाड़ी के पिछले मूल के दब जाने से कमर या पेट के किसी प्रदेश में दर्द होने लगता है । फिर सुषुम्ना के Pyramidal मार्गों के कुछ दब जाने से पहले एक टांग में या बाहु में स्तम्भ तथा निर्बलता होती और फिर दूसरी में भी हो जाती है । ~~कभी में कृशता होती है~~ । ऐसी अवस्था में सुषुम्ना द्रव (Cerebrospinal Fluid) की परीक्षा करने से उसमें प्रोटीन की मात्रा बढ़ी हुई हो (नार्मल १०० सी०सी० में ३० मिलि०) रंग पीला हो, उसमें सेल्स न हों (Froin Syndrome) तो अर्बुद का सन्देह हो जाना चाहिये ।

(९) वृद्धावस्था सुलभ पृष्ट वंशास्थि रोग (Spondylosis या Hypertrophic Spondylitis):-

वृद्ध व्यक्तियों की कटि प्रदेशीय या ग्रीवा प्रदेशीय कशेरुकाओं में अति वृद्धि (Osteophyteformation) हो जाने से कशेरुकाओं के बीच के स्रोत तंग हो जाते हैं एवं सुषुम्ना नाड़ी या मूल दब जाते हैं । जिससे गृध्रसी शूल का रोग तथा कटि प्रदेश में शूल या कन्धों और ऊर्ध्व बाहुओं में शूल होने का रोग हो जाता है जो हिलने से बढ़ता है । रीढ़ की हड्डी में स्तब्धता भी होती है ।

सुषुम्ना काण्ड के रुग्ण होने के प्रधान लक्षण-उरुस्तम्भ (Paraplegia):-

सुषुम्ना काण्ड के उपर्युक्त रोगों में ऊपर से उतरने वाले चेष्टा सूत्रों (Pyramidal Tract) के ग्रस्त हो जाने से हाथ पांव की मांस पेशियों पर मस्तिष्क का नियंत्रण उठ जाता है । जितना ये सूत्र अधिक रोग ग्रस्त होते जाते उतना उतना शाखाओं पर नियंत्रण निर्बल होता जाता है शाखाओं में २ प्रकार की मांस पेशियां हैं । (१) प्रसारक (Extensors), (२) संकोचक (Flexors) । पैरों में भी जो मांस पेशियां उन्हें तलुए की तरफ मोड़ती हैं वे प्रसारक होती हैं जो पैरों को ऊपर पाद पृष्ट की तरफ झुकाती हैं वे संकोचक (Flexors) होती हैं । शाखाओं में उत्पन्न हुई यह निर्बलता संकोचक मांस पेशियों में विशेष होती है । इस प्रकार पहले पहल रोगी को अपने हाथों पैरों को संकुचित करने में कठिनता प्रतीत होने लगती है । अर्थात् पैरों का Dorsiflexion कुछ कठिनता से होता है । इसके बाद टांगों को संकुचित करने में कठिनता होती है ।

शाखाओं में निर्बलता की वृद्धि के साथ साथ मांसपेशियों में स्तम्भ (Tone) की वृद्धि हो जाती है । प्रसारक मांस पेशियों में संकोचक मांस पेशियों की अपेक्षा स्तम्भ प्रबल होता है । अतः हम यदि रोगी की शाखाओं को संकुचित करना चाहें तो उसकी प्रसारक मांस पेशियों में स्तम्भ के होने के कारण ऐसा करना कठिन होता है । Prerolandic Area से प्रारम्भ होकर नीचे सुषुम्ना काण्ड के Anterior Horns तक जाने वाले चेष्टा (Pyramidal) सूत्रों के उपरले नियंत्रण के कम हो जाने पर, ऊपर Brain Stem के Nuclei से आरम्भ होकर नीचे Anterior Horns तक जाने वाले Extra Pyramidal Tracts के सूत्रों के द्वारा शाखाओं की मांस पेशियाँ सदा स्तम्भ की अवस्था में रहती हैं । इस अवस्था को उरुस्तम्भ की प्रथम अवस्था या स्तम्भावस्था (Paraplegia in Extension) कहते हैं । ऐसी अवस्था में टांगों में संकोच (Flexion) के कम होने से जमीन से टांगों को उठाने में कठिनता होती है । रिक्शा, टांगे, गाड़ी आदि पर चढ़ने में भी कुछ कठिनता होने लगती है । टांगों के सीधा तथा स्तब्ध रहने से अंगूठा जमीन के साथ चोट खाने लगता है । दोनों टांगें स्तब्ध ही नहीं परस्पर समीपस्थ (Adducted) भी हो जाती हैं । इस अवस्था में Tendon Reflexes तीव्रतर हो जाते हैं । Abdominal Reflex लुप्त हो जाता है । Planter Reflex ऊपर को हो जाता है । (जिसके Flexor होने पर भी उसे

Extensor कहते हैं ।

सुषुम्ना काण्ड के जिस ओर के खण्ड में रोग होता है उधर की टांग में पहले उरुस्तम्भ होता है । और बाद में यदि उधर के ऊपर जाने वाले संज्ञावाही सूत्र समूहों पर भी दबाव पड़ जाय तो ग्रस्त खण्ड से संबन्धित दूसरी ओर की त्वचा में स्पर्श, वेदना तथा शीतोष्ण की प्रतीति कम हो जाती है इस ग्रस्त हुऐ खण्ड से नीचे के Cutaneous Reflexes भी लुप्त हो जाते हैं । गहरे संज्ञावाही सूत्र समूह के दब जाने से जिधर रोग होता है उधर की टांग में स्थिति संज्ञा (Postural Sensation) कम हो जाती है । जब सारे खण्ड पर ही दबाव बढ़ जाता है तब दोनों टांगों में स्तब्धता आ जाती है तथा संज्ञा-नाश का लक्षण भी दोनों ओर (Bilateral) हो जाता है तथा तब मल मुत्र पर नियन्त्रण भी शिथिल हो जाता है ।(Loss of Sphincter Control) सुषुम्ना काण्ड के जिस प्रदेश पर दबाव पड़ जाता है उसके नीचे के भाग के सुषुम्ना द्रव में प्रोटीन बढ़कर ३ प्र०श० तक हो जाता है (नार्मल •२%) ।

कुछ काल बाद सुषुम्ना काण्ड के रोग के बढ़ जाने पर जब ये Extra Pyramidal Tract के सूत्र भी रोग ग्रस्त होने लगते हैं कि जिनके द्वारा शाखाओं की प्रसारक मांस पेशियां ऊपर Brain Stem के साथ सम्बन्धित थीं तो इनका स्तम्भ कम होने लगता है । तब संकोचक मांस पेशियों का स्तम्भ जो कि Spinal Reflex Arcs के ऊपर निर्भर है अधिक स्पष्ट प्रतीत होने लगता है । जिससे एक तरफ तो Knee तथा Ankle Jerks जो प्रसारक मांस पेशियों की स्तब्धता का सूचक होते हैं लुप्त हो जाते हैं और दूसरी ओर टांगें, जानु पर तथा वंक्षण पर ऊपर की ओर संकुचित हो जाती हैं अर्थात् वे निर्बल, स्तब्ध तथा संकुचित दीखती हैं । इस अवस्था में टांगों को फैलाने में बल लगाना पड़ता है । फैला भी दें तो फिर वे संकुचित हो जाती हैं । इस अवस्था को संकोच युक्त उरुस्तम्भ (Paraplegia in Flexion) कहते हैं । प्रारंभ में स्तब्धता युक्त उरुस्तम्भ की अवस्था में टांगों में किसी प्रकार का विक्षोभ आ पड़ने पर ही यह स्तब्धता युक्त संकोच (Flexor Spasm) होता है । धीरे धीरे बाद में लगातार ही टांगें संकुचित अवस्था में रहने लगती हैं । इसका कारण इन संकोचक मांस पेशियों में स्तम्भ (Spasticity या Tone) का बढ़ना है । इसमें सन्देह नहीं । इस अवस्था में संकोचक मांस पेशियों में होने वाले Jerks जैसे Hamstring Jerk को रहता है ।

संज्ञा सम्बन्धी लक्षण:- अर्बुद आदि के कारण Spinothalamic सूत्र समूह के दब जाने से दूसरी ओर के जिस प्रदेश से वहां संज्ञा वाही सूत्र आते हैं उसमें दर्द का लक्षण होता है या दोनों ओर टांगों में वहीं दर्द का लक्षण होता है । दर्द (Pain) की संज्ञा के वहन करने वाले सूत्र पहले दबते हैं । इसलिये दर्द(Root Pain) का लक्षण पहले होता है ।

उरुस्तम्भ की चिकित्सा :-

आघात जनित उरुस्तम्भ की चिकित्सा :- पृष्ट वंशास्थि में सहसा प्रबल Flexion हो जाने से सुषुम्ना काण्ड आहत होता है अतः रोगी की कमर को १-१$\frac{१}{२}$ मास तक के लिये पूर्ण Extension की अवस्था में रखना चाहिये। रोगी जहां गिरा हो वहां से हस्पताल तक भी उसे मुंह के भार लिटाकर ही ले जाना चाहिये। पृष्ठवंशास्थि के थोड़ा मुड़ने से भी सुषुम्ना काण्ड आहत हो सकता है अतः उसे धीरे धीरे से उठाना चाहिये।

कसेरुओं के बीच की किसी टिकिया का स्थान भ्रंश :- Prolapsed Disc:- कमर की तीव्र शूल की शान्ति के लिये वेदना शामक (Analgesic) औषधि जैसे Heroin या Aspirin आदि का प्रयोग करना चाहिये। तथा रोगी को सीधी बिस्तर पर कमर के भार सीधा (कुछ Extension में रख कर) लिटाना चाहिये। छः सप्ताह इस प्रकार लिटाने तथा वेदना शामक औषधि का प्रयोग जारी रखने से लाभ हो जाता है। बैठने के स्थान तथा उरुओं के नीचे Electric Pad रखने से बहुधा आराम मिलता है। रोग ग्रस्त प्रदेश पर Diathermy के सेक से भी कुछ लाभ प्रतीत होता है।

अनेकानेक टिकियों में क्षीणता (Degeneration) के होने के कारण Spinal Nerves के दब जाने से जो दर्द हुवा करता है (Spondylosis) वह सिकाई तथा मालिश से ठीक हो सकता है। Deep-X-Ray से भी इसे पर्याप्त लाभ होता है। साधारण अवस्था में सामान्य पृष्ठ मालिश करनी चाहिये तथा उसे धीरे धीरे थोड़ा हिलाये डुलाये तो ठीक है अर्थात उसमें Passive movements करना उचित है अथवा यदि सम्भव हो जाय तो उसे स्वयं ही हिलाना डुलाना चाहिये।

पृष्ठ वंश में कैन्सर :-

दर्द के लिये Aspirin १० ग्रेन, Pyramidon ५ ग्रेन, Heroin $\frac{१}{१२}$, $\frac{१}{६}$ ग्रेन मिलाकर शाम सवेरे १-१ मात्रा देनी चाहिये। X-Ray Irradiation से कुछ लाभ अवश्य होता है।

पृष्ट वंश में फिरंग रोग :-

के लिये Proc.Penicillin का आठ दिन तक प्रयोग करना चाहिये। जिसके पहले २-३ सप्ताह तक Pot.Iod. १० ग्रेन मात्रा में दिन में तीन बार देना लाभदायक होता है।

पृष्ट वंश में क्षय रोग में :-

पृष्ट वंश को कुछ मास के लिये स्थिर कर देने तथा Antibiotic चिकित्सा से लाभ हो सकता है।

सुषुम्ना काण्ड के पश्चिम तथा बाह्य स्तम्भों में क्षीणता :-

(Subacute Combined Degeneration of the Spinal Cord) के लिये प्रति दूसरे दिन $Vit.B_{12}$, ४० माइक्रोग्राम मात्रा में मांस द्वारा देना चाहिये। जब पाण्डुता का लक्षण शान्त हो तब यही मात्रा कुछ काल पहले एक एक और फिर दो दो सप्ताह बाद देनी चाहिये।

सुश्रुषा :- इस रोग में रोगी के लेटे रहने से उसकी कमर में शय्या

व्रण होने का भय रहता है । अत: रोगी को " स्पंज रबर बैड" पर लिटाना चाहिये । तथा लगातार २-३ घन्टे से अधिक एक पार्श्व पर नहीं रहने देना चाहिये । शरीर के जिन प्रदेशों पर दबाव पड़ता हो उनकी Rings, गद्दियों या तकियों के द्वारा रक्षा करनी चाहिये । शाखाओं की स्थिति या आकृति की रक्षा के लिये रेत की थैलियों का प्रयोग किया जा सकता है । जिससे उनमें विषमता (Contracture) उत्पन्न न हो । पीठ को दिन में दो बार साबुन से धोना चाहिये तथा उसे सर्जिकल स्पिरिट से धोकर उस पर Talcum Powder. लगाना चाहिये । जब मूत्र पर नियंत्रण नहीं रहता तब स्वयं लगे रहने वाले Catheter को Clip लगाके मूत्राशय में रखना चाहिये तथा ४-४ घन्टे पर उसे खोलकर मूत्राशय को साफ कर देना चाहिये । साथ ही मूत्र में संक्रमण की रोक थाम के लिये उचित Antibiotic औषधि का प्रयोग जारी रखना चाहिये ।

मल बन्ध के लिये दूसरे दिन $\frac{1}{2}$, $1\frac{1}{2}$ पां० सेलाइन की बस्ति देनी चाहिये और फिर Aircushion वाला रबर का बैड फेन पर जब तक जल आता रहे नीचे रखना चाहिये ।

======

Bedsore [illegible] Drainage [illegible] Protein anabolic [illegible] Nandrolone (Durabolin) [illegible] Northandrolone (Nilevar Searle) [illegible] (Sulphadimidine [illegible] Furadantin [illegible])

आयुर्वेद के अनुसार [illegible] microglial proliferation [illegible] Myelites [illegible]

मस्तिष्कार्बुद Intracranial Tumours.

मस्तिष्क में अर्बुद का होना कोई दुर्लभ रोग नहीं है । इग्लैंड में १०० व्यक्तियों कीमृत्यु में से एक मृत्यु का कारण यही रोग है । अमरीका में हर साल ५ हजार मृत्यु इस रोग के कारण होती हैं । घातक Malignant और निरुपद्रव -Benign- दो प्रकार के ये होते हैं । घातक अर्बुद दो प्रकार के होते हैं । एक प्रारम्भिक Primary - दूसरे उपद्रव रूप या Secondary Malignant किस्म के ।

प्रारम्भिक घातक अर्बुद - Glioma - मस्तिष्क के अन्दर उसके स्नायु तन्तु Neuroglia में तथा बड़ों की अपेक्षा बालकों में अधिक होने वाले अर्बुदों को Glioma कहते हैं । जो १०-२० वर्ष की आयु तक तो Cerebellum में विशेषतः (Infratentorial) होते और इसके बाद ऊर्ध्व मस्तिष्क या Cerebrum में अधिक होते हैं । इनमें से कुछ एक बड़ी शीघ्रता में बढ़ने वाले एवं शीघ्र मारी होते हैं । ऊर्ध्व मस्तिष्क में तथा बालकों और युवकों में पाये जाने वाला Neuroglia के सेलों की अति वृद्धि से होने वाला Spongioblastoma या Glioblastoma है जो १ वर्ष के अन्दर अन्दर घातक हो जाता है । दूसरा बाल्यावस्था में Cerebellum. में होने वाला Medulloblastoma (Medulloblast नामक सेलों की अति वृद्धि से होने वाला) है जो उपर्युक्त अर्बुद की अपेक्षा कम होता है । ये दोनों प्रकार के घातक अर्बुद शीघ्र फैलते, बढ़ जाते, एवं घातक हो जाते हैं ।

एक और Glioma जो बहुत अधिक होता है । तथा १०-२० वर्ष से ऊपर की आयु में पाया जाता है । Neuroglia के Fibrillary Astrocyte सेलों की अति वृद्धि से होता है, बहुत मन्द गति से बढ़ता है । इसमें Glioma के समान रक्त की मात्रा भी अधिक नहीं होती । अन्त में यह भी घातक होता है । इसे Cerebral Astrocytoma कहते हैं । मस्तिष्कार्बुदों में यह १० प्र०श० पाया जाता है । Cerebellar Astrocytoma भी इसी प्रकार का होता है पर इस प्रकार घातक नहीं होता, यह बालकों में पाया जाता है । Cerebral Ependymoma, उस Glioma को कहते हैं जो Ventricles की दीवार की सूक्ष्म झिल्ली या Ependyma में होता है यह भी घातक होता है । मस्तिष्कार्बुदों में यह २ प्र०श० के लगभग होता है । चतुर्थ Ventricle में यह हो तो यह घातक नहीं होता । इस प्रकार ये घातक मस्तिष्कार्बुद या Glioma सब मस्तिष्कार्बुदों में ५० प्र०श० के लगभग होते हैं । इनमें से Astrocytoma सबसे अधिक होता, Glioblastoma या Spongioblastoma Multiforme उससे कम, Medulloblastoma. उससे कम और Ependymoma उससे भी कम पाया जाता है ।

आगन्तु घातक अर्बुद - Secondary Malignant Tumours of the Brain:- भी मस्तिष्कार्बुदों में २० प्र०श० के लगभग होते हैं । ये बहुधा फुफुस कैन्सर (Bronchila Carcinoma) के उपद्रव रूप में होते हैं । यहां

तक कि यदि मस्तिष्क में अर्बुद के लक्षण हों तो फुफ्फुस में प्रसुप्त रूप में विद्यमान कैन्सर का सन्देह हो जाना चाहिये। स्तन ग्रन्थि प्रोस्टेट ग्रन्थि तथा आमाशय या मलाशय में कैन्सर के उपद्रव के रूप में भी यह अर्बुद हो सकता है। इस प्रकार आधों से अधिक मस्तिष्कार्बुद शीघ्र या देर में घातक किस्म के पाये जाते हैं जोकि शोचनीय बात है।

निरुपद्रव- Benign - अर्बुद प्रधानतः मस्तिष्क में ये होते हैं :-

।१। Meningioma, Dural Endothelioma-Meningeal Fibrobla Stoma- जो अर्बुद Duramater की महाशिराओं -Sinuses- की दीवार में विद्यमान Arachnoid Mater के प्रवर्धनों Villi या Granulations के सेलों की अति वृद्धि से बनते हैं उन्हें Meningioma कहते हैं। स्पष्ट है कि ये मस्तिष्क की Sinuses या आवरणों की शिराओं के Duramator के साथ प्रबल रूप से सम्बन्धित होते हैं। मस्तिष्कावरणों की रक्तवाहिनियों से ही इन्हें रक्त आता जाता है। ये Parasagittal, Supraseller, Sphenoidal Sinuses में विशेष होते हैं। स्पष्ट है ये मस्तिष्क के अन्दर न होके उसके पृष्ट पर होते हैं, परन्तु उसके दबा देने का कारण बन जाते हैं। इनकी वृद्धि बहुत धीरे धीरे होती है। इसीलिये इनके कारण विशेषतः स्थानिक लक्षण ही होते हैं और वे भी क्रमशः बढ़ते हैं, सहसा नहीं। ये बढ़कर अपने ऊपर की कपालास्थि में भी प्रसरण कर जाते हैं, जिससे वह वहां मोटी हो जाती है, (Hyperostosis) इनमें रक्त की मात्रा अधिक होती है जिससे वहां कपालास्थि में भी रक्तवाहिनियों की मात्रा बढ़ जाती है। Tentorium के नीचे की अपेक्षा ऊपर के मस्तिष्क में ये अर्बुद अधिक पाये जाते हैं। मस्तिष्कार्बुदों में ये १५ प्र०श० होते हैं।

Neurofibroma, Neurinoma, Acoustic Neurofibroma:-

किसी मस्तिष्क नाड़ी के अधिकतः अष्टम मस्तिष्क नाड़ी (Auditory Nerve) के खोल में से Cerebello Pontive angle के प्रदेश में उत्पन्न होकर यह बहुत धीरे धीरे बढ़ता है। बढ़कर यह अन्दर के Auditory Meatus को दबा देता है इसके बढ़ने से आठवीं नाड़ी तो दबती ही है पांचवीं नाड़ी भी दब सकती है, सातवीं नाड़ी भी कभी कभी दब जाती है। मस्तिष्कार्बुदों में यह १० प्र०श० पाया जाता है। इसीलिये इसके होने पर बाधिर्य, कर्णघोष (Tinnitus) तथा शिरोभ्रम (Vertigo) के लक्षण होते हैं और इनके बाद पांचवीं नाड़ी के क्षेत्र में Paraestheeia या चमचमाहट होने का लक्षण हो सकता है। सातवीं नाड़ी के दबने से चेहरे के एक ओर स्तम्भ (Facial Spasm) या विक्षोभ तथा निर्बलता का लक्षण होता है। X-Ray द्वारा अन्दरला Auditory Meatus खाया हुआ दीखता है।

Pituitary ग्रन्थि के अर्बुद :- Pituitary Adenoma:-

मस्तिष्कार्बुदों में से ५ प्रतिशतक इस ग्रन्थि में होते हैं। इस ग्रन्थि

Anabolism प्रबलता से होता है और ये लक्षण शान्त हो जाते हैं ।

Eosinophilic Adenoma:- Acidophil सेलों से होने वाला अर्बुद कम होता है तथा जब होता है तो उपर्युक्त अर्बुद की अपेक्षा आकार में छोटा होता है अर्थात् उसके दबाव से नेत्र सम्बन्धी लक्षण जो ऊपर कहे गये हैं विशेष नहीं होते । इस अर्बुद के कारण इस ग्रन्थि के सूक्ष्मरस की उत्पत्ति अधिक होती है अर्थात् Hyperpituitarism के लक्षण होते हैं । छोटी आयु में जब अस्थियों का विकास हो रहा होता है यह रोग हो तो Gigantism का रोग हो जाता है । यद्यपि मांस पेशियों में उचित वृद्धि न हो सकने से वह निर्बल रहता है । युवावस्था में यह रोग हो तो Acromegaly का रोग हो जाता है। अर्थात् हाथ, पांव, कान, ओष्ठ हनु, भौहें आकार में बढ़ हो जाते हैं त्वचा मोटी तथा भद्दी हो जाती है ।

Basophil Adenoma:- Basophil सेलों में होने वाली यह अति वृद्धि बहुत कम होती है । युवकों में कभी कभी होती हुई पाई जाती है । यह अर्बुद आकार में छोटा होता है, इसमें Cushing Syndrome में कहे गये लक्षण होते हैं जो Adrenal Cortex की अधिक सक्रियता अर्थात् Glucocortico-ids की अधिकता के कारण होते हैं ।

मस्तिष्कार्बुद के लक्षण :- मस्तिष्कार्बुद के मस्तिष्क में दबाव के कारण एक तो स्थानिक (Local) दूसरे व्यापक या सामान्य (General) लक्षण हुआ करते हैं । स्थानिक लक्षण स्थानानुसार इस प्रकार होते हैं :-

मस्तिष्काग्रिम खण्ड के अग्रिम भाग(Prefrontal Lobe):- अग्रिम खण्ड का अग्रिम भाग बुद्धि, धृति, स्मृति, ध्यान, एकाग्रता, विवेक आदि मानसिक गुणों तथा भाषण का स्थान है । इसमें अर्बुद हो (या Arterial Thrombosis) हो और उसका दुष्प्रभाव दोनों ओर हो तो मनुष्य की सामान्य समझ जाती रहती है जिससे उसका स्वभाव या व्यक्तित्व ही बदल जाता है । वह अपने दैनिक कार्य के करने में असमर्थ हो जाता है । जिन बातों से उसे रुचि थी उनसे भी उपरत या उदासीन हो जाता है । औरों के साथ भी वह जिस शिष्टता और सभ्यता से वर्तता था वह भी जाती रहती है, जिनसे प्रेम व आदर का भाव था वह भी नहीं रहता अपने शरीर व वस्त्रों को ठीक से रखने की समझ भी उसे नहीं रहती । रात को मूत्र और कभी मल भी बिस्तरे पर हो जाता है ।(Incontinence) क्रमशः वह भावहीन बुद्धिहीन और मूर्ख होता जाता है । (Dementia) फिर उसे काल दिशा और व्यक्तियों के पहचानने में भी भ्रम होने लगता है(Disorientation) तथा स्थान का विचार किये बिना ही निर्लज्ज सा होकर वह मल मूत्र त्यागने लगता है । इस भाग में अर्बुद के होने से वह चेष्टाओं में असमर्थ हो जाता है । अर्थात् रोग एक ओर हो तो उससे सम्बन्धित हाथ से वह उस चेष्टा को जो उसे करने को कही जाय वह नहीं कर सकता या मन्दरूप से और भद्दे रूप से करता है दूसरे हाथ से वह उसे ठीक से करता है । अर्थात् रोगी कहे

को ग्रहण तो करता है करके को कर भी सकता है पर ग्रहण करने और चेष्टा करने के मस्तिष्क गत भागों को जोड़ने वाले भाग मेंरोग के होने से वह चेष्टा में असमर्थ हो जाता है । (Apraxia) ऐसे व्यक्ति में Grasping Reflex का लक्षण होता है अर्थात् उसकी दूसरी ओर की हथेली में कोई वस्तु रखी जाय तो वह उसे भींच कर पकड़ लेता है । अर्बुद का दुष्प्रभाव दोनों ओर के अग्रिम खण्डों पर हो जाय अर्थात् Corpuscallosum के द्वारा वह दूसरी ओर भी फैले तो रोगी चेष्टा हीन होकर पड़ा रहता है (Catatonia) अर्बुद के कारण Orbital Lobule दब जाये तो गन्धनाड़ी के दब जाने से उस ओर गन्धनाश (Anosmia) हो जाता है । दृष्टिनाड़ी (Optic N.) दब जाय तो उस ओर Opticatrophy तथा दृष्टिमांद्य (Amblyopia) का लक्षण हो जाता है । हो सकता है उस ओर दृष्टिमांद्य हो दूसरी ओर Papilloedema हो (Foster Kennedy's Syndrome)

अग्रिमखण्ड के पश्चिम भाग Post Frontal या Ascending Frontal Convolution या चेष्टा क्षेत्र:- में अर्बुद (या Arterial Thrombosis) हो तो प्रधानत: आक्षेप (Convulsions) के होने का लक्षण होता है जो या तो दूसरी ओर के चेहरे से आरम्भ हो फिर उधर के हाथ और पैर में जाता है या उधर के हाथ के अंगूठे से या उधर के पैर के अंगूठे से आरम्भ होकर फिर क्रमश: चेहरे में जाता है । स्पष्ट है कि पहली अवस्था में अर्बुद इस Convolution. के तले में अर्थात् Sylvian Fissure के पास है ऐसा समझना चाहिये । दूसरी अवस्था में यह इस Convolution के ऊपर के हिस्से में है, हाथमें आक्षेप हो तो रोग इस Convolution के मध्य में होता है । होसकता है कि आक्षेप के दौरान में रोगी अपनी होश में रहे, हो सकता है कि वह बेहोश होकर गिर जाय उसकी सिर तथा आंखें अर्बुद से विपरीत दिशा में फिर जांय । इस Jack Sonian Epilepsy के मन्द एवं तीव्र रूप में होने से इस अर्बुद के छोटे बड़े होने का अनुमान भी लगाया जा सकता है । जब यह अर्बुद केवल विक्षोभ का कारण होता है तभी यह आक्षेप का लक्षण होता है । पर यदि यह अर्बुद इस Convolution के Cortex का विनाशक होने लगे तो उस (Cortex) में विद्यमान केन्द्रों के एक दूसरे से दूर होने से एकांग घात Monoplegia का लक्षण होता है यदि इस अर्बुद का दुष्प्रभाव Corona Radiata पर हो तो वहां चेष्टा सूत्रों के समीप समीप आ जाने से एक बाहु या जांघ की शाखा पर घात (Paralysis) विशेष होता दूसरी शाखा पर हलका सा असर होता है । हो सकता है कि Meningioma दोनों गोलार्धों के बीच के Dura में अर्थात् Falx Cerebri में हो जिससे आमने सामने दोनों Motor Areas के ऊपर के सिर दब जायं तो दोनों टांगों में स्तब्धता युक्त पक्षाघात हो जाता है पर दोनों बाहु ठीक रहते हैं । इस Precentral Gyrus के निचले सिर पर अर्बुद होकर आगे की ओर बढ़े तो भाषण के केन्द्र (Speech Centre) के ग्रस्त हो जाने से Dysphasia या भाषण कृच्छ्रता का लक्षण हो जाता है ।

संज्ञाक्षेत्र Sensory Area. या Parietal Lobe. में अर्बुद या Vascular Thrombosis हो तो उसके कारण आगे के चेष्टा क्षेत्र (Motor Area) पर दबाव पड़ जाने से विक्षोभात्मक लक्षण हो सकते हैं अर्थात् आक्षेप (Convulsion या Jacksonian Epilepsy) के दौरे होते हैं । चेहरे से आक्षेप आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के निचले भाग में है, आक्षेप पैर से आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के उपरले सिरे पर है, हाथ में आक्षेप आरम्भ हो तो अर्बुद इस क्षेत्र के बीच के भाग में है ऐसा समझना चाहिये। इस स्थान के अर्बुद के कारण जो आक्षेप दूसरी ओर होते हैं उनमें रोगी के पहले उधार सुप्ति-चमचमाहट (Tingling) या किसी प्रकार की संज्ञा सम्बन्धी विकृति पहले होती है । हो सकता है कि दूसरी ओर पहले केवल Paraesthesia के ही लक्षण हों आक्षेप बाद में शुरु हों । अर्बुद के कारण इस क्षेत्र में विनाशात्मक प्रभाव हो तो दूसरी ओर संज्ञानाश सम्बन्धी लक्षण होते हैं । प्रत्येक Parietal Lobe में दूसरी ओर की उथली (Superficial) संज्ञायें Spinothalamic Tract से तथा गहरी (Deep) संज्ञायें Posterior Column से प्राप्त होती हैं । त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियां संज्ञाओं को तो प्राप्त करती है पर इनका सम्मिलित बोध तो हमें Cortex के द्वारा होता है । जब यह रुग्ण या नष्ट हो जाय तो दूसरी ओर से प्राप्त संज्ञाओं का मिश्रित या पूर्ण बोध व्यक्ति को नहीं हो सकता । एक ही आकृति के दो भिन्न भिन्न ठोस पदार्थों की विभिन्नता को वह उधार के हाथ के द्वारा स्पर्श करके नहीं जान सकता (Asterognosis) एक ही समय दो स्थानों पर किये स्पर्श के भेद को भी वह नहीं बता सकता (Two Point Discrimination) साधारणत: वस्तु को स्पर्श करने से उसका सारा चित्र (Body Image) हमारे मन पर आ जाता है पर इस संज्ञा क्षेत्र के नष्ट होने से यह चित्र हमारे सामने नहीं आता (Agnosia) स्पर्श करने पर यह चित्र न आये तो इसे Tactile Agnosia कहते श्रवण करने से न आये तो इसे Auditory Agnosia कहते हैं । देखने पर न आये तो इसे इसे Visual Agnosia कहते हैं । इसी प्रकार घ्राण और स्वाद से वस्तु का ज्ञान न हो पाय तो Olfactory तथा Gustatory Agnosia भी हो सकते हैं । Parietal Lobe के अग्रिम खण्ड में अर्बुद का प्रभाव हो तो क्योंकि वहां पर Retinae के ऊर्ध्व भाग से आने वाले सूत्र Optic Radiation के रूप में पीछे आ रहे होते हैं । उनके दब जाने से अर्बुद के दूसरी ओर के आधे-दृष्टि क्षेत्रों के निम्न भागों में, अन्धेरा सा आने लगता है अर्थात् Contra Lateral Lower Quadrantic Hemianopia. का लक्षण हो जाता है । इस Parietal Lobe के पिछले भाग में अर्बुद हो तो Optic Radiation के ग्रस्त होने से दोनों आंखों के दूसरे ओर के आधे क्षेत्रों में अन्धेरा आने लगता है अर्थात् Contralateral Total Hemianopia हो जाता है ।

Temporal Lobes:– में अर्बुद हो (या Sclerosis की पूर्ण प्रक्रिया हो) तो इसके कारण आक्षेप या Focal fits. के दौरे होते हैं ।

और क्योंकि इसके Uncinate और Hippocampalgyri में गन्ध संज्ञा तथा रस संज्ञा के केन्द्र (Cortical Centres) होते हैं। तथा इसके Upper Convelution में श्रवण संज्ञा (Auditory) के ग्रहण करने का केन्द्र भी होता है। इसलिये रोगी को इस अपस्मार सदृश दौरे के समय किसी बुरे स्वाद या बुरे गन्ध की मिथ्या प्रतीति (Hallucination) होने का लक्षण रहता है। रोगी के ओष्ठों की चेष्टा से पता लगता है कि उसे कोई बुरा स्वाद प्रतीत हो रहा है। दृष्टि सम्बन्धी और श्रवण सम्बन्धी मिथ्या प्रतीतियां भी उस हो सकती हैं। इन प्रतीतियों के साथ रोगी एक स्वप्न सदृश अवस्था में चला जाता है इसे Psychomotor Epilepsy मानस अपस्मार या मस्तिष्क विकृति जनित अपस्मार या Psychic Automatism कहते हैं। इस स्वप्न सदृश अवस्था में या मानस अपस्मार में रोगी को विचित्र दृश्य दीखने या विचित्र शब्द सुनते प्रतीत होते हैं। इस अवस्था में रोगी किसी मस्ती (Ecstacy) की अवस्था में चला जाता या विषाद (Depression) के भाव में थोड़ी देर पड़ा रहता है। इस प्रकार मानस अपस्मार इस खण्ड के विकारों का एक प्रधान लक्षण है।

क्योंकि Retinae के निचले भाग से आये दृष्टि सूत्र Temporal-Lobe में से होकर पीछे जाते हैं (जिसलिये इन्हें Temporal Loop of Radiation कहते हैं) अर्बुद से दब जाय तो Homonymous Upper Quadrqntanopia का लक्षण हो जाता है। बांई ओर के Superior Temporal Gyrus में विद्यमान श्रवण संज्ञा का केन्द्र इस अर्बुद से ग्रस्त हो तो वह जिस शब्द को बोलता है उसे स्वयं ठीक तरह सुनता समझता नहीं। (Word Deafness या Dysphasia of Receptive type या Auditory Agnosia) इसी प्रकार लेख में देखे हुए शब्द को वह देखता व बोलता है समझता नहीं (Word Blindness या Visual Dysphasia) अर्थात् वह शब्द जो बोलता सुनता व पढ़ता है उसे वह समझता नहीं क्योंकि समझने के स्थान पर ही रोग है तथा जो अन्दर समझा जाता है वही बोला जाता है अतः उसमें Dysphasia का लक्षण भी होता है। Occipital Lobe— इसके अन्दर की ओर Calcarine Fissure के समीप Cortex में Optic Radiation के सूत्र समाप्त होते हैं। इस प्रकार एक ओर के Cortex के सेल दोनों नेत्रों के दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रों को देखने का काम करते हैं। इसलिये यदि दांई ओर सिर पर अर्बुद या रक्तवाहिनियों का रोग हो और उसके कारण विक्षोभ उत्पन्न हो जाय तो दोनों आंखों के वामार्ध दृष्टि क्षेत्रों में प्रकाश के चमकारे (Flashes of light) समय समय पर दिखाई पड़ने लगते हैं जिसे Jacksonian Visual Hallucination या दृष्टि सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति का रोग कहते हैं। Occipital Lobe के अगले भाग में जहां वह Temporal Lobe से सन्धि करता है ऐसा विक्षोभ कारक अर्बुद हो तो ऐसी दृष्टि सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति होती है जिसमें बहुत से मनुष्य या पशु या बड़े बड़े स्थान बने हुये दिखाई पड़ते हैं। अब यदि इस अर्बुद या रक्तवाहिनी सम्बन्धी रोग के कारण Optic Radiation

में विनाश की प्रक्रिया होने लगे तो दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रों में अन्धेरा हो जाता अर्थात् Contralateral Homonymous Hemianopia का लक्षण हो जाता है। पर केन्द्रीय दृष्टि (Central Vision) बनी रहती है। यदि यह विनाशक अर्बुद या रक्तवाहिनी का विनाशक रोग साधारण सा ही हो तो दोनों आंखों के सामने Scotoma या एक अन्धेरे का बिन्दु दिखाई पड़ने लगता है। यदि यह रोग एक ओर के पिछले सिरे (Occipitalpole) पर हो तो क्योंकि वहां दोनों ओर की [illegible] केन्द्रीय दृष्टियां केन्द्रित होती हैं अत: Contralateral, Central, Homonymous Hemianopic Scotoma का लक्षण होता है अर्थात् जिधर रोग होता है उससे दूसरी ओर की आधी केन्द्रिय दृष्टि में अन्धेरा रहता है। अब यदि दोनों सिरे (Poles) नष्ट होने लगें तो Bilateral Central Scotoma का लक्षण होता है। बांये Occipital Lobe के पृष्ठ पर अर्बुद का रोग हो तो पिछले दृष्टि केन्द्र तथा आगे की ओर विद्यमान भाषण केन्द्र (Speech Centre) का परस्पर सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है जिससे Word Blindness का लक्षण हो जाता है। अर्थात् स्वयं का बोला हुआ शब्द उसे समझ में नहीं आता।

Cerebellum में अर्बुद या रक्तवाहिनी (Vascular) सम्बन्धी रोग हो या उसमें Sclerosis अथवा Atrophy हो तो उसके लक्षण:-

Cerebellum या लघुमस्तिष्क को चेष्टा व्यवस्थापक मस्तिष्क कह सकते हैं। इसके प्रत्येक गोलार्ध में अपनी ओर की शाखाओं, और Vermis में सिर और धड़की चेष्टाओं को व्यवस्थित करने का गुण निहित रहता है। एतदर्थ इसमें प्रेरणा सूत्र Afferent Fibres (१) सुषुम्ना काण्ड के Dorsal तथा Ventral Spinocerebellar Tracts के द्वारा आते हैं। जिनके द्वारा उधर की संधियों व मांसपेशियों से प्रेरणा आती है। (२) उधर के अन्त:कर्ण Labyrinth से प्रेरणा लाने वाले सूत्र Vestibular Nucleus से इसमें आते हैं। ।३। दूसरी ओर के ऊर्ध्व मस्तिष्क या Cerebral Cortex से भी प्रेरणावाही Afferent सूत्र Pons के द्वारा इसमें आते हैं।

(१) इनके विपरीत इसमें से जाने वाले प्रेरक Efferent सूत्र Rubrospinal Tract के द्वारा उधार के सुषुम्ना काण्ड में Anterior Horns तक जाते और उधर की मांसपेशियों व संधियों को प्रेरित करते हैं। ।२। इसमें से Cerebello Vestibular सूत्र उधर के Vestibular (Deiter's) Nucleus में जाते और फिर Vestibulospinal Tract के द्वारा उधर के Anterior Horns में पहुंच कर मांसपेशियों की स्थिति को कायम रखने का कार्य करते हैं। ।३। Cerebellum में से आने वाले सूत्र Posterior Longitudinal Bundle के द्वारा ऊपर Oculomotor Nucleus तथा Accessory Nerve के Spinal भाग के साथ भी सम्बन्धित रहते हैं जिससे यह (Cerebellum) नेत्र शिर व ग्रीवा की चेष्टाओं का नियमन करता है। ।४। इसमें से प्रेरक सूत्र Cerebellocerebral Efferent Fibres ऊर्ध्व मस्तिष्क के Post तथा Precentral Cortex में जाते हैं। इस प्रकार यह [illegible] Equibration तथा सहयोग Coordin-

मस्तिष्क के पीछे के Motor area के [illegible]

५: ६६० ।६। :--

ation को बनाये रखता है। इसीलिये इसमें रोग होने पर निम्नलिखित चेष्टा वैशम्य सूचक दुर्लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। जिन्हें Cerebellar Syndrome कहते हैं। अर्बुद या रोग इसके मध्य में हो तो Ataxia धड़ में होता है। यदि रोग इसके एक बाजू में हो तो Ataxia उसी ओर होता है।

।१। Hypotonia- जिस ओर के Cerebellum में अर्बुद या रोग होता है उधर की मांस पेशियां स्पर्श करने से ही शिथिल प्रतीत होती हैं। उधर की शाखायें दूसरी ओर की अपेक्षा शिथिल दीखती हैं। जिससे उधर की जांघ को बाहर की ओर दूर तक उठाया या Abduct किया जा सकता है। ऊर्ध्व बाहु को थामकर अग्रबाहु को हिला के देखा जाय तो वह अधिक शिथिल लगती है। इस प्रकार मांस शैथिल्य- Hypotonia- इस रोग का प्रधान लक्षण है। इसीलिये उधर की शाखाओं में प्रतिरोधक शक्ति (Resistance) घटी हुई होती है। इस शैथिल्य के अतिरिक्त इन मांस पेशियों की शक्ति भी घटी हुई होती है (Asthenia) जिससे उसके हाथ की पकड़ निर्बल होती अथवा उधर का हाथ स्वल्प श्रम से थक जाता है। Hypotonia के कारण रोग ग्रस्त शाखा में Reflex मन्दरूप में होते हैं। जिधर की मांसपेशियां निर्बल होती हैं रोगी उधर की ओर झुका हुवा चलता है। अर्थात् उधर का कंधा दूसरे की अपेक्षा कुछ नीचा होता है। यदि लड़खड़ा जाता है तो उधर की ओर ही गिरता है। उधर की बांह भी चलते समय जैसे हिलनी चाहिये वैसे नहीं हिलती। इस प्रकार रोगी की चाल या स्थिति से भी इस रोग का पता चलता है।

।२। अव्यवस्थित चेष्टा -Ataxia- रुग्ण भाग की मांसपेशियों में अशक्ति और शैथिल्य के कारण तथा उनमें परस्पर सहयोग के न रहने अर्थात् Incoordination के कारण उनकी चेष्टाओं में नाना प्रकार की विलक्षणता उत्पन्न हो जाती है उदाहरणतः ।१। चेष्टा में मात्रा हीनता-Dysmetria- या अति मात्रता-Hypermetria- आ जाती है। यदि रोगी को रुग्ण हाथ से मेज पर पड़ा गिलास उठाना हो तो अपनी अशक्ति के कारण वह उसके उठाने में अधिक या अनुचित बल का प्रयोग करता है। उसे पकड़ते समय आवश्यकता से अधिक हाथ को खोलता है और फिर उसे अधिक बल के साथ पकड़ता है। इसी प्रकार उसे फिर मेज पर रखते समय भी वह हाथ को अधिक मात्रा में खोलता है। ।२।Rebound Phenomenon:- यदि रोगी अपने सामने अपने दोनों बाहुओं को प्रबलता से संकुचित किये हुये हो और हम एक एक हाथ से उनको अपनी ओर खींचकर एक दम छोड़ दें तो अस्वस्थ ओर की बाहु छूटकर पीछे झटके के साथ रोगी को जाके लगेगी। जबकि स्वस्थ बाहु अपने आप रुक जायगी। पीछे की तरफ झटके से इस अंग के जाने के कारण इसे Rebound Phenomenon कहते हैं। ।३। Dysdiadokokinesis अर्थात् परस्पर विपरीत चेष्टाओं के एक के बाद दूसरी के करने की शक्ति उसमें घट जाती है। उदाहरणतः मुट्ठी को बन्द करने और फिर खोलने और फिर बन्द करने की चेष्टा या हथेली को नीचे

ऊपर करने (Pronation Supination) की चेष्टा जैसे स्वस्थ पार्श्व में होती है वैसी अस्वस्थ पार्श्व में नहीं होती प्रत्युत मांस पेशियों की अशक्ति के कारण व थक जाने के कारण शनैः शनैः व भद्दे तौर से होती है इसे Dysdiadokokinesis कहते हैं। |४| कम्प Tremors- उन सूक्ष्म चेष्टाओं के जिनमें मांस पेशियों के संकोच व प्रसार (Contraction तथा Relaxation) पर अधिक नियंत्रण आवश्यक होता है। करने में रोगी को कठिनता प्रतीत होती है। क्योंकि उस समय उस अंग में कम्पन होने लगता है। उदाहरणतः सूई में धागा डालते समय जब धागा नक्के के पास पहुंचता है और जब पेशियों पर अधिक नियन्त्रण आवश्यक होता है तब मांस पेशियों में अशक्ति के होने तथा परस्पर सहयोग के ठीक न रहने से हाथ कांपने लग जाता है। इसी तरह भरा हुआ प्याला उठाकर जब ठीक मुख के पास आ जाता और उसे वहां ठीक ठीक लगाना होता है तो हाथ कांप जाता है। इसे Intention Tremor कह सकते हैं।

Ataxic Dysarthria-Cerebellum के रोग के कारण जैसे अन्यान्य मांसपेशियों में परस्पर सहयोग की न्यूनता हो जाती है वैसे ही भाषण सम्बन्धी ओष्ठ तालु जिव्हा आदि की मांसपेशियों में भी परस्पर जो सहयोग रहना चाहिये वह कम हो जाता है जिससे भाषण में मन्दता यत्न साध्यता और अक्षरों के बीच के अन्तर की दीर्घता के लक्षण हो जाते हैं। इस प्रकार के भाषण को Scanning या Staccato Speech या शनैः शनैः भाषित कह सकते हैं। Vascular Sclerosis का रोग अधिक हो और इन मांसपेशियों पर नियंत्रण और भी ढीठ जाय तो अनेक अक्षरों के मिल जाने और अस्पष्ट हो जाने से Explosive या Slurred Speech का लक्षण हो जाता है।

Nystagmus:- विश्राम अवस्था में आंखों में लेटी Horizontal दिशा में कोई कम्पन नहीं होता। परन्तु यदि रोगी जिस ओर अर्बुद है उस ओर किसी वस्तु पर आंखों को टिकाये तो नेत्र मांस पेशियों की निर्बलता के कारण गोलक एक स्थान पर टिकते नहीं और उनमें बड़े बड़े (Ampliludinous) मन्द गति वाले कम्पन होने लगते हैं। दूसरे पार्श्व की ओर आंखों को घुमाने पर कम्पन छोटे छोटे और तीव्र गति वाले होते हैं। इस प्रकार यह Nystagmus या नेत्र मांस पेशियों का Hypotonia. लघु मस्तिष्क के रोग का सूचक होता है। बालकों में Cerebellum में Astrocytoma होता है। युवकों में Haemangioblasloma होता है। Medulloblastoma भी बालकों में कभी कभी होता है जो घातक होता है।

मस्तिष्कार्बुद के सामान्य लक्षण :-

मस्तिष्कार्बुद चाहे शीघ्र बढ़ने वाला हो चाहे चिरकाल में उसके कारण Ventricles के अन्दर विद्यमान मस्तिष्क द्रव Cerebrospinal Fluid में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विशेषतः Posterior Fossa में Cerebellum तथा Mid Brain पर दबाव डालने वाले अर्बुदों से यह अवरोध उत्पन्न होता है। इससे Hydrocephalus अर्थात शिर मे जल वृद्धि का रोग होकर मस्तिष्कान्तर्गत

Intracranial Pressure बढ़ जाता है । अर्बुद के द्वारा शिरायें भी दब जाती हैं । एवं उनमें रक्त अधिक मात्रा में संचित हो जाता है और मस्तिष्क में श्वयथु Oedema होकर भी यह भार बढ़ जाता है । इसका परिणाम Papilloedema होता है ।

Papilloedema- मस्तिष्क में भार के बढ़ने से Optic Nerve का खोल दब जाता है जिससे Retina में विद्यमान Nerve Head के खोल (Sheath) में द्रव अधिक मात्रा में रुक जाता है । इसके फूल जाने से Retina की Central Vein भी दब जाती है और उसके बाद शेष शिराओं Veins भी रक्त से अधिक भरने लगती हैं । Opthalmoscope से परीक्षा करने पर Papilla या Disk अधिक लाल दीखती है तथा वहां अतिरिक्त संचय तथा खोल में द्रव के रुक जाने से गढ़ा कुछ भरा हुआ लगता है । फिर गढे के किनारे अस्पष्ट हो जाते हैं और यह गढ़ा गढ़ा न रहके उभार का रूप ले लेता है । कुछ काल बाद बाहर निकले हुए द्रव Exudation के द्वारा रक्तवाहिनियों के बाहर आने का यह स्थान छिप जाता है । Macula के प्रदेश पर भी बाहर निकला हुआ यह द्रव जब बढ़कर Retina की अन्दर की ओर की झिल्ली Membrana Limitans Interna को तोड़कर बून्द बून्द करके बाहर आता और Vitreous Humour के साथ लगता है तो वहां जम जाता है और वहां दीखने वाले Macular Fan का कारण होता है । Retina की शिराओं में संचित हुआ रक्त स्थान स्थान पर स्रवित होकर Nerve Fibres के साथ साथ ज्वालाओं (Flames) के रूप में दिखाई पड़ता है । Disc में द्रव के अधिक रिसने पर वह भी श्वेत वर्ण दीखने लगती है । कुछ काल बाद स्रवित हुए रक्त बिन्दु भी श्वेत से जख्मों के निशान के रूप में दीखने लगते हैं । तथापि इस रोग के प्रारम्भ में पर्याप्त समय तक दृष्टि में विशेष न्यूनता नहीं आती । इस श्वयथु Oedema के बहुत देर रहने से जब Optic Nerve में लघुता या Atrophy होती है तब दृष्टि मन्दता (Amblyopia) का लक्षण होता है । Papilloedema का लक्षण पहले एक तरफ होता है बाद में दूसरी ओर भी हो जाता है । Optic Neuritis के रोग में दृष्टि मन्दता का लक्षण अधिक होता यद्यपि Papilloedema इतना नहीं होता, इस रोग में यह अधिक होता पर दृष्टिमन्दता का लक्षण विशेष नहीं होता ।

शिर:शूल - अर्बुद के कारण या उससे उत्पन्न मस्तिष्कान्तर्भार के बढ़ने से जब Sinuses या उनकी बनाने वाली Tributaries के Duramater पर खींच (Traction) पड़ती है तो क्योंकि इसमें से संज्ञावाही सूत्र पंचम मस्तिष्क नाड़ी (Trigeminal) में जाते हैं, इसलिये रोगी को शिर में दर्द का लक्षण भी रहता है । रात को लेटने के बाद प्रातः काल उठने पर या किसी समय भी लेटने के बाद उठने पर या नीचे की तरफ झुकने पर या जोर लगाके खांसने, छींकने, पर यह बढ़ जाता है । प्रारम्भ में यह हर समय नहीं रहता बाद में कम न कुछ हर समय रहता है ।

हो सकता है कि अन्दर जिस जगह पर अर्बुद हो उस पर कपाल के ऊपर टकोरने से भी स्पर्शासहिष्णुता प्रतीत हो।

वमन :- अर्बुद के कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढ़ जाने पर Medulla में विद्यमान वमन केन्द्र (Vomiting Centre) के विक्षुब्ध हो जाने से बिना किसी अरुचि या अजीर्ण के लक्षण के हुए ही वमन हो जाती है। सिर पर किसी प्रकार के आघात लगने या ज्वर के हो जाने पर यह लक्षण प्रकट हो जाता है। इसे Cerebral Vomiting कहा जाता है।

आक्षेप :-Convulsions:-मस्तिष्क के ऊपरलेखण्ड में अर्थात् Tentorium से ऊपर के भाग में अर्बुद हो तो उसके विक्षोभ से अपस्मार सदृश आक्षेप का लक्षण बहुधा होता है। यदि आक्षेप का लक्षण २५ वर्ष की आयु के बाद पहली बार हो तोअर्बुद का सन्देह हो जाना चाहिये। Tentorium के नीचे अर्बुद के होने पर उसके कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढ़ने से भी कभी कभी आक्षेप का लक्षण हो सकता है।

मन्दता और मूर्च्छा :- Drowsiness- अर्बुद के पुराने हो जाने पर ~~ढढढढढ~~ जीवनी शक्ति घटती जाती तथा तन्द्रालुता बढ़ती जाती है जो पीछे मूर्च्छा (Coma) में बदल जाती है। अर्बुद (या Dura) के अन्दर या बाहर रक्तस्राव) के कारण मस्तिष्कान्तर्भार के बढ़ जाने पर नाड़ी गति मन्द हो जाती है। श्वास गति भी मन्द हो जाती है। श्वास उथला हो जाता है और यदि Cerebrum पर दबाव अधिक हो जाय तो श्वास विषम Cheyne Stokes किस्म का हो जाता है। अर्थात् इन दोनों के केन्द्रों के दबने से यह दुष्प्रभाव होता है।

रोग विनिश्चय - Radiology से अधिक पता तो नहीं चलता कुछ सहायता मिल सकती है। Meningioma हो उसके कारण कपालास्थि खाई गई हो तो उसका पता चल सकता है। Pituitary Adenoma हो तो इसका Fossa फैला हुआ दीखता है या Clinoid Process खाया हुआ दीखता है। मस्तिष्कान्तर्भार बढ़ा हुआ हो तो कपालास्थियों पर के चिन्ह (Convolutional Markings) अधिक स्पष्ट होते हैं अर्थात् कपालास्थियें Beaten Silver की सी शक्ल आ जाती है। Sella के ऊपर पीछे मध्य रेखा में विद्यमान Pineal Body. २५ वर्ष की आयु के बाद कठोर हो जाती है जिससे X-Ray में वह आ जाती है। वह अपने स्थान से हटी हुई दीखती है। छोटे बच्चे में अर्बुद हो तो उसके कारण उत्पन्न मस्तिष्कान्तर्भार से कपालास्थियों के सीवन (Sutures) खुल जाते हैं जिसका पता X-Ray से लग जाता है।

Ventriculography या Eucephalography द्वारा कपाल में छिद्र करके (Burrhole) सीधा Ventricles में २०-३० मिलि०लि० हवा को प्रविष्ट करके यह Ventricular System में जो स्थानिक विषमता आ गई है या उसमें जहां अवरोध आ गया है उसका पता लगाया जाता है। Tentorium से नीचे अर्बुद हो तो 3rd. Ventricle में दोनों ओर एक सा फैलाव होता है। एक

active

ऊर्ध्व मस्तिष्क में अर्बुद हो तो एक तरफ Filling Defect होता है। Arterial Angiography or Arteriography- Radioopaque रंग के Carotid या Vertebral Artery में डालकर देखने से अर्बुद के द्वारा जो धमनी अपने स्थान से हट गई है उसका पता चल जाता है। Vascular Glioma, Angioma, Aneurism आदि का भी पता चल सकता है।

Electro-Encephalography:- अर्बुद के आसपास के विनश्यमान मस्तिष्क के अवयव में बड़ी बड़ी Delta Waves (Focus of Large Delta Waves) के उत्पन्न होने से अर्बुद के स्थान का निर्णय किया जा सकता है। ऊर्ध्व मस्तिष्क से असम्बन्धित अर्बुद का पता इस विधि से नहीं लगता। Radioisotophes के द्वारा जो अर्बुद में जमा हो जाते हैं अब इनका पता लगाया जा रहा है।

मस्तिष्कार्बुद का साध्यासाध्य :-

मस्तिष्कार्बुद का रोग उत्तरोत्तर बढ़ता ही है औरमस्तिष्कान्तर्गत भार के बढ़ने से Papilloedema होकर दृष्टि नष्ट हो जाती है। तन्द्रालुता बढ़ती जाती और फिर मूर्छा (Coma) हो जाती है जिसमें Hypostatic Pneumonia होकर मृत्यु हो सकती है या श्वास केन्द्र पर दुष्प्रभाव होने से सहसा ~~aaaaaa~~ श्वासावरोध हो जाता है एवं चेहरे का रंग नीला पड़ जाता है। मस्तिष्कान्तर्भार के कारण Cerebellum के या Mid Brain के नीचे Foramen Magnum की ओर दब जाने से श्वास केन्द्र नष्ट होने लगता है। इसीलिये यदि शल्यकर्म के द्वारा इसे निकाला न जा सके तो अर्बुद शीघ्र या देर में घातक होता है। Secondary Carcinoma जो बड़ी आयु में होता है ३ मास में ही घातक हो जाता है। कम घातक Glioma कुछ वर्षों में घातक होता है। Meningioma बहुत धीरे बढ़ता है अतः वह बहुत वर्षों चलता है। Cerebellar Astrocytoma तथा ये दोनों शल्यकर्म द्वारा निकाले जा सकते हैं। Pituitary Odenoma तथा Accustic Neurcfibroma में से कुछ तो वर्षों में थोड़ा ही बढ़ते हैं, कुछ शीघ्र बढ़ जाते हैं। इनसे दृष्टि कम होने लगे तो शल्य कर्म आवश्यक हो जाता है। कुछ दृष्टि मन्दता तथा बधिरता के दुर्लक्षण फिर भी रह जाते हैं।

मस्तिष्क विद्रधि :- Brain Abscess, Intracerebral Abscess.

Pyogenic या Suppurative Meningitis- अर्थात् पूयजनित-मस्तिष्कावरण-शोथ भी एक मस्तिष्कान्तः शोथ है और वह भी कभी कभी कर्णास्थि में धुर्ण व्रण या Tegmentymponi में Caries के हो जाने पर वहां से पूयजनक जीवाणुओं (Staphylo-Streptococci) के Meninges में प्रवेश कर जाने से होता है। परन्तु यहां पर तो मस्तिष्क विद्रधि का जो कपालास्थियों में कहीं विद्रधि होकर उसमें से पूय जीवाणुओं के मस्तिष्क में प्रसरण कर जाने से उत्पन्न होती है उसका वर्णन किया जाता है। लगभग दो तिहाई रोगियों में यह मस्तिष्कविद्रधि पुराने कर्ण रोगी या Otitis Media के रोगी में Petrous Temporalbone या Mastoid में से

पूय जीवाणुओं के Duramater में चले जाने और उसके सूजकर ऊपर की तरफ पड़े Temporal Lobe के साथ चिपक जाने से मस्तिष्क में होती है अर्थात् Osteitis के उपद्रव रूप में होती है। परन्तु बहुधा Duramater और विद्रधि के बीच में कुछ स्वस्थ मस्तिष्क भी रहता है जिससे पता चलता है कि यह जीवाणु संक्रमण वहां पर शिराओं Emissary Veins में शोथ होकर अर्थात् Thrombophlebitis होकर होता है। Temporal Lobe के अन्दर श्वेत भाग में यह विद्रधि होती है।

इसी प्रकार $\frac{1}{10}$ अवस्थाओं में Frontal तथा दूसरे Nasal Sinuses में पूयभाव देर तक रहे और उसकी अस्थियों में Caries या Osteomyelitis का रोग हो जाय तो वहां से Frontal Lobe में मस्तिष्क विद्रधि बन जाती है। $\frac{1}{4}$ अवस्थाओं में रक्त के द्वारा कोई पूय जीवाणु फुफ्फुस में से अर्थात् Bronchiectasis, Emphysema या Pulmonary Abscess में से मस्तिष्क में पहुंच कर विद्रधि उत्पन्न कर देता है। यह विद्रधि ऊर्ध्व मस्तिष्क के श्वेत भाग में होती है इसे Haematogenous या Metastatic Abscess. कहते हैं।

विकृति :- मस्तिष्क के जिस प्रदेश में Staphylosteropto या Pneumococci जा पहुंचते हैं वह तो मृत Necrosed होकर Infarct बन जाता है। चारों ओर से श्वेताणुओं के आने से इसके आसपास का भाग पूय रूप या Pyogenic Membrane के रूप में परिणत हो जाता है। फिर इसके चारों ओर Fibroblasts के द्वारा एक सूत्र मय तह (Fibrous Capsule) बन जाती है। इस प्रकार मन्दरूप या Subacute. रूप में बनने वाली विद्रधि कोषबद्ध या Encapsulated. होती है इसके चारों ओर के मस्तिष्क में थोड़ा बहुत श्वयथु Oedema की विकृति भी रहती है और इस भाग पर चढ़े मस्तिष्कावरण Meninges में भी स्थानिक शोथ रहता है। आकार में यह अण्डे जितनी होती तथा इसके अन्दर की पूय हरे से रंग की कुछ दुर्गन्ध युक्त होती है।

लक्षण :- नवयुवकों या युवकों में होने वाला यह रोग है। रोगी को चिरकाल से Suppurative Otitis Media या कर्ण पूय रोग होता है या चिरकालिक Frontal Sinusitis का रोग होता है। अब इनमें से स्राव बन्द हो गया है ऐसा भी रोगी का इतिवृत्त रहता है। अब मस्तिष्क विद्रधि के आरम्भ होने पर रोगी की हालत बिगड़ने लगती है। सरदी लगकर कंप कंपी के साथ उसे ज्वर हो जाता है जो १००-१०१ डिग्री तक होता है। अरुचि और वमन के लक्षण होते हैं। परन्तु रह रह के होने वाला शिर:शूल उसके लिये बड़ा कष्टदायक होता है। यह शिर:शूल शंख प्रदेश पर होता है, पर सारे सिर में होता प्रतीत होता है। बिस्तरे पर से सिर उठाने, खांसने जोर लगाने या झुकने से बढ़ता है। शंख प्रदेश पर स्पर्श करने या दबाने से भी दर्द होता है। नाड़ी देखने में कुछ तेज होती पर ज्वर की दृष्टि से जितनी होनी चाहिये उतनी नहीं, जिव्हा मैली होती, मलबन्ध विशेष रहता है। यह अवस्था २-३ दिन ही रहती है। इस प्रारम्भिक अवस्था (Stage of Onset) के बाद जब विद्रधि विकसित हो जाती है तो कुछ सप्ताहों तक के लिये निम्नलिखित लक्षण होते हैं :-

शिर:शूल मन्द रूप (Dull Acne) में होता रहता है। परन्तु शंख प्रदेश पर या जहां विद्रधि होती है वहां कपाल पर स्पर्शाक्षमता का लक्षण होता है। कंपकंपी या तापमान के होने का लक्षण नहीं रहता। कभी कभी हल्का सा ज्वर होता है। नाड़ी गति मन्द होती पर नाड़ी भरी हुई होती है। श्वास गति मन्द होती है। वमन और मलबन्ध जारी रहते हैं। रोगी के मुख से व श्वास से दुर्गन्ध आती है। चेहरा फीके रंग का मटियाला दीखता है। शरीर कृश हो जाता है। प्रधान लक्षण उसमें मानसिक मन्दता (Mentaltorpidity) का होता है। मानों वह बाहर से उदासीन होकर जड़ सा हो गया हो। वह मूर्छा में नहीं होता पर अतिमन्द होता है। इस प्रकार पूय भाव (Sepsis) तथा मस्तिष्कान्तर्भार (Intracranial Pressure) के बढ़ने से उपर्युक्त नाना लक्षण होते हैं। रोग के प्रारम्भ में Antibiotic औषधियां दी गई हों तो Sepsis से होने वाले लक्षण इस प्रकार नहीं होते तब शिर:शूल और बाद में आक्षेप (Convulsions) के होने के लक्षण होते हैं।

<u>स्थानिक लक्षण :-</u> मस्तिष्क विद्रधि के स्थानिक लक्षण भी होते हैं अर्थात् (Temporal Lobe के निचले भाग से आरम्भ होकर क्योंकि यह ऊपर और आगे की ओर बढ़ती है और यदि यह बांये Lobe में होती है तो स्पष्ट है कि ।१। उधर आगे की ओर भाषण के केन्द्र के होने के कारण भाषण नैर्बल्य Dysphasia-का लक्षण हो सकता है अर्थात् रोगी एक वस्तु के नाम को बता नहीं सकता यद्यपि वह उसे जानता है (Word Blind, Nominal Aphasia) इस Lobe के बाहर के भाग में श्रवण का स्थान होने से दूसरी ओर बधिरता का लक्षण होता है। ।२। जिधर विद्रधि होती है उससे दूसरी ओर के आधे दृष्टि क्षेत्रों के ऊर्ध्व भाग में अन्धेरा हो जाने अर्थात् Homonymous Upper Quadrantic Hemianopia का लक्षण होता है। विद्रधि गहराई में हो तो Motor Fibres पर दबाव पड़ने से दूसरे ओर के चेहरे पर निर्बलता लगने लगती है। उसके बाद उधर की बांह और बाद में उधर की जांघ में भी निर्बलता (Supranuclear Type) हो सकती है। गहरे भाग में विद्रधि के होने पर मानस अपस्मार (Psychic Epilepsy) के से वेग जिनमें गन्ध और स्वाद सम्बन्धी (Uncinate Hallucinations) मिथ्या प्रतीतियां होती हैं, हो सकते हैं। इसके पिछले भाग में विद्रधि हो तथा उससे Cerebellum दब जाय तो Cerebellar किस्म के लक्षण भी हो सकते हैं। Frontal Lobe में विद्रधि हो तो बहुधा कोई विशेष लक्षण नहीं होता तो भी उदासीनता तथा विस्मृति के या कभी कभी मानस अपस्मार के लक्षण हो सकते हैं। ~~Frontal Lobe~~ Cerebellum में विद्रधि हो तो वमन होने का लक्षण प्रमुख होता है। शिर:शूल शिर के पिछले भाग में विशेष (Occipito Frontal) होता है। Nystagmus तथा Papilloedema के लक्षण भी होते हैं। शिर तथा ग्रीवा पीछे की ओर मुड़े हुए रहते हैं। नाड़ी मन्द तथा निर्बल होती है। श्वास विषम होता है या Cheyne Stokes किस्म का होता है। जिधर विद्रधि होती है उधर Hypotonia होता अर्थात् उधर की बांह शिथिल होती है।

भेदक लक्षण :- इस रोग का Mastoiditis तथा Meningitis से भेद करना चाहिये। मस्तिष्क 'विद्रधि' इन दोनों के साथ भी हो सकती है। पहले रोग का भेद करना सुगम है। दूसरे का पता प्रलाप की विशेषता, कण्ठ कुब्जता (Neck rigidity) विद्योभ शीलता, प्रकाशासहिष्णुता Photophobia तापमान की उच्चता, नाड़ी की तीव्रता से लगता है। विद्रधि में इसके विपरीत नाड़ी मन्दता होती तथा मानसिक मन्दता भी रहती है। मस्तिष्कार्बुद की बढ़ने की गति मन्द होती, तापमान भी उसमें नहीं होता, उसमें कृशता और पाण्डुता के लक्षण भी कम होते तथा Leucocytosis भी नहीं होता। वह Frontal तथा Parietal Lobes में अधिक होता जब कि यह Temporal Lobe में अधिक होता है। Papilloedema का लक्षण अर्बुद में विशेष रूप में होता है। इसी प्रकार Optic Neuritis भी अर्बुद का ही विशेषत: सूचक होता है।

मस्तिष्क द्रव परीक्षा :- मस्तिष्क द्रव-Cerebrospinal Fluid-को ३ सी०सी० मात्रा में निकालकर उसकी परीक्षा करनी चाहिये। एक तो उसका भार Pressure बढ़ा हुआ पाया जाता है Total Protein ४० मिलि०ग्र०श० से अधिक बढ़ा हुआ होता है। उसमें श्वेत कण या Cells भी अधिक होते हैं। अर्थात् प्रतिक्यूबिक मिलिमीटर में १०-२० के लगभग होते हैं। Chlorides की मात्रा नार्मल से कम होती है। रक्त की परीक्षा करने पर Leucocytosis १५-२० हजार प्रति क्यूबिक मिलिलीटर तक होता है। कपाल (Scalp) में Burrhole करके Hollow Blunt Needle से Exploration के द्वारा इसका निश्चय किया जाता है। मृत्यु इसके बढ़ते जाने के बाद जब कि मूर्छा गहरी होती जाती है इस विद्रधि के एक Ventricle में खुल जाने से घंटों में ही हो जाती है। उस समय वमन, गहरी मूर्छा, तापमान की वृद्धि, नाड़ी की तीव्र गति, श्वास वैषम्य (Cheyne Stokes Type) पुतली के फैल जाने (Dilatation of Pupil) मांस पेशियों में कम्प या स्तम्भ (Twitchings and contractions) के होने के लक्षण होते हैं। यह विद्रधि Subarachnoid Space में बहुधा खुल जाती है जिससे Leptomeningitis होकर अर्थात् वमन, प्रलाप, कम्प, आक्षेप, तीव्र ज्वर, मूर्छा, मन्द पर भरी हुई नाड़ी और बल पूर्वक लिये गये (Laboured) श्वास प्रश्वास के लक्षण होकर २-३ दिन में मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा :- Otitis Media, Nasal Sinusitis तथा Bronchiectasis आदि रोगों की चिकित्सा ठीक ठीक की जाय तो मस्तिष्क विद्रधि की रोकथाम की जा सकती है। तीव्र मस्तिष्क विद्रधि के लिये Benzyl Penicillin ५ लाख यूनिट्स मात्रा में ६-६ घंटे पर मांस द्वारा देनी चाहिये। Acute Abscess से Needle Aspiration. द्वारा कुछ पूय को निकाल कर उसमें Crystalline Sodium Penicillin G. को १ सी०सी० में १ लाख यूनिट्स मात्रा के हिसाब से Abscess में डाल देना चाहिये। उसके अन्दर १-२ सी०सी० ऐसा द्रव्य जिससे उसकी Radiography की जा सके (Diodone) जैसा डाल देना चाहिये ताकि विद्रधि के घटने का पता लग सके। इस प्रकार बार बार Aspiration तथा Penicillin के वहां प्रवेश करने से इसे ठीक किया जा सकता है। साथ ही ६० हजार यूनिट्स मात्रा में Crystalline Penicillin को ३-३ घन्टे

पर मांस द्वारा भी एक सप्ताह है तक दे दिया जाता है ।

पुरानी विद्रधि को तो Drainage करते हुए क्रमशः नीचे से भरने दिया जाता है । आयुर्वेद में सुश्रुत ।उत्तर अ०२५। में इस रोग को शंखक शूल कहा है । उसने कहा है कि शंख प्रदेश के अन्दर पित्त और रक्त के दूषित हो जाने ।अर्थात् वहां पूयभाव-Suppuration-के हो जाने। कफ के भी विकृत हो जाने (अर्थात् वहाँ Oedema के हो जाने) तथा इसके कारण वायु के विकृत हो जाने ।अर्थात् मस्तिष्क पंचम नाड़ी पर खींच पड़जाने। से सारे सिर में रह रहकर शूल का प्रबल वेग होता है । उसने इसे असाध्य एवं मारक कहा है । उसने इसका वर्णन आभ्यंतर विद्रधियों में नहीं किया। हृदय विद्रधि जो उसने कही है उससे उसका Cardiac Thrombosis या Infarct से अभिप्राय प्रतीत होता है ।

Anterior तथा Medial Nuclei के द्वारा यह स्थान मस्तिष्क के Frontal Area के साथ सम्बन्धित रहता है । इस प्रकार हमारा मस्तिष्क (Cortex) हमारी अनैच्छिक चेष्टाओं (Autonomic Activities) पर तथा अनैच्छिक नाड़ी मण्डल हमारे मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं । स्वस्थावस्था में यह स्थान अर्थात् हमारे चिन्ता, भय आदि भाव अग्रिम खण्ड अर्थात् बुद्धि के नियंत्रण में रहते हैं । एवं बुद्धि की प्रधानता में मनुष्य में प्रसाद का भाव न्यूनाधिक रहता है । जब अग्रिम खण्ड का पोषण कम हो जाता है अर्थात् हमारी बुद्धि दूसरे शब्दों में हमारी यथार्थ दर्शिता और यथार्थकारिता की शक्ति, एवं धृति शक्ति या रोकने वाली नियामक शक्ति कम हो जाती है तब Hypothalamus पर का नियंत्रण शिथिल हो जाता है । ऐसी अवस्था में हमारे चिन्ता, विषाद (Excitement) आदि मानस भाव तथा हमारे शरीर का अनैच्छिक नाड़ी मण्डल-(Sympathetic तथा Para Sympathetic - दोनों न्यूनाधिक रूप में उच्छृंखल या उत्तेजित हो जाते हैं । जिससे शरीर तथा मन में या तो अति मन्दता (Inhibition, Retardation) या अति चेष्टा (Over-Excitement) का भाव दीखने लगता है ।

स्वस्थ अवस्था में हमारे चिन्ता, क्रोध, भय आदि मानसिक भाव तथा हमारे शरीर में होने वाली अनैच्छिक नाड़ी मण्डल की उत्तेजना हमें बाहर से आने वाले खतरे से बचाने का काम करती है । परन्तु जब बुद्धि स्थान की निर्बलता हो जाय, भावों का स्थान (Hypothalamus) प्रबल हो जाय, जिससे चिन्ता, शोक, भय आदि भाव थोड़ी देर के लिये होने के स्थान पर अनुचित रूप से निरन्तर बने ही रहें तथा जब हमारी अनैच्छिक नाड़ियां निरन्तर उत्तेजित रहने लगें तब इसे मानस रोग (Psychoneurosis) कहा जाता है चिन्ता आदि भावों के उग्र रूप में रहने से इस अवस्था को भावोन्माद या Affective Psychoses भी कहते हैं ।

कारण :-

कुछ एक व्यक्तियों के ऊर्ध्व मस्तिष्क के अग्र भाग में जन्म से ही निर्बलता (Asthenia) की प्रवृत्ति रहती है। ऐसे व्यक्तियों में युवावस्था में किसी प्रबल मानसिक आघात के लगने पर जैसे घोर नैराश्य, या किसी तीव्र भय या तीव्र चिन्ता के आ जाने पर यह रोग प्रकट हो जाता है। मध्यम आयु के बाद धमनी काठिन्य रोग के कारण जब मस्तिष्क का पोषण कुछ कम हो जाता है, तब भी किसी मानसिक आघात के लगने पर यह रोग हो जाता है। इस प्रकार सहज मानस नैर्बल्य, प्रबल मानस आघात और किसी शारीरिक रोग के कारण मानस रोग होता है। साधारणतः जब तक हमारी इच्छायें और आशायें पूर्ण होती रहती हैं अर्थात् उनका कहीं विघात नहीं होता है तब तक ~~[illegible]~~ हम पूर्ण संतुष्ट रहते ही हैं पर जब हम यह देख लेते हैं कि परिस्थिति हमारे नितान्त विपरीत है जिससे हमारी इच्छा और आशा पूर्ण हो ही नहीं सकती तो हम अपनी समझ बूझ से काम लेके अर्थात् अपनी इच्छा का परित्याग करके इस कठिन स्थिति का सामना करते हैं और परिस्थिति के (theory of adjustment to environment) अनुसार अपने को ढाल लेते हैं और उससे उत्पन्न दुःख, निराशा, हानि आदि को सह लेते हैं एवं फिर हम संतुष्ट हो जाते हैं। ~~परन्तु~~ इसीलिये यदि हमारे मस्तिष्क के अग्रभाग में निर्बलता हो, हमारी धृति शक्ति तथा बुद्धि निर्बल हो, हम समझ बूझ से काम न ले सकें, तो हम अपनी प्रबल इच्छा और अपनी पूर्व धारणाओं (Prejudices) या आशा का परित्याग कर ही नहीं पाते जिससे वह इच्छा या आशा का हमारा प्रबल मोह (Complex) अचेतन चित्त (Subconscious Mind) में पड़ा दिन रात हमें दुखी रखता है (which Decompensation ...)। यह मोह कभी कभी तो सत्य होता है। जैसे - पुत्र, पद, धन (स्थान) आदि की हानि से होता है। परन्तु बहुधा यह मिथ्या भी होता है। जैसे - किसी किसी व्यक्ति के हृदय में मिथ्या ही क्षय रोग, कैन्सर रोग, क्लीव रोग (हृद्रोग) आदि का या किसी दूसरी चीज का भय बैठ जाता है और अन्दर अचेतन चित्त में से निकलने में नहीं आता और वहां पड़ा हुआ अजीर्ण मलबन्ध, हृत्कम्प, उन्निद्रता, अतिस्वेद आदि अनैच्छिक नाड़ीमण्डल से उत्पन्न रोगों का कारण बनता है। इस प्रकार समझ बूझ या धृति शक्ति की निर्बलता (Intellectual inadequacy) ही इस रोग का प्रधान कारण है। भय, चिन्ता, दुःख, हिंसा आदि भावों से अभिभूत हो जाने (या ...) की यह मानस निर्बलता (Emotional Instability) जन्म से ही आती है। और ऐसे व्यक्ति जन्म से ही शरीर में कृश, दुर्बल, मन्दाग्नि, वातिक प्रकृति (Asthenic Temperament) के, स्वभाव में अन्तर्मुख (Introverted) और शक्ति की जमा पूंजी के कम होने के कारण कम क्रियाशील होते हैं।

मानस दौर्बल्य का रोग चार प्रकार का है :-

१. चिन्ता प्रधान मानस रोग, (Anxiety Neurosis)

२. विषाद प्रधान मानस रोग, (Depressive Psychosis, Melancholia)

३.. उन्माद प्रधान मानस रोग, Hypomanic या Manic Psychosis

४.. विद्रोही विचार युक्त मानस रोग (Obsessive Psychosis or obsessive compulsive neurosis)

१.. चिन्ता प्रधान मानस रोग :- anxiety neurosis :-

मानस रोगों में यह सबसे सुलभ रोग है । इसमें अधिक भयभीत हो जाने की मानसिक निर्बलता बहुधा पाई जाती है । रोगी को किसी रोग का जैसे हृदय रोग, रक्त भार रोग, क्षय रोग, क्लीव रोग आदि किसी का या किसी बात का भय सदा बना रहता है या यों कहना चाहिये उसे कई प्रकार के भयों का भ्रम (Delusion) बना रहता है । जिससे उसका चित्त दिन रात अशांत, व्याकुल और घबराया हुआ रहता है । विषाद रोगी के समान वह मन्द नहीं पर भय सूचक चेष्टाओं से युक्त रहता है । बोलता भी अधिक है । यद्यपि अपने भय के विषय में ही बोलता है । लेट जाने पर भी उसे चिन्ता के कारण नींद नहीं आती तथा निद्रा आ भी जाय तो इसके टूटते ही फिर चित्त की व्याकुलता आरम्भ हो जाती है अर्थात् वह सदा चिन्ता या भय में रहता है । चित्त के थके हुये रहने से वह स्वभाव में विद्रोहशील या चिड़चिड़ा हो जाता है । सिम्पैथेटिक या कौचिक नाड़ी मण्डल के खिचाव (Tension में) रहने के कारण रोगी की हृदय गति व नाड़ी गति तीव्र होती है । स्वेद अधिक आता है । विशेषत: कर पाद तलों में उसका रक्तभार बढ़ा होता है । चिन्ता के कारण शरीर की सर्व मांस पेशियों में तनाव रहता है जिससे शरीर थका सा लगता है तथा शिर की मांस पेशियों में स्तम्भ रहता है जिससे शिर में वेदना रहती या शिर भारी रहता है । या शिर पर कसकर पट्टी बांधने देने के समान दर्द रहता है । हाथों में कम्प (Fine Tremor) रहता है । Hypothalamus के धात्वीय पाक (Metabolism) का केन्द्र होने से शरीर का धातु पाक बढ़ जाता है । जिससे Adrenaline की उत्पत्ति अधिक होती एवं शरीर का भार घट जाता है । नेत्र थके हुये रहते हैं । थोड़ा पढ़ने से ही थक जाते हैं । पाचक संस्थान निर्बल होता है जिससे अरुचि, आध्मान आदि लक्षण रहते हैं । इस अवस्था में शरीर के Deep Reflexes बढ़े हुये रहते हैं । वह बात जिसके कारण चिन्ता लगी है अचेतन चित्त में छिपी हुई रहती है पर रोगी अपने पेट व हृदय सम्बन्धी किसी लक्षण को ही अपने रोग का कारण समझता है ।

२.. विषाद प्रधान मानस रोग :-(Depressive Psychosis या Melancholia, Endogenous depression.

विषाद प्रधान मानस रोग में जो किसी विफलता या वियोग की प्रतिक्रिया के रूप में होता है और जो ४५-६० वर्ष की आयु में होता है । रोगी सदा

क्लिष्ट, निराश और दुःखी रहता है। उसके सब विचार दुःखमय होते हैं। उसके चेहरे पर दुःख का स्थिर भाव दृष्टिगत होता है। उसे अपना भूत, भविष्यत, वर्तमान सब दुःखमय लगता है। अपने दुःख या क्लेश के सिवाय और उसे कोई बात ही नहीं सूझती। उसे हर वस्तु का बुरा पहलू ही दीखता है। इस प्रकार वह सदा स्व शरीर सम्बन्धि किसी विषाद में ही रत रहता है। दूसरों को जिन बातों से प्रसन्नता होती है उसे उनसे कोई प्रसन्नता नहीं होती। दुःखी रहने के कारण वह दूसरों के दुःख की बात या दुःख की कहानी सुन नहीं सकता। दुःखी रहने से वह शीघ्र रो भी पड़ता है। उसे नींद देर से आती है तथा सवेरे शीघ्र टूट जाती है तथा प्रातः उठने पर भी उसे अपना शरीर हलका प्रतीत नहीं होकर भारी प्रतीत होता है। वह किसी शरीर रोग, अजीर्ण, मलबन्ध आदि की शिकायत करता है। परन्तु इसके पीछे वस्तुतः उसका विषाद ही छिपा हुआ रहता है। उसे अपने दैनिक कार्य में, सामाजिक कार्यों में, शरीर के वस्त्राभरण में कोई रुचि नहीं रहती। अपने जीवन में ही रुचि नहीं रहती जिससे बहुधा वह आत्म घात की सोचता है और कभी कर भी लेता है।

वस्तुतः औच्छिक नाड़ी मण्डल के विषाद के कारण विक्षुब्ध रहने से उसे भूख नहीं लगती। उसका रंग पाण्डुर हो जाता है + पेट में भारीपन तथा मलबन्ध के लक्षण (जो Hypochondriacal delusions हैं) रहते हैं। अतः वह भोजन लेना नहीं चाहता। (उसका [illegible] पेट में मानो दर्द रहता।) उसका रक्त भार भी बढ़ा हुआ रहता है। वह उपरत सा होकर बहुत देर अकेला चुपचाप बैठा रहता (तथा कभी रक्तपात करता है) है और उसकी चेष्टाओं में मन्दता (Retardation) पाई जाती है (किसी बात का निर्णय करने में भी वह अति मन्द हो जाता है)। रोग अधिक होतो निष्क्रियता का लक्षण और अधिक स्पष्ट हो जाता है। इस रोग में रोगी के मन और शरीर दोनों अवसन्न (Depressed) होते हैं। यह रोग प्रातः अधिक प्रबल रूप में होता है, सांयकाल इसका वेग मन्द हो जाता है। यह रोग चिन्ता प्रधान मानस रोग की अपेक्षा अधिक कष्ट साध्य होता है। इसका दौरा एक बार प्रारम्भ होकर ४-५ मास तक रहता है।

३. उन्माद प्रधान मानस रोग :- (Manic Psychosis)

विषाद प्रधान मानस रोग के विपरीत कि जिसमें निश्चेष्टता का लक्षण होता है यह एक चेष्टा या क्रिया प्रधान मानस रोग है, जिसमें रोगी अति क्रियाशील, अति भाषण शील, अति गायन शील या भ्रमण शील हो जाता है। रात थोड़ी देर ही सोता है। बहुत सवेरे उठकर वह कार्य में लग जाता है। सारा दिन किसी न किसी कार्य में लगा ही रहता है। एक कार्य से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में, व्यापक होकर लगा रहता है। उसका शक्ति का भण्डार असीम प्रतीत होता है। परन्तु उसके सारा दिन कार्यों में लगे रहने पर भी उसके कार्यों का परिणाम विशेष नहीं होता। क्योंकि उसके कार्यों में परस्पर मेल न होने से तथा उसकी बढ़ी हुई चेष्टा पर किसी नियामक विचार शक्ति के न रहने से उसके कार्यों का परिणाम हो भी क्या सकता है।

इस बढ़ी हुई चेष्टा के अतिरिक्त रोगी में उल्लास या उमंग का भाव भी पाया जाता है। वह संकोच हीन होकर अपने पराये सबसे आगे बढ़कर अति भाषण करता है। ढीली ब्रेक वाली मशीन या बेलगाम घोड़े की तरह उसका व्यवहार हो जाता है। देखने वालों को उसका व्यवहार अजीब सा लगता है। परन्तु क्योंकि उसमें विवेक नहीं होता इसलिये उसे नहीं समझाया जा सकता कि उसका व्यवहार अजीब है। यह रोग केवल साधारण रूप में ही रहे तो इसे सामान्य उन्माद या Hypomqnic Psychosis कहते हैं। ऐसा व्यक्ति घर में या समाज में विशेष दुखदायी न होने से खप जाता है। पर यदि चेष्टा शीलता और अधिक बढ़ जाय, वह अत्यधिक भाषण, गायन, नर्तन आदि निरुद्देश्य चेष्टायें करने लगे या अपने निरर्थक कार्यों को रोकने वाले व्यक्ति पर वह क्रुद्ध होकर आक्रमण करने लगे तो फिर इस रोग को उन्माद प्रधान मानस रोग या Manic Psychosis कहते हैं। ऐसे रोगी का निग्रह करना आवश्यक हो जाता है।

यह रोग भी वेगों में होता है। कुछ महीनों बाद प्रत्येक वेग स्वयमेव शान्त हो जाता है, दुबारा उसके होने का भय तो रहता है। इस रोग का भेद चित्त विक्षेप (Catatonia) से करना चाहिये। चेष्टा प्रधान मानस रोगी के कार्य, भाषण आदि देखने में अजीब तो होते हैं पर तो भी कुछ कुछ अवस्थानुकूल होते हैं। परन्तु चित्त विक्षेप रोगी की अति चेष्टा अवस्थानुकूल नहीं होती तथा सदा एक ही किस्म की होती है। उन्माद प्रधान मानस रोगी के साथ हम कुछ न कुछ सम्पर्क कायम कर सकते हैं पर चित्त विक्षेप रोगी के साथ हम किसी प्रकार का सम्पर्क कायम नहीं कर सकते।

४. विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग :-(Obsessive Psychosis):-

जब आदमी का मन निर्बल होता है तब कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई ऐसा विचार या ध्यान जिसे वह हटाना चाहता है उसके अचेतन चित्त में से निकल कर उसके चेतन चित्त में बारम्बार आता है। क्योंकि यह विचार प्रायः बुरा होता है या प्रजनन सम्बन्धी होता है आदमी नहीं चाहता कि वह उसके सामने आये परन्तु वह विचार इतना विद्रोही और जिद्दी होता है कि जितना उसे रोका जाय उतना ही वह अधिक सामने आने लगता है। कभी कभी तो आदमी उससे डरा हुआ या घबराया रहता है कि वह न आवे परन्तु वह जितना उससे डरता है वह उतना ही प्रबल हो कर बार बार उसके चेतन चित्त में आता है। विशेषतः जब आदमी कोशिश करके मन को एकाग्र करना चाहता है या उसे किसी जरूरी काम की ओर लगाने का यत्न करता है तब यह विद्रोही या उपद्रवी विचार और अधिक उसके सामने आता है। वह जानता है कि यह विचार बुरा या निरर्थक है तो भी वह उसे हटा नहीं पाता, उल्टा उसके हटाने की कशमकश में वह थक सा जाता है। इसे विद्रोही या उपद्रवी विचार सम्बन्धी

मानस रोग Obsessive Psychosis कहते हैं । हां जब उसका मन विचार के साथ लड़ना छोड़कर शान्त, स्थिर, बेपरवाह व दृढ़ हो जाता है तब यह विचार आप ही उसका पीछा करना छोड़ देता है ।

मृदु मानस रोगों (Psychoneurosis, Minor Psychiatric Diseases) की चिकित्सा :-

(क) चिन्ता, उन्निद्रता (Insomnia) प्रधान तथा हृत्कम्प, स्वेद आदि लक्षणों से युक्त मानस रोग के लिये :-

(१) Meprobamate Equanil(Wyeth), Miltown(Lederle) Mepavlon यह Glycerol तथा दूसरे Propanols का का यौग है । जिसका मस्तिष्क (C.N.System) पर शामक (Sedative) तथा स्तम्भ शामक (Anti Convulsant) प्रभाव होता है मृदु निद्राजनक (Hypnotic) भी है । चिन्तादियुक्त मानस रोग तथा Obsession के लक्षण के लिये भी ४०० मिलिग्राम मात्रा में दिन में ३-४ बार देने से बड़ा लाभ होता है । बहुत दिन लेने के बाद इसके सहसा छोड़ देने से कुछ उन्निद्रता, भय, अन्नारुचि आदि लक्षण हो सकते हैं ।

(२) Mephenesion-(Myanesin Tablets, Elixir तथा Ampoules १० व १० सीoसीo Seconesin (अर्थात् Mephenesin ४०० मिलि० + Quinalbarbitone ३० मिलि०) तथा Halabak की गोलियां) $\frac{१}{२}$,१ ग्राम मात्रा में भोजन बाद मुख द्वारा तीन बार देने से चिन्ता, उन्निद्रता, स्तम्भ (Muscular Spasm-Parkinsonism) आदि लक्षण शान्त होते हैं ।

(३) Benactyzine Hydrochloride (Suavitil Glaxo, Nutinal), यह Benzhydrol का यौग है तथा Antiacetyl Choline है इसका प्रभाव Hypothalamus पर होता है जिससे बहुत सी विद्यात्मक संज्ञायें मस्तिष्क तक नहीं पहुंचतीं। परिणामत: चिन्ता व व्याकुलता के लक्षण शान्त हो जाते हैं । यह निद्रा जनक नहीं है । १-४ मिलि० मात्रा में इसे दिन में ३ बार दिया जाता है । परन्तु इसकी उपयोगिता ठीक ठीक प्रमाणित नहीं हुई है ।

(४) Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax Pfizer) यह भी Benzhydrol का यौग है । इसके १० से २५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से मस्तिष्क (C.N.System) पर शामक प्रभाव पड़ता है । एवं चिन्ता, रोग के लिये इसका प्रयोग होता है इससे कुछ मन्दता सी शरीर में प्रतीत हो सकती है । परन्तु मानस

रोगों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं हुई ।

(५) Reserpine (Reserpex, C.T. Serpasil, Ciba) के •२५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार लेने से भी चिन्ता रोग में लाभ प्रतीत होता है ।

(६) Chlorpromazine (Largactil) के २५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार लेने से भी चिन्ता रोग में कमी होती है ।

(७) Phenothiazine के अन्य योगों जैसे Promazine Hydrochloride (Sparine-Wyeth) के २५-५० मिलि० मात्रा में (·२१ Prochlorperazine (Stemetil)) Decazine (Pacatal) के -- २५-५० मिलि० मात्रा में इस रोग में देने से लाभ होता है । Amargyl (May & Baker) में Chlor Promazine Hydrochloride २५ मिलि० के साथ Amylobarbitone ५० मिलि० भी मिला हुआ रहता है । इसका भी दिन में २-३ बार प्रयोग किया जा सकता है ।

(८) Barbiturates:-Amylobarbitone (Amytal Lilly) ५०-१०० मिलि० ($\frac{1}{2}$, $1\frac{1}{2}$ ग्रे०) मात्रा में दिन में २ या ३ बार देने से शायद इस रोग में सबसे अधिक लाभ होता है । साथ ही यह कम खर्च भी है । Phenobarbitone (Gardenal-Luminal) $\frac{1}{2}$, १ ग्रेन मात्रा में दिन में २ बार दिया जाता है । परन्तु मन और शरीर के लिये कुछ अवसादक होने से बड़ी आयु के व्यक्तियों के लिये उपयुक्त नहीं रहती । Amylobarbitone Sodium (Sodium Amytal) १ ग्रेन या Quinal Barbitone Sodium (Seconal Sodium Lilly) $\frac{3}{4}$ ग्रेन या Cyclobarbitone (Phanodorm) $1\frac{1}{2}$ ग्रेन के देने से भी तुरन्त किंचित् शामक प्रभाव होता है पर प्रभाव थोड़ी देर ही रहता है । इनका महीनों तक प्रयोग किया जाता है । ये चिन्ता की शान्ति के लिये उत्तम औषधियाँ हैं । पर इनकी आदत पड़ जाने का डर है । अतः १, $1\frac{1}{2}$ महीने से अधिक काल के लिये एक साथ इन्हें जारी न रखना चाहिये । बीच बीच में १ सप्ताह के लिये बन्द करके फिर इनका प्रयोग आरम्भ कर सकते हैं । रात को निद्राजनक प्रयोग के लिये इन्हें देना आवश्यक है तो $1\frac{1}{2}$, २ ग्रेन की मात्रा में रात भोजन से पहले देना चाहिये ।

(९) इसी प्रकार Bellargal Sandoz, ४१ Priscophen ... Phenobarb. Bella, Priscol ... प्रयोग

(ख) विषाद प्रधान मानस रोग Depressive Psychosis के लिये विषाद शामक (Anti-Depressive) औषधियाँ :-

(१) Imipramine (१९५७) (Tofranil, Geigy) यह Iminodibenzyl का एक योग है जो मस्तिष्क में Serotonin की मात्रा को बढ़ाता है । ~~इसके १५०-२५० मिलिग्राम मात्रा में~~ यद्यपि यह Monoamine Oxidase का कम करने वाला नहीं है । इसके १५०-२५० मिलिग्राम मात्रा में प्रतिदिन तीन बार

विभक्त करके देने से या इससे आधी मात्रा में इंजेक्शन के द्वारा प्रतिदिन २-४ सप्ताह देने से विषाद प्रधान मानस रोग में रोगी को पर्याप्त लाभ प्रतीत होता है। इससे कुछ निद्रा जनक प्रभाव भी होता है। निद्राजनक प्रभाव कम हो तो किसी दूसरी निद्राजनक औषधि के साथ इसे दे सकते हैं। वृद्धावस्था (Involutional) के विषाद रोग में भी लाभ होता है पर इतना अच्छा लाभ प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार चिन्ता रोग, चित्त विक्षेप या भ्रम प्रधान मानस रोग (Schizophrenia) में भी इससे कोई लाभ नहीं लगता। अब तक तो विषाद रोग की यह उत्तम औषधि प्रतीत होती है जो इससे भी ठीक न हो उसकी विद्युच्चिकित्सा (E.C.T.) करनी चाहिये। मुख शोष, मलबन्ध, अतिस्वेद, चेहरे पर गर्मी के उपद्रव हो सकते हैं और यह औषधि दूसरी आगे कही गई औषधियों से कम विषैली है। इसके प्रयोग से चेष्टा प्रधान मानस रोग के लक्षण हों तो इसे बन्द कर देना चाहिये।

(२) Iproniazid (१९५१) (Marsilid Roche) यह Monoamine Oxidase को कम करने वाली (Inhibitor) औषधि है। जिससे मस्तिष्क गत Serotonin के नाश की गति कम हो जाती है और वहां उसकी मात्रा बढ़ जाती है। समझा जाता है कि वहां इसकी न्यूनता हो जाय तो मन में विषाद का लक्षण हो जाता है। इसे पहले १०० मिलि० दैनिक मात्रा में दो बार विभक्त करके और अनुकूल हो तो फिर दिन में १५० मिलि० मात्रा को ३ बार करके उसका तीन सप्ताह तक प्रयोग जारी रखा जाता है। लाभ हो जाने पर फिर इसे ५० मिलि० मात्रा में दिन में २ बार या १ बार ही या २५ मिलि० मात्रा में एक बार जारी रखा जाता है। विषाद रोग एक सप्ताह में ही अच्छा होने लगता है। पर २-४ सप्ताह में बहुत कुछ ठीक हो जाता है। मन के साथ शरीर भी अधिक स्वस्थ प्रतीत होता है। तीव्रतर रोग में महीनों तक औषधि का प्रयोग जारी रखा जाता है। इसके प्रयोग में मल बन्ध, मूत्र कृच्छ्र, मुख शोष, शिरो भ्रम (Postural Hypotension.से) आदि उपद्रवों की सम्भावना रहती है। इसके प्रयोग पर यदि रोगी में चेष्टा प्रधान होने के लक्षण होने लगें तो इसे बन्द कर देना चाहिये।

(३) Phenelzine-Phenylethyl Hydrazine (Nardil Wardner) यह भी Monoamine Oxidase का कम करने वाला (Inhibitor) है। यह १०-३० मिलि० मात्रा में दिन में २-३ बार विषाद रोग के लिये महीनों तक दिया जाता है। Imipromine के समान ही इससे लाभ होता है। एक महीने तक लाभ हो जाने पर फिर मात्रा कम करते हुए इसकी ५-१० मिलि० की मात्रा २-३ मास जारी रखी जाती है। ऊपर कही

गई औषधियों से यह बहुत कम विषैली औषधि है । विषण्णवदन, आत्म मग्न रोगी इसके प्रयोग से ठीक होने लगते हैं ।

(४) Isocarboxazid (Marplan, Roche) यह भी Monoamine Oxidase का कम करने वाला द्रव्य है । १० मिलि० मात्रा में ३ बार प्रतिदिन देने से एक सप्ताह में ही विषाद रोग में लाभ दीखने लगता है । ३-४ सप्ता में पर्याप्त लाभ हो जाता है ।

(५) Nialamide (Niamid Pfizer) यह भी एक Monoamine Oxidase का कम करने वाला Hydrazid का समास है । जिसके ७५-१५० मिलिग्राम मात्रा में प्रतिदिन विभक्त करके देने से १०-१२ दिन में विषाद रोग में लाभ होता है । यह उपर्युक्त औषधियों से निर्बल पर अधिक निर्विष औषधि है ।

(६) tranylcypromine (Parnate)

(७) Dimethylaminoethanol (Deaner Riker) यह Acetyl Choline का पूर्व रूप (Precursor) है तथा रक्त और मस्तिष्क के बीच के परदे (Blood Brain Barrier) को भी यह पार कर सकती है । (Choline) ऐसा नहीं कर सकता) और मस्तिष्क के लिये एक पोषक या Hormone का सा कार्य करती है । पहले २५ मिलि० की गोली के एक बार प्रातराश के बाद देने और फिर ३-४ दिन बाद ऐसी २ गोलियों के प्रातराश के बाद देने से यह विषाद रोग की मंदता को दूर करती है ।

(८) chlordiazepoxide (Librium)

(९) Phenothiazine के योग Chlorpromazine (Largactil)

(१०) glutamic acid

आदि विषाद प्रधान मानस रोग के लिये लाभदायक नहीं है ।

(ग) उन्माद प्रधान मानस रोग (Excitement व Psychotic Episodes) की चिकित्सा :-

निम्नलिखित Neuroleptic औषधियां मस्तिष्क (Cortex) को निचले केन्द्रों से आये विक्षोभों के द्वारा विक्षुब्ध होने से बचाने का कार्य करती हैं । ये निद्रा जनक नहीं हैं । तीव्र उन्माद में (१) Chlorpromazine १०० मिलि० मात्रा में मांस द्वारा देने से बड़ा लाभ होता है । बड़ी आयु के व्यक्ति में २५-५० मिलि० मात्रा में ही मांस द्वारा देना उचित है । २-४ घन्टे के अन्तर से इसे दुहरा सकते हैं । जब रोगी मुख से ले सके तो १०० मिलि० मात्रा में इसे ८-८ घन्टे पर देवें । (२) Reserpine २-५ मिलि० मात्रा में मांस द्वारा प्रतिदिन देने से भी उन्माद का वेग शान्त हो जाता है । परन्तु प्रथम औषधि के समान इसका प्रभाव निश्चित नहीं। आवश्यकता हो तो ४-४ घन्टे पर इसे दुहरा सकते हैं । जब तक कि रोगी मुख से औषधि न ले सके तब १ मिलि० मात्रा में इसे दिन में २ बार देने से यह रोग शान्त रहता है । इसके अतिरिक्त विद्युच्चिकित्सा (E.C.T.) से भी लाभ होता है । उसके साथ

उपर्युक्त औषधियों का प्रयोग जारी रखना चाहिये ।

(घ) मृदु तथा चिरस्थायी उन्माद रोग (Chronic Psychotic Disease) के लिये:

(१) Chlorpromazine , (२) Reserpine ये दो औषधियां विशेषतः उपयोगी पाई गई हैं । मस्तिष्क में नीचे से (Ascending, Reticular Activating System के द्वारा) पहुंचने वाले प्रभाव Chlorpromazine के कारण मन्द कर दिये जाते हैं । इसका Hypothalamus पर भी प्रभाव होता है । इस प्रकार इसके कारण चेतना के कम न होने पर भी मस्तिष्क बहुत कुछ शान्त हो जाता है । इस औषधि को २५-५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार दिया जाता है । रोग की प्रबलता को देखते हुए १००-१५० मिलि० की मात्रा दिन में तीन बार भी दी जा सकती है । Reserpine (Serposil Ciba) के कारण चेतना के कम न होने पर भी रोगी की उन्मत्त चेष्टा में कमी आ जाती है । $\frac{1}{2}$ से १ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार इसका प्रयोग आरम्भ करना चाहिये । क्रमशः बढ़ाते हुए इसे ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा में भी दिया जा सकता है ।

इन दो औषधियों के प्रयोग करने पर उपद्रव विशेष हों या इनका अभीष्ट प्रभाव न हो तब तो किसी दूसरे Phenothiazine वर्ग की औषधि का प्रयोग करना चाहिये । अर्थात् इनके बाद पहले Prochlorperazine (Stemetil) को १०-३० मिलि०मात्रा में मुख द्वारा ३ बार देना चाहिये या Trifluoperazine (Stelazine) को ५-१० मिलि० दैनिक मात्रा में मुख द्वारा (या १ मिलि० मात्रा में इन्जेक्शन द्वारा) देना चाहिये । या Triflupromazine (Vespral) १०-५० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार मुख से देना चाहिये । Barbiturates वर्ग की औषधियां इस रोग के लिये निरर्थक हैं ।

विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग (Obsessive Psychosis) के लिये तथा चिन्ता प्रधान और चेष्टा प्रधान मानस रोगों के लिये भी Chlordiazepoxide (Librium) को १० मिलि०मात्रा में दिन में तीन बार दिया जाता है । इसे बढ़ा कर दैनिक ६० मिलि०मात्रा तक भी दिया जा सकता है । Benactyzine Hydrochloride (Suavitil) १ मिलि० दिन में तीन बार देने से भी इसमें लाभ प्रतीत होता है ।

मानस रोगों की सामान्य चिकित्सा :-

क्योंकि मानस रोगी का रोग उसको मानस दुःख से बचाने का एक साधन होता है यदि यह कहा जाय कि यह कोई रोग नहीं है या उसे इसे मन से हटाने के लिये कहा जाय तो इससे रोगी की अवस्था और अधिक

खराब हो जाती है क्योंकि इससे उसे दु:ख से बचाने वाली दीवार भी गिर जाती है । इसलिये रोगी की मन की चिकित्सा करने का यत्न, औषधि. चिकित्सक को नहीं करना चाहिये । यह काम मानस चिकित्सक Psychiatrist का है ।

आहार :-

मानस रोगी को उत्तम पोषक आहार, पर्याप्त मात्रा में मिलना चाहिये । उसे भूख न लगती हो एवं वह भोजन न लेता हो तो कृत्रिम तौर से भूख लगाकर अर्थात् प्रात: १० यूनिट Insulin त्वचा द्वारा देकर ३ घन्टे बाद दिन भर रोगी को पर्याप्त मात्रा में भोजन देना चाहिये । इन्सुलिन को धीरे धीरे ३०-४०-५० यूनिट तक करते हुए इसे दो तीन सप्ताह तक दे सकते हैं । इसे सप्ताह में ६ दिन ही दिया जाता है । इसके द्वारा रोगी का पोषण बढ़ जाता और उसका मानस दौर्बल्य भी दूर होता है । उसे विटामिन बी. कम्प्लेक्स विशेषत: Nicotinic Acid, Pyridoxine का प्रयोग भी कराना चाहिये ।

मानस रोगी की विद्युच्चिकित्सा :- Electro Convulsive Treatment (E.C.T)

मानस रोगी की दोनों कनपटियों पर इलेक्ट्रोड्स लगाकर सिर में .२ सेकण्ड के लिये विद्युत की १००-१५० Volts की करन्ट गुजारने से रोगी में आक्षेप होते तथा कुछ मिनट के लिये मूर्छा भी हो जाती है । पहले सप्ताह में २-३, दूसरे तीसरे सप्ताह में २-२ करन्ट देने से अर्थात् कुल ६-७ करंट देने से रोगी का मानस रोग शान्त हो जाता है । विषाद प्रधान मानस रोग में यह विशेष लाभदायक है । उन्हें इसके ४-१० बार देने से लाभ हो जाता है । उन्माद प्रधान मानस रोग में यह चिकित्सा शीघ्र शीघ्र की जाती है । उन्हें १०-२० बार देने से लाभ प्रतीत होता है तथापि इसमें इसके परिणाम इतने अच्छे नहीं मिलते ।

मानस रोगी की निद्रा चिकित्सा :- (Continuous Narcosis या Sleep Treatment) :-

चिन्ता, विषाद या मृदु उन्माद युक्त मानस रोगी के मन में विद्यमान द्वन्द्व (Conflict) को शान्त करने के लिये ५ से १४ दिन तक की निद्रा भी सहायक होती है । इस दीर्घ निद्रा के बाद उसका अस्वस्थ चित्त बहुत कुछ स्वस्थ हो जाता है । यद्यपि विद्युच्चिकित्सा के आविष्कार (१९३८) के बाद से इस चिकित्सा पर अब बल नहीं दिया जाता । किसी दुर्घटना में नाड़ी मण्डल आहत हो गया हो तो १२ घन्टे की निद्रा देने से उसे भी आराम मिल जाता है ।

इस निद्रा चिकित्सा में रोगी को मृदु रेचन देकर अगले दिन वस्ति के द्वारा उसकी आंतों को स्वच्छ करके तीसरे दिन उसे एक शान्त हलके अन्धेरे कमरे में शैय्या शायी करके Sodium Amytal (Amylobarbitone-

Sodium)" ३ ग्रेन की मात्रा में प्रति ४ घन्टे बाद मुख से दिया जाता है जिससे यह औषधि १८ ग्रेन की मात्रा में २४ घन्टे में उसके अन्दर पहुंच जाती है और इससे वह १६ घन्टे की पूर्ण और ८ घन्टे की अपूर्ण निद्रा में रहता है। यदि रोग की तीव्रता के कारण यह औषधि उचित मात्रा में ~~ठीक~~ निद्राजनक न हो तो प्रातः तथा सांय मांस द्वारा Somnifaine २ मिलिलिटर मात्रा में दे दिया जाता है। इससे भी उचित निद्रा न हो तो प्रातःकाल के सूची वेध से १ घन्टे पहले Hyoscine $\frac{1}{100}$ ग्रेन का एक सूची वेध दे दिया जाता है अथवा उपर्युक्त औषधि के साथ साथ Sodium Amytal भी ३ ग्रेन की मात्रा में प्रति ६ घन्टे बाद मुख से दे दिया जाता है। इससे रोगी २० घन्टे पूर्ण निद्रा तथा ४ घन्टे अपूर्ण निद्रा में रहता है। इसी प्रकार Dial, Luminal, Soneryl आदि Barbitone के योग २४ घन्टे में ६ से १२ ग्रेन की मात्रा में दे दिये जायें तो रोगी दिन रात के पर्याप्त भाग में सोया रहता है। इस प्रकार इस चिकित्सा को ५ से १४ दिन तक जितना उचित हो जारी रखा जाता है।

भोजन रोगी को पर्याप्त मात्रा में जब वह कुछ जागृत अवस्था में होता है दिया जाता है। इस प्रयोजन से उसे दुग्ध, दूध के बने पतले पेय, पतले रसे आदि दिये जाते हैं। विटामिन बी कम्प्लैक्स तथा विटामिन सी भी भोजन के साथ दिये जाते हैं। यदि पानीउसे दिन भर में पर्याप्त मात्रा में पिलाया जाय, १-१$\frac{1}{2}$ औन्स ग्लूकोज़ प्रतिदिन, फलरस या शिकन्जीवी में मिला के दिया जाय तो Barbitone औषधि का कोई दुष्प्रभाव नहीं होता। इस चिकित्सा को क्रमशः ३ दिन में धीरे धीरे समाप्त किया जाता है। इसके बन्द करने के बाद भी निद्राजनक औषधि दो दिन रात को और दे दी जाती है। तथा तीन दिन तक रोगी को दिन में भी शैय्या शायी ही रखा जाता है।

आयुर्वेद में मानस रोग :-

मन को सत्व, रजस्, तमोमय कहा है। सत्व के कारण उसमें प्रकाश अर्थात् समझ बूझ का भाव, प्रसाद, प्रसन्नता का भाव, धृति अर्थात् भावों पर नियंत्रण का भाव तथा समाधि अर्थात् एकाग्रता, निश्चलता और शांति का भाव रहते हैं। रजोगुण के कारण उसमें उचित प्रवृत्ति या कर्मण्यता का भाव तथा तमोगुण के कारण उसमें उचित अप्रवृत्ति या स्थिति का भाव रहते हैं। इन तीनों गुणों के सम अवस्था में रहने से मन सम अवस्था में रहता है।

कभी कभी किसी तीव्र मानसिक अभिघात के लगने से मन का सत्व गुण या दूसरे शब्दों में मस्तिष्क का बुद्धि स्थान निर्बल हो जाता है जिससे रजोगुण तथा तमोगुण दूसरे शब्दों में प्रवृत्ति या अप्रवृत्ति के लक्षण तीव्रतर हो जाते हैं। चिन्ता, भय, शोक आदि अति कार्य भार के कारण तथा शरीर के आहार और आराम के कम हो जाने के कारण मस्तिष्क का पोषण कम हो

हो जाता है। उसकी प्राण शक्ति या धृति शक्ति कम हो जाती हैं अर्थात् उसमें वायु या रजो गुण की वृद्धि हो जाती है। रजोगुण की वृद्धि से चिन्ता प्रधान तथा चेष्टा प्रधान मानस रोग होते हैं। तमोगुण की वृद्धि से सम्भवत: विषाद प्रधान या निद्रा प्रधान मानस रोग होते हैं।

इस प्रकार बुद्धि या सत्व गुण के सत्ता हीन हो जाने से मानस रोग की उत्पत्ति होती प्रतीत होती है। (१) चरक ने कहा है कि मस्तिष्क में वायु, पित्त, कफ दोषों में से किसी या किन्हीं की वृद्धि हो जाने से जब रजोगुण या तमोगुण (मोह) बढ़ जाता है, सत्व गुण की कमी हो जाती है तो रोगी अयथार्थ दर्शी या विपरीत दर्शी हो जाता है। चरक ने ऐसे रोग को अतत्वाभिनिवेश या मिथ्याभिनिवेश रोग कहा है। इसके लिये मेध्य औषधियों का विधान किया है। (चि०।१० अ०।५८-६०), (२) योग वाशिष्ठ ने भी कहा है कि बुद्धि की हीनता ही शारीरिक, मानसिक रोगों का कारण है। मन में प्रसन्नता हो, शरीर का पोषण ठीक हो तो बुद्धि ठीक रहती है। मन में चिन्ता, शोक आदि तीव्र रूप में हों, शरीर का पोषण कम हो तो बुद्धि हीन हो जाती है। केवल तीव्र चिन्ता या चिरस्थायी चिन्ता के होने पर भी शरीर का पोषण कम हो जाता एवं बुद्धि हीन हो जाती है। जैसे कहा है...

(१) समग्रं दु:खमायतनमविज्ञानेद्वयाश्रयम्
सुखं समग्रं विज्ञाने विमलेतुप्रतिष्ठितम्।
(च०।सू०।३०।८४)

(२) देह दु:ख विदु व्यांधिमाध्याख्यं वासनामयम्
मौर्ख्यमूलेहितेवियात्तत्वज्ञानेपरिक्षय:।
(यो०वा०)

(१) योग वाशिष्ठ ने कहा है कि चिन्ता आदि के द्वारा चित्त के विक्षुब्ध होने पर सारा शरीर ही विक्षुब्ध हो जाता है। प्राण, वायु, विषम हो जाती हैं। उसकी विषमता से कुछ एक नाड़ियों में प्राणवायु ठीक नहीं बहता, इसी से अजीर्ण हो जाता है। खाया हुआ अन्न दोष रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार मन के रुग्ण होने से सम्पूर्ण शरीर ही रुग्ण हो जाता है। फिर जब चित्त चिन्ता हीन, शान्त और प्रसन्न हो जाता है, तब शरीर में प्राण वायु ठीक चलने लगती है। अन्न का ठीक ठीक पक्व होने लगता है एवं रोगी फिर स्वस्थ हो जाता है।

अत: इसीलिये मानस रोग से मुक्ति प्राप्त करने के लिये चित्त को प्रसन्न रखने का यत्न करना चाहिये तथा यदि रोगी दृढ़ निश्चय कर ले कि वह चिन्ता और दु:ख को पास नहीं आने देगा तो फिर कोई दु:ख उसके पास फटक नहीं सकता। साथ ही उसे बुद्धि को पकड़े रखना चाहिये।

टिप्पणी :- (१) चित्ते विधुरितेदेहः संक्षोभमुपयात्यलम्
संक्षोभात्साम्यमुत्सृज्यवहन्ति प्राणवायवः ।।
असमं वहति प्राणे नाड्योयान्तिविसंस्थितिम्
काश्चिन्नाड्यः प्रपूर्णत्वं यान्तिकाश्चिच्चरिक्तताम् ।।
कुजीर्णत्वमजीर्णत्वमतिजीर्णत्वमेववा
दोषायैवप्रयात्यन्नं प्राणसंचार दुष्क्रमात् ।।
एवमाधेर्भवेद्व्याधिस्तस्याभावान्चनश्यति ।।
आधन्दोवधतिदेहे शुद्धेचेतसि राघव ।।
सत्व शुद्धयावहन्त्येते क्रमेण प्राणवायवः
जरयन्ति तथान्नानि व्याधिस्तेनविनश्यति ।।
(२) नमनोनिश्चयकृतं कश्चिद्रोधयितुं क्षमः
पौरुषं स्वमवष्टभ्यधैर्यमालम्ब्य शाश्वतम् ।।
यदि तिष्टत्याम्योक्षो दुःखानां तदनिन्दितः
आधयोव्याधयश्चैव, शापाः, पापकृतस्तथा
नखंडयन्तितच्चित्तं पद्ममाघाताः शिलामिव ।। (यो०वा०)

मेध्ययामनः शामक कुछ औषधियां यहां दी जाती हैं ।

१.. ब्राह्मी घृत, (ब्राह्मी रस १½ सेर, गो घृत २ पाव, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, विडंग, त्रिवृत्, त्रिकटु, आरग्वध, सप्तला १-१ तोला) ६ माशा मात्रा में दिन में दो बार तथा सर्पगन्धा चूर्ण ½ माशा, मकरध्वज ½ रत्ती मिलाकर दिन में तीन बार देने से रोगी का चित्त शान्त रहता है ।

२.. अथवा ब्राह्मी ३, शंख पुष्पी २, सर्प गन्धा १ भाग मिलाकर बनाये चूर्ण को तीन माशे की मात्रा में दिन में तीन बार देने से भी यही लाभ होता हैं ।

३.. अथवा सर्पगन्धा चूर्ण ५ तोला में जवाहर मोहरा पिष्टी ½ तोला मिला कर इस चूर्ण के ½,½ माशे की मात्रा में दिन में तीन बार देने से भी मन शान्त रहता है ।

४.. या सर्पगन्धा के घन सत्व में समान भाग ब्राह्मी तथा शंख पुष्पी का चूर्ण मिलाकर बनाई दो दो रत्ती की गोलियां दिन में तीन बार देने से भी यही प्रभाव होता है ।

५.. अथवा ज्योतिष्मती बीज, जटामांसी, सर्पगन्धा समान समान मिलाकर इस चूर्ण के दो या तीन माशा में ½ रत्ती मकरध्वज मिलाकर दिन में तीन बार देने से भी मन शान्त होता है ।

इनमें से किसी औषधि के साथ साथ शतावरी घृत या बदाम पाक के खिलाने, सिर तथा नासिका में बादाम रोगन या घृत के अभ्यंग और आश्च्योतन से भी मस्तिष्क की निर्बलता दूर होती है ।

अपतन्त्रक रोग :- (Hysteria):-

साधारणत: जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छा या आशा के विघात हो जाने पर या किसी भय की हालत में उनको सह लेने और समझदारी से काम लेने के स्थान पर अपनी इच्छा या भय के वशवर्ती होकर एक अजीब सा व्यवहार करें कि जैसे साधारण व्यक्ति नहीं करता तो उसके इस व्यवहार को हिस्टीरिया कह दिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जन्म से निर्बल चित्त के २०-३० वर्ष की आयु के भाव प्रधान व्यक्तियों, विशेषत: स्त्रियों में किसी निराशा या प्रबल इच्छा विघात या भय के आ पड़ने पर, जब इनको अपना यह दु:ख असह्य हो उठता है, तो यह उनके अजाने में उनसे ऐसा व्यवहार कराता है कि जिससे उनका क्लेश जाता रहता या भूल जाता है। उनका यह व्यवहार या हिस्टीरिया उनके मानस दु:ख को दूर करने का एक साधन बन जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो जब एक व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई उसकी वेदना किसी मानसिक या शारीरिक रूप को धारण कर के बाहर आ जाय तो उसे हिस्टीरिया कहते हैं। इस प्रकार कुछ लोग तो आभ्यन्तर वेदना के वाह्य रूपान्तरीकरण (या Conversion Mechanism) की विधि से इस रोग की व्याख्या करते हैं। वे कहते हैं कि रोगी को वह आभ्यन्तर वेदना असह्य थी पर उसके रूपान्तर से उत्पन्न रोग उसे उतना असह्य नहीं रहता। इस प्रकार ऐसे लगता है कि जैसे अन्य रोग शरीर के अन्दर उत्पन्न किसी कमी या ज्यादती का इलाज होते हैं वैसे ही हिस्टीरिया रोग भी रोगी के लिये एक इलाज का काम करता है। दूसरे लोग कहते हैं कि दुर्बल चित्त, भावप्रधान और विवेक हीन व्यक्तियों में उनकी प्रबल इच्छा या भय जो उनकी आभ्यन्तर वेदना का कारण होते हैं उनके प्रकट व्यक्तित्व या चेतन चित्त से कुछ देर के लिये पृथक होकर उनसे जो अजीब सा व्यवहार कराते हैं उसे हिस्टीरिया कहा जाता है। इसे चित्त विभजन-Dissociation- या Splitting of Personality का सिद्धान्त कह सकते हैं। इसीलिये हिस्टीरिया के दौरे के समय वह व्यक्ति जैसे किसी दूसरे व्यक्तित्व के द्वारा प्रेरित हुआ काम कर रहा हो ऐसा लगता है। व्यक्ति के एक हिस्से के सम्पूर्ण व्यक्ति से पृथक हो जाने के सिद्धान्त पर वे लोग रोगी के आगे कहे जाने वाले लक्षणों की व्याख्या करते हैं। व्यक्ति अपने सारे व्यक्ति से हटकर उसके हिस्से में ही सीमित इसलिये हो जाता है ताकि वह आये हुए मानसिक कष्ट या भय से बच जाय। निर्बल चित्त व्यक्तियों के मन का वाह्य प्रभावों से शीघ्र प्रभावित हो जाना भी इस रोग का एक कारण प्रतीत होता है। यदि प्रामाणिक कहाने वाला कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्ति को गल्ती से कह दे कि उसे अमुक रोग है या हो सकता है, तो उस पर ऐसा दुष्प्रभाव पड़ता है कि उसे अपने अन्दर रोग दीखने लगता है अर्थात् इस प्रकृति के व्यक्ति की अपनी इच्छा शक्ति निर्बल होती है। वह अनायास ही दूसरों के अच्छे, बुरे प्रभाव में आ जाता

है । तथा ऐसे व्यक्तियों में स्वल्प कारण से ही प्रबल मानसिक प्रतिक्रिया हो सकती है । जिससे वह अपना नियंत्रण खो बैठता एवं आपे से बाहर हो जाता है । इसलिये कुछ लोग इस रोग को अपने द्वारा या किसी दूसरे द्वारा डाले हुये प्रभाव (Auto या Heterosuggestion) से उत्पन्न होने वाला रोग कहते हैं । जिससे कुछ लोग इसे अज्ञानवश "ओपरा" कहके उसकी मन्त्र तन्त्र आदि द्वारा चिकित्सा करते हैं ।

लक्षण :-

इस रोग के मानसिक लक्षणों में से एक तो मूर्छा का लक्षण होता है जिसमें बेहोशी पूर्ण न होकर अपूर्ण होती है । बेहोशी में उसका शरीर अपस्मार रोगी की तरह आक्षेप और स्तम्भ युक्त भी हो सकता है । इसी प्रकार स्वल्प कालिक स्मृति नाश (Amnesia) का लक्षण भी हो जाता है । ये लक्षण स्वल्प काल के लिये ही होते हैं । दीर्घ कालिक स्मृति नाश (Hysterical Fugue) का लक्षण भी कभी कभी होता है । जिसमें रोगी या रुग्णा घर से भाग खड़ी होती, घण्टों या कुछ दिनों तक घर से मीलों दूर चली जाती, उसे यह पता नहीं रहता कि वह कौन है, कहां से आई है । उसके बाद जब उसे स्मृति आती है तो उसे यह पता नहीं रहता कि उसने इस विस्मृति काल में क्या किया । इस प्रकार एक व्यक्ति के अन्दर दो भिन्न भिन्न व्यक्तित्व प्रतीत होने लगते हैं । परन्तु एक ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का एक अंश पृथक् हो कर थोड़ी देर व्यक्ति का संचालन कर सकता है । उसके बाद उस व्यक्ति को यह पता नहीं रहता कि उसके उस अंश ने पृथक् होकर क्या किया था । ऐसा भी हो सकता है । सोते हुये रोगी के व्यक्तित्व का एक अंश पृथक् होकर कुछ कुछ प्रलाप करने लगे (Delirious State) उसका यह प्रलाप अच्छे बुरे किसी प्रकार का हो सकता है । ऐसा भी हो सकता है कि रात को सोते हुये बीच में उठकर रोगी कोई काम कर आये जो करने में कठिन भी हो । पर रोगी को दिन के समय यह पता नहीं रहता कि उसने रात वह कार्य किया था (Somnambulism) यह भी उपर्युक्त Fugue की तरह का ही एक लक्षण है अथवा रोगी निद्रावस्था (Stupor या Catalepsy) में कुछ देर पड़ा रहता है जिसमें उसके अंग एक ही स्थिति में रहते हैं तथा स्तब्ध होते हैं ।

संज्ञा सम्बन्धी लक्षणों में से रोगी को [illegible] अर्धदृष्टि नाश का लक्षण हो सकता है । बधिरता का लक्षण, सिर में शूल, चुभने वाला भारी दर्द या शिर: शूल (Paraesthesia या Clavus Hystericus) या एक हाथ में या दोनों हाथों में संज्ञानाश का लक्षण हो सकता है । परन्तु इनमें संज्ञानाश अपूर्ण होता है । चेष्टा सम्बन्धी लक्षणों में से गले की मांस पेशियों में स्तम्भ के होने से गलावरोध (Globus Hystericus) का लक्षण बहुधा हुआ करता है जिससे बातें करते समय गले में अवरोध प्रतीत होता है । आंत में

स्तम्भ होने से आध्मान या आन्त्रशूल का लक्षण या श्वास मार्ग में स्तम्भ होने से श्वास रोध या श्वास कृच्छ्रता का लक्षण होता है। मूत्रमार्ग में स्तम्भ होने से मूत्राघात का लक्षण हो सकता है। Diaphragm में स्तम्भ होने से हिक्का का लक्षण भी हो सकता है। इसी प्रकार हृदय मांस में विक्षोभ से हृदय कम्प (Palpitation) का लक्षण हो सकता है। [illegible] मूर्छा के साथ शरीर में लगातार रहने वाला या रह रहकर होने वाला स्तम्भ का लक्षण हो सकता है। हनुस्तंभ का लक्षण कुछ्या होता है। आंखों की पलकों (Orbicularisoculi) में स्तम्भ होने से आंख में निमीलक रोग हो सकता है। (Ptosis) ऐच्छिक मांस पेशियों में से दोनों टांगों में या एक टांग में या एक ओर की टांग और बांह में या एक बांह में पक्षाघात का लक्षण हो सकता है। जो शिथिलता युक्त (Flaccid) या स्तम्भ युक्त होता है। इसके कारण रोगी चल फिर नहीं सकता। हां निद्रा में वह अपनी टांग को [illegible] हिला सकता है। उसमें Tendon Reflex लुप्त नहीं होते। Plantar Reflex भी Extensor किस्म का नहीं होता। मृत अंग की मांस पेशियों में क्षीणता भी नहीं होती। इसी प्रकार कण्ठ मांसपेशियों में घात का लक्षण होने से भाषण शक्ति नष्ट हो जाती या मन्द हो जाती है। (Aphonia) शरीर के अंगों में कई प्रकार की चेष्टायें या कम्प (Twitchings) हो सकते हैं या हास्य और रुदन के दौरे हो सकते हैं।

चिकित्सा :-

[illegible] Nervous breakdown [illegible]

उचित वातावरण तथा औषधियों के द्वारा रोगी के मन को शान्त रखने का यत्न करना चाहिये। उसे हर तरह से विक्षोभ से [illegible] बचाना चाहिये। इसके लिये Pot.Brom. १५ ग्रेन, Tinct.Valerian १५ बुन्द, Tinct.Asafetida १० बुन्द मिलाकर दिन में २ बार दिया जा सकता है। या Bromalin elixir (A. french) Elexir Valerian bromalemb, Valerian brom. elixir (Smith Stan.) अथवा Gardenal, Largactil आदि शामक औषधियों की हलकी मात्रा में दिन में दो बार दियां जा सकता है। मन और शरीर को शान्त एवं बलवान् बनाने का हर उपाय करना चाहिये ताकि रोगी वास्तविकता का सामना करने के योग्य हो जाय।

आयुर्वेद में हिस्टीरिया :-

चरक (सिद्धि। ६। १२-१५) तथा सुश्रुत (नि०। १। ६३-६५) ने कहा है कि वायु वर्धक कारणों से जब जब मस्तिष्क में वायु [illegible] प्रकुपित होता है, संज्ञानाश, गात्र स्तम्भ, नेत्र स्तम्भ, श्वास स्तम्भ आदि का एक वेग हो जाता है। जब वहां वायु का प्रकोप शान्त हो जाता है, यह वेग भी शान्त हो जाता है। इस प्रकार के वेगों को अपतन्त्रक कहा गया है। इस नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग ऐसा मानते थे कि इस रोग के समय रोगी के

के समय रोगी के व्यक्तित्व पर उसका अपना तन्त्र नहीं रहता, किसी दूसरे का हो जाता है अर्थात् थोड़ी देर के लिये उस व्यक्ति पर किसी भाव विशेष का तन्त्र कायम हो जाता है। सुश्रुत ने इस रोग को कफानुगत वायु से होने वाला कहा है। अर्थात् शक्ति की कमी के अतिरिक्त अग्नि की कमी भी इस रोग का सहायक कारण होती है। इस रोग के लिये चरक, सुश्रुत दोनों ने हिंगु, तुम्बुरु पुष्कर मूल, अम्लवेतस, हरड़ तथा तीनों लवणों से बने चूर्ण के देने या त्रिकटु, हरड़, सौंवर्चल से साधित घृत के पिलाने का विधान किया है। तथा रोगी की संतर्पण चिकित्सा करने को कहा है। हींग के अतिरिक्त खुरासानी अजवायन, वचा तथा जटामांसी समान समान मिलाकर एक माशे की मात्रा में दिन में दो बार मधु के साथ देने से या ब्राह्मी के किसी योग जैसे ब्राह्मीघृत, सारस्वतारिष्ट के देने से या वृहद्वात चिन्तामणि, चतुर्मुख चिन्तामणि आदि किसी बल्य अर्थात् वायु शामक औषधि में केसर, जायफल, कस्तूरी आदि मिला के कुछ मास तक देने से भी इस रोग में लाभ हो जाता है।

बुद्धि भ्रंश- मनो विभ्रंश :- (Dementia Praecox)

युवा सुलभ उन्माद :- (Hebephrenia) चित्त विक्षेप या विक्षिप्तता :-

(Schizophrenia, Chizo=Split, Phrenia=Mind):-

यह एक अति सुलभ मानस रोग या बुद्धि भ्रंश का रोग है जिसमें बुद्धि की विभिन्न शक्तियां युवावस्था में ही क्षीण हो जाती हैं। इसी कारण Emil Kraepelin (१८९६) ने इसे युवा सुलभ बुद्धि विभ्रंश (Dementia Praecox) का नाम दिया था। फिर Bleurar (१९११) ने यह कहा कि इस रोग में मन के विभिन्न कार्यों में जो पारस्परिक सम्बन्ध रहना चाहिये वह नहीं रहता। जिससे रोगी के विचार और भाव में परस्पर अनुरूपता नहीं रहती। अर्थात् रोगी में जो भाव दीखता है तदनुसार उसका विचार नहीं होता, जो उसका विचार होता है तदनुसार उसका भाव नहीं होता। इस प्रकार मन के एक कार्य के दूसरे कार्य से विभक्त हो जाने से उसने इस रोग को Schizophrenia (विक्षिप्त-चित्त) का नाम दिया। इसलिये, इसे चित्त विक्षेप कह सकते हैं।

कारण :-

इस रोग की दुष्प्रवृत्ति जन्म से आती प्रतीत होती है। रोगी का शरीर मन जन्म से ही निर्बल होते हैं। बहुधा उसके पूर्वजों में मानस रोग के होने का इतिवृत्त पाया जाता है। रोगी का शरीर भी सुकुमार और अविकसित दीखता है। मन में इस रोग की प्रवृत्ति होने के कारण ऐसे बालक में किसी कार्य के लिये बाल सुलभ उत्साह नहीं होता। हर्ष, शोकादिभाव भी मन्द रूप में होते हैं। वह मिलनसार न होकर एकान्त प्रिय होता है। इस

रोग के पैतृक परम्परा से आने के कारण ही यह रोग १५-२० वर्ष की युवावस्था में प्रकट होने लगता है । ऐसा लगता है कि मन की निर्बलता के कारण जब कोई नवयुवक वाह्य कठिन परिस्थितियों का सामना नहीं कर सकता एवं उनके अनुसार अपने को ढाल नहीं सकता तब वह वाह्य वास्तविक जगत से भाग कर अपने काल्पनिक जगत में चला जाता है और वहां शान्ति अनुभव करने लगता है, ऐसे व्यक्ति में इस रोग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।

अन्यों का कथन है कि कुछ एक Catecholamines (Adrenalin) या Noradrenalin या कुछ एक Indol Compounds (Serotonin) में से किसी की मात्रा के मस्तिष्क (Hypothalemus, Ascending Reticular Activating System) आदि) में बढ़ जाने पर यह रोग होता है तथा नवीन औषधियां इनके बनाने तथा नष्ट करने वाले मस्तिष्कगत Enzymes पर अपना प्रभाव करके इस रोग को शान्त करती हैं ।

लक्षण :-

(१) विचार हीनता :-

मन की विभिन्न प्रक्रियाओं के विभिन्न हो जाने या मन के विभिन्न भागों के परस्पर विच्छिन्न हो जाने (Associations की शिथिलता) से रोगी की विचार शक्ति नष्ट हो जाती है । जैसे स्वस्थ व्यक्ति किसी एक आशय को लक्ष्य में रख कर अपने विचार स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करता है, यह रोगी वैसा नहीं कर सकता । उसकी बात का कोई एक लक्ष्य नहीं होता, उसके वाक्य परस्पर असम्बद्ध होते हैं, कभी कभी परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं । उससे बात करके किसी बात का पता लगाना असम्भव है । वह बोलता भी कम है, इसलिये उसे असम्बद्ध भाषी कहते हैं, असम्बद्ध प्रलापी नहीं । रोग के बढ़ जाने पर तो वह केवल भिन्भिनभाषी या अव्यक्तभाषी रह जाता है ।

(२) भाव हीनता :-

मन के भ्रष्ट हो जाने के कारण रोगी में हर्ष, शोक आदि भाव, अति मन्द हो जाते हैं । वह सुख में सुखी व दुःख में दुखी नहीं होता । माता पिता, गुरु आदि में उसकी प्रीति या आदर की बुद्धि नहीं रहती प्रत्युत उनसे घृणा करने लगता है । धीरे धीरे उसका चेहरा भाव हीन, उदासीन सा होता जाता है । उसमें शरीर की रक्षा करने और उसको सजा के रखने का भाव भी नहीं रहता जिससे वह मैला कुचैला सा रहने लगता है । उसके चेहरे पर कभी कभी हंसी का भाव दीखता है परन्तु वह भाव भी सर्वथा उथला होता और निष्कारण होता है ।

(३) इच्छा हीनता :-

रोगी की इच्छा शक्ति हीन हो जाती है जिससे रोगी

युवकों में अपनी पढ़ाई लिखाई या अपने काम धन्धे के करने की भी इच्छा नहीं रहती। प्रातः देर तक बिस्तरे में पड़ा रहता है और फिर उठकर भी निरुद्देश्य उधार इधार फिरता रहता है। एक स्थान पर बैठा बैठा या खड़ा खड़ा एक ओर ही देर तक देखता रहता है। इच्छा शक्ति के नष्ट हो जाने से ही वह साधु सा बन कर घर से निकल जाता या आवारा सा हो जाता है। यह शक्ति अधिकमात्रा में हीन हो जाय तो रोगी अति स्वप्नशील होकर निद्रा में ही पड़ा रहता है।

(४) मनोविभ्रम, भ्रान्त चिन्ता :-

रोगी के चित्त में जब कोई ऐसा मिथ्या विश्वास बैठ जाय जिसे हम युक्तियों से भी दूर न कर सकें तो इसे भ्रान्ति या विभ्रम (Delusion) कहते हैं। इस रोग में जब विचार शक्ति, भाव शक्ति तथा इच्छा शक्ति हीन हो जाती है तो रोगी में किसी भ्रान्ति का हो जाना स्वाभाविक ही है। विचार हीन होने से उसे दूसरे निरपराध व्यक्तियों की बातों में ऐसा भ्रम हो जाता है कि वे उसे लक्ष्य में रखकर की जा रही हैं। उसे अधिकतः यही भ्रम होता है कि दूसरे लोग उसे हानि पहुंचाने का यत्न कर रहे हैं। अपनी भावहीनता को देखकर उसे यह भ्रम हो जाना स्वाभाविक है कि उसमें हृदय या मस्तिष्क नहीं हैं या कि वह मरने वाला है। अपनी इच्छा शक्ति के हीन हो जाने से उसे यह भ्रान्ति हो जाती स्वाभाविक है कि दूसरे आदमी अपनी इच्छा से उसे चला रहे या उससे काम करा रहे हैं।

(५) मिथ्या प्रतीति :- (Hallucination):

जब कोई वस्तु न हो, वह दिखाई पड़े या जो शब्द न हो रहा हो वह सुनाई पड़े और इसी प्रकार जो इन्द्रिय का विषय न होने पर भी इन्द्रिय गोचर होने लगे तो उसे मिथ्या प्रतीति कहते हैं। (कर्ण घोष का होना या आंखों के सन्मुख ज्योति का दीखना आदि ज्ञान नाड़ियों के रोग के कारण होने वाले भाव मिथ्या प्रतीति नहीं कहाते) इस रोग में श्रवण सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति बहुधा होती है। अपने लिये दुर्वचन या हंसी उड़ाने के शब्द उसे सुनाई पड़ते हैं या जननेन्द्रिय सम्बन्धी (Sexual) बुरी बातें उसे सुनाई पड़ती हैं।

भेद :-

(१) युवा सुलभ उन्माद, युवा सुलभ चित्त विक्षेप :- (Hebephrenia):-

यह इस रोग का सबसे सुलभ भेद है। १५-२५ वर्ष का एक युवक विचार हीन, भावहीन, इच्छाहीन, उदासीन, विषण्णवदन, मलिन-गात्र, मलिन वस्त्र और सर्व कार्यों से उपरत होकर किसी व्यर्थ से ध्यान, पूजा

पाठ आदि में लग जाता है यह रोग धीरे धीरे अज्ञात रूप में उत्पन्न होता है।

(२) तारुण्यसुलभ उन्माद :- चेष्टा शून्यता :- (Catatonia) Cata= Down, Tone = Tension.

२५ से ३५ वर्ष की आयु में यह रोग जब सहसा आरम्भ होता है तो शून्योन्माद, ध्यानोन्माद, मोहोन्माद या निद्रोन्माद (Catatonia) के रूप में होता है। भावहीन, इच्छाहीन, मौन सा होकर रोगी एक ही स्थिति में चिरकाल तक खड़ा रहता है या पड़ा रहता है। मुख में संचित हुई लार को थूकने की इच्छा भी नहीं करता जिससे वह मुख से चूती रहती है। रोग थोड़ा हो तो कभी कभी बीच में खड़ा हो जाता है, रोग अधिक हो तो सर्वथा निश्चेष्ट होकर एक ही अवस्था में पड़ा रहता है। उसके अंग उलटे सीधे भी पड़े हों तो भी उन्हें हिलाता नहीं है। इसे निद्रोन्माद या मोहोन्माद (Catolepsy या Stupor) कह सकते हैं। या वह अपने शरीर को एक कठिन सी स्थिति में करके उसी में देर तक खड़ा रहता है (Flexibilitas Cerea, अंगों में अप्राकृतिक लचक) या जिस छोटी सी चेष्टा को करने को उसे कहा जाय उसी को बारबार किये जाता है (Automatism)। या जिस शब्द या पद को सुन ले उसे ही दुहराता जाता है (Echolalia)। या जिस चेष्टा को दूसरे में देख ले उसी को बार बार किये जाता है (Echopraxia)। या बैठा बैठा आंख भौंहों, चेहरे आदि से किसी चेष्टा को करता रहता है। या कभी कभी हलकी सी हंसी का भाव प्रकट करता है यद्यपि रोगी सर्वथा भावों से शून्य होता है।

कोई कोई रोगी इस प्रकार सर्वथा चेष्टा शून्य होकर बैठे रहने के दौरान में बीच बीच में उत्तेजित होकर एक प्रबल चेष्टा करता है जैसे क्रोध में वह ऐसा कर रहा हो। (Impulsiveness) सर्वथा निश्चेष्ट रहने के स्थान पर कोई कोई रोगी हर समय एक नियत क्षेत्र के अन्दर अन्दर या अपने कमरे के अन्दर घूमता ही रहता है। उसका यह घूमना सर्वथा निरुद्देश्य होता है। (Hyperkinesia) या वह अपने शरीर से इसी प्रकार की कोई दूसरी चेष्टा लगातार उसी प्रकार (Stereotyped) की करता रहता है या उसी प्रकार के शब्द को समय-समय पर बोलता रहता है या उदासीन सा दीखता हुआ भी बीच बीच में आवेश पूर्वक एक प्रबल सी निरुद्देश्य चेष्टा करता रहता है।

(३) मध्यमायु सुलभ उन्माद, भ्रमोन्माद :- Paranoia, Para = Beside, Noia = Mind, (Paranoid Schizophrenia) :-

४५-५० वर्ष की आयु में धीरे धीरे अज्ञात रुप में जब यह रोग होता है तो विचार हीनता, भावहीनता, इच्छाहीनता के लक्षण तो गौण रुप में होते हैं पर इसके कारण उत्पन्न किसी प्रकार की भ्रान्ति के लक्षण की प्रधानता होती है। दूसरे उसे कष्ट पहुंचाना चाहते हैं। इस तरह की भ्रान्ति उसे बहुत होती है। उसके भाषण तथा व्यवहार से पता चलता है कि उसे श्रवण सम्बन्धी मिथ्या प्रतीति भी होती है।

पहचान :-

जब कोई रोगी विचार हीन, भावहीन, इच्छाहीन सा हो जाय, समाज से दूर होता जाय, अपने में ही मस्त रहने लगे (Autism) ,उसका भाषण व्यवहार तथा रहन सहन अजीब सा हो जाय तो इसे चित्त विक्षेप रोग का ही सन्देह होना चाहिये।

भेदक लक्षण :-

चेष्टा प्रधान मानस रोग (Mania, Hypomania) से।

भेद :-

चेष्टा युक्त मानस रोग में रोगी रात दिन अत्यधिक चेष्टाशील और जागरुक रहता है। हर समय एक उमंग पर सवार रहता है। सदा अति प्रसन्न दीखता है (यद्यपि प्रसन्नता के पीछे विषाद का भाव छिपा हुआ रहता है) वह किसी न किसी कार्य में तत्पर रहता है। यद्यपि उसकी चेष्टाओं और कार्यों का उद्देश्य शीघ्र शीघ्र बदलता रहता है और उसे प्रेरणा करके उससे कोई कार्य कराया जा सकता है। बातचीत करके स्वल्पकाल के लिये उसके साथ सम्पर्क भी कायम किया जा सकता है। उसमें भ्रम या किसी प्रकार की मिथ्या प्रतीति के होने का लक्षण भी नहीं होता। थोड़ी देर के लिये तो वह सर्वथा एक नार्मल व्यक्ति ही लगता है। परन्तु इस चित्त विक्षेप जनित उन्माद या चित्त विक्षेप रोग में रोगी साधारणत: मन्द और निश्चेष्ट सा रहता है। कभी कभी उसमें चेष्टा शीलता फूट पड़ती है पर उस चेष्टा के बाद फिर वह मन्द सा ही हो जाता है। उसकी यह चेष्टा भी सर्वथा निरुद्देश्य होती है और अनुमान लगाया जाता है कि किसी भ्रमवश या किसी मिथ्या प्रतीति वश उसमें यह चेष्टा होती है। सामान्यत: यह रोगी अपने रुग्ण विचारों और भावों में गुम हुआ २ रहता है। इसलिये उसके साथ सम्पर्क करना या उससे कोई काम लेना या उसके ध्यान को अपनी ओर खींचना असम्भव होता है।

विषाद युक्त मानस रोग से भेद :-

उस रोग में भी मन्दता और चेष्टा शून्यता का लक्षण होता है पर इतना गहरा नहीं जितना इस रोग में। सहानुभूति पूर्ण वार्तालाप से उस रोगी के चेहरे पर प्रसन्नता का भाव लाया जा सकता है। इस रोगी में नहीं।

साध्यासाध्य :-

इस रोग के आरम्भ होने के दो वर्ष के अन्दर अन्दर उचित चिकित्सा करा लेने पर ५० प्रतिशत रोगी अच्छे हो सकते हैं। पर यदि रोग ४-५ वर्ष पुराना हो जाय तो प्राय: असाध्य हो जाता है। बाल्यकाल में ही यह रोग हो जाय तो अधिक गम्भीर रुप में होता है। मध्यमायु में हो तो चिरस्थायी होने पर भी अधिक गम्भीर रुप नहीं लेता। इस रोग के ठीक हो जाने पर भी दुबारा इसका आक्रमण हो सकता है। इस रोग में मृत्यु किसी आगन्तु रोग से जैसे क्षय रोग आदि से होती है।

चित्त विक्षेप की चिकित्सा :-

विद्युच्चिकित्सा (Electric Shock) चिकित्सा :-

विद्युत के द्वारा ६-७ आघात देने से अशान्त रोगी शान्त हो जाता है। तदुपरान्त उसकी इन्सुलिन मूर्छा चिकित्सा करनी सुगम हो जाती है। इन्सुलिन मूर्छा चिकित्सा के बाद विद्युच्चिकित्सा से रोगी में विद्यमान मन्दता और उदासीनता का लक्षण जाता रहता है।

इन्सुलिन मूर्छा (Insulin Coma) चिकित्सा :-

रोग को एक वर्ष से अधिक समय न बीता हो तथा रोगी ३०-३५ वर्ष की आयु से ऊपर का न हो उसे हृदय, यकृत, वृक्क तथा फुफ्फुस सम्बन्धी कोई रोग विशेष न हो तो इस चिकित्सा से पर्याप्त लाभ हो जाता है। इस चिकित्सा के लिये रोगी को १०-१२ घन्टे निराहार रखने के बाद प्रात: १०-१५ युनिट Soluble Insulin मांस द्वारा दे दी जाती है और अगले दिन इतनी मात्रा और बढ़ा दी जाती है। इस प्रकार जब यह मात्रा ६०-८० युनिट तक पहुंच जाती है तब रोगी इस मात्रा के देने के ३ घन्टे बाद मूर्छित हो जाता है। आधे घन्टे तक की मूर्छा के बाद रोगी को ७ औंस ग्लूकोज़ को १ पाइंट चाय या गर्म जल में मिला के Nasal Tube द्वारा उसके पेट में पहुंचा दिया जाता है या ३३ प्र०श० ग्लूकोज़ सोल्यूशन को ५० सी०सी० मात्रा में शिरा द्वारा दे दिया जाता है। इससे २०-३० मिनट में उसकी मूर्छा टूट जाती है। फिर सप्ताह में ६ दिन तक इसी मात्रा के द्वारा मूर्छा उत्पन्न की जाती और इसी विधि से उसे तोड़ा जाता है। इस प्रकार कम से कम ५-६ सप्ताह या अधिक से अधिक १०-१२ सप्ताह तक मूर्छा उत्पन्न करने के इस क्रम को जारी रखा जाता है। इस चिकित्सा से क्यों लाभ होता है, इस विषय में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता।

निम्नलिखित नवीन औषधियों से इस रोग की चिकित्सा की जाती है :-

(१) Reserpine (Serpasil)

भ्रमणशील भ्रम प्रधान (Catatonia तथा Paranoia) रोगी में रोग मृदु हो तो १ मिलिग्राम, तीव्र हो तो २½ से १० मिलिग्राम तक की मात्रा में मांस द्वारा या शिरा द्वारा प्रतिदिन या प्रति दूसरे दिन इसका प्रयोग करना चाहिये। इंजेक्शन के एक दो घन्टे में इसका प्रभाव प्रतीत होने लगता है। इसके साथ १ मिलि० मात्रा में मुख द्वारा भी इसका प्रयोग प्रतिदिन दो बार करना चाहिये। एक सप्ताह के लगभग समय में इससे लाभ हो जाता है। लाभ कम हो तो मात्रा बढ़ा सकते हैं तथा ५-७ दिन और इसे जारी रखा जाना चाहिये। १,१½ मास के प्रयोग से तो प्रायः रोगी ठीक हो ही जाता है।

१-१½ मास तक इस औषधि के साथ Chlorpromazine का प्रयोग करने से और अधिक लाभ होता है। बीच में रोगी कुछ विषादग्रस्त सा भी हो जाय पर फिर वह शान्त और स्वस्थ हो जाता है।

(२) Chlorpromazine Hydrochloride - Largactil, (May Baker)

यह Phenothiazine का एक योग है जिसकी खाण्ड से लिपटी गोलियां तथा इंजेक्शन भी मिलते हैं। २५-५० मिलिग्राम मात्रा में दिन में २-३ बार मुख से या मांस द्वारा या शिरा द्वारा ६-१२ घन्टे के बाद इसका प्रयोग करने से तीव्र चेष्टा प्रधान या भ्रम प्रधान (Catatonia, Parqnoia, Hallucination) रोगी अथवा भय प्रधान मूक निद्रित और विचित्र स्थितियों में निश्चल पड़े रहने वाला रोगी (Mute-Stuporose Flexibilitas Cerea) ठीक होने लगता है। एक सप्ताह बाद इसकी मात्रा १००-५०० मिलि० दिन में तीन बार मुख से या ५० मिलि० मांस द्वारा तीन बार कर दी जाती है। ५० मिलि० को १० सी०सी० शुद्ध जल में मिला बहुत धीरे धीरे शिरा द्वारा भी दिया जाता है। Obsession में भी यह औषधि कुछ लाभ करती प्रतीत होती है। पुराने रोगी में इसे महीनों तक जारी रखना चाहिये। इस प्रकार Schizophrenia के लिये यह एक उत्तम औषधि है।

(३) Promazine (Sparine Wyeth)

यह भी Phenethiazine का एक योग है। चेष्टा प्रधान तथा भ्रम प्रधान रोगी में इसके २५-५० मिलि० मात्रा में ६-६ घन्टे पर मुख द्वारा या मांस द्वारा देने से उपर्युक्त औषधि के समान ही लाभ होता है।

(४) Triflupromazine :- (Vespral Squbb. Siquil):-

Chlorpromazine के Chlorine एटम के स्थान पर Trifluor Methyl के आ जाने पर Triflupromazine

एक औषधि बन जाती है जो उसी मात्रा में देने पर भ्रम पूर्ण चित्त विक्षेप (Delusion, Hallucination, Mania) पर और भी अधिक प्रभाव करती है परन्तु इसे अधिक काल तक जारी रखने से दुर्लक्षण होने लगते हैं।

(५) Prochlorperazine (Stemetil, May & Baker)

Prochlorpromazine में Dimethylaminoprophyl के स्थान पर Methyl Piperazinyl के आ जाने से Pronchlorperazine नामक औषधि बन जाती है जिसके १० मिलि० से लेकर ३० मिलि मात्रा में दिन में तीन बार या १२½ मिलि० के इंजेक्शन के दिन में दो बार देने से भ्रम युक्त (Paranoid) चित्तविक्षेप में और भी अधिक तथा शीघ्र लाभ होता है। तीक्ष्ण तथा चेष्टा प्रधान रोगी के अतिरिक्त संसार से विरत हुए रोगी में भी शीघ्र लाभ दिखाती है।

(६) Trifluoperazine :- (Stelazine Eskazine)

Prochlorperazine के Chlorine एटम के स्थान पर Trifluoromethyl के आ जाने से Trifluoperazine नामक औषधि बनती है जिसके पहले ३. फिर १०. मिलि० मात्रा में प्रतिदिन तीन बार मुख द्वारा देने से और फिर तीन तीन दिन के अन्तर से १० व १५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से भ्रमपूर्ण (Paranoid) चित्तविक्षेप में तथा संसार से विरत हुए या निद्रित रहने वाले या मूक हो गये चित्तविक्षेप के रोगी में भी लाभ विशेष होता है।

(७) Thioridazine (Melleril Sandoz)

यह भी Phenothiazine का ही एक यौग है जिसे पहले २५ मिलि० से १०० मिलि० मात्रा तक ६-६ घन्टे पर मुख से देने से. फिर क्रमश: ३०० मिलि० तक दिन में ३-४ बार देने से भ्रमयुक्त (Paronoid) तथा मन्द चेष्ट (Catatonia) चित्त विक्षेप में लाभ होता है। इसे ३-४ मास तक जारी रखना चाहिये।

(८) Thioprophazate Dihydrochloride (Dartalan Searle)

यह भी Phenothiazine का एक यौग है। इसे [redacted] ५-१० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से भ्रमपूर्ण, चेष्टायुक्त, आक्रमणकारी या विपरीतकारी (Negativism) रोगी में लाभ हो जाता है।

(९) Cyclohexalamine (P.D.Compound C-401)

१०-२० मिलि० मात्रा में दिन में दो बार देने से चित्त विक्षेप के रोगियों में लाभदायक पाया गया है।

उपर्युक्त सभी प्रकार के

(१०) Acepromazine. (Notensil-Plegicil)

यह भी Phenothiazine का एक योग है और Chlorpromazine के समान ही इस रोग में उपयोगी है । ५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार इसे प्रारम्भ किया जाता है ।

(११) Fluopromazine (Vespral)

यह भी Phenothiazine का एक योग है । Chlorpromazine के समान गुण हैं । १० मिलि० से प्रारम्भ कर १०० मिलि० तक दिन में तीन बार दिया जा सकता है ।

(१२) Perphenazine (Fentazin-Trilafon)

यह Chlorphenothiazine का Aminoderivative है । उससे कम विषैला हो जाता है । ५-१५ मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार देने से चित्तविक्षेप रोग के उपर्युक्त लक्षणों को शान्त करता है।

(१३) Pecazine (Pacatal, Warner)

Chlorpromazine के समान गुण औषध है । २५ मिलि० गोलियों के ६-६ घन्टे पर २-३ दिन देने या उसके ५० मिलि० के इंजेक्शन के मांस द्वारा या शिरा द्वारा देने से उन्माद युक्त या चेष्टायुक्त चित्तविक्षेप रोगी शान्त हो जाता है । यह औषधि Parasympathatic. नाड़ी मण्डल के लिये विशेष शामक है । अत: इसके अधिक प्रयोग से मलबन्ध, मुख शोष, मूत्रावरोध, पुतलियों के फैलने के दुर्लक्षण हो सकते हैं । Chlorpromazine औषधि अधिकतः Sympathatic. नाड़ी मण्डल के लिये शामक है । अत: इन दोनों को परस्पर साथ साथ भी दिया जा सकता है ।

(१४) Azacyclonol Hydrochloride (Frenquel, Riker)

Benzhydrol से बने इस योग के २० मिलि० से ६० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार रोग की तीव्रता के अनुसार देने से १५ दिन के अन्दर अन्दर चित्त विक्षेप रोगी के चेष्ठाशीलता, मनोविभ्रम, उदासीनता, मलिनता, आदि लक्षण कम हो जाते हैं और वह दूसरों से मेल मिलाप करने लगता है । परन्तु अभी तक इस औषधि के विषय में उत्साह जनक सम्मतियां प्राप्त नहीं हुई ।

इन औषधियों का प्रयोग चिरकाल और सम्भवत: आयु भर करना पड़ता है । एक बार जब रोगी बहुत कुछ ठीक हो जाय तब धीरे धीरे औषधि की मात्रा कम करके उसकी चालू (Maintenance) मात्रा जारी रखनी चाहिये ।

आयुर्वेद में उन्माद या चित्त विक्षेप रोग :-

आयुर्वेद में तीव्र चेष्टा प्रधान मानस रोग (Manic Psychosis) तथा इस चित्त विक्षेप रोग दोनों को उन्माद रोग कहा प्रतीत होता है। चरक (नि०।७) तथा सुश्रुत (उ०।६२) ने कहा है कि जब वायु, पित्त कफ दोष मस्तिष्क में मन के स्थान को व्याप्त करके मनुष्य को मनन या चिन्तन के अयोग्य बना देते हैं तो इस अवस्था को उन्माद कहते हैं। (उत् = ऊपर, मदयन्ति इति उन्माद:) तथा उन्होंने इसके कारण के विषय में कहा है कि जो मनुष्य जन्म से ही निर्बल, क्षीण देह का होता तथा जिसके मन में जन्म से ही सत्व गुण की मन्दता, रजोगुण या तमोगुण की विशेषता होती है, जिसका आहार मलिन एवं अनुचित होता है और फिर किसी रोग वश या किसी भारी चोट के लगने से जिसका मन पहले पीड़ित हो, अब यदि उस पर कोई काम, शोक, भय, चिन्ता आदि का मानसिक आवेश भी आ पड़े और उसकी बुद्धि को विचलित कर दे अर्थात् उसकी समझ बूझ को नष्ट कर दे तो शरीर में बढ़े हुए वायु, पित्त कफ दोष पृथक् पृथक् या मिलकर उसके मन के स्थान को दूषित कर देते हैं और इस उन्माद रोग को उत्पन्न कर देते हैं।

इस रोग में (१) एक तो मनो विभ्रम हो जाता है। मनुष्य को नाना प्रकार की भ्रान्तियां (Delusions) रहने लगती हैं। उसे नाना प्रकार के कष्टों के दिये जाने की भ्रान्ति विशेष रहती है (जैसे चरक ने तिल पीडन चक्राधिरोहण, जलनिमज्जन, वायु के आवर्त में घिर जाने आदि का उल्लेख किया है)। (२) बुद्धि विभ्रम हो जाता है जिससे वह ठीक ठीक विचार करने के अयोग्य हो जाता है। चरक के अनुसार वह अबद्ध वाक् हो जाता है अर्थात् उसका भाषण सम्बद्ध नहीं रहता। रोग के कुछ बढ़ने पर तो उसका मस्तिष्क शून्य या विचार हीन हो जाता है। चरक ने इसे "शून्य हृदय" कहा है।

(३) उसके संज्ञा व ज्ञान की शक्तियां विपरीत हो जाती हैं। अर्थात् उसकी प्रतीति विकृत हो जाती है जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द नहीं है उसकी उसे प्रतीति होने लगती है। (Hallucination)। या जिस तरह के हैं उसे उनसे अन्यथा प्रतीति होने लगती है। (Illusion)।

(४) स्मृति विभ्रम, दूसरे शब्दों में नवीन अनुभवों को मन में अंकित कर लेने; पूर्वोक्त अनुभवों को फिर उद्धृत (Recall) करने की शक्ति भी उसकी विकृति हो जाती है।

(५) शील विभ्रम अर्थात् स्वभाव में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणत: सुशील दु:शील हो जाता, संयमी असंयमी हो जाता है।

(६) उसमें चेष्टा विभ्रम के लक्षण भी पाये जाते हैं अर्थात् उसमें ओष्ठ, कन्धे, हनु, हाथ, पांव आदि में विक्षेप (Grimacing), असंयत भाषण, अति परिसरण, अस्थान, हास्यगीत, नृत्य आदि विकृत चेष्टायें पाई जाती हैं।

वह एक ही चेष्टा या वाक्य को बार बार दुहराता है (Echopraxia तथा Echolalia)

(७) उसमें आचार विभ्रम के लक्षण अर्थात् उसके व्यवहार में भी परिवर्तन हो जाता है अपना दैनिक कार्य छोड़कर उदासीन हो जाता है। मेहनत छोड़कर साधु हो जाता या आवारा हो जाता है।

भेद :-

इसी प्रकार मन के स्थान में वायु की वृद्धि हो तो रोगी का शरीर अधिक कृश होता, त्वचा रुक्षा होती है। उसके शरीर और मन में चेष्टा वृद्धि (Hyperkinesia) के सूचक लक्षण पाये जाते हैं। मन के स्थान में कफ दोष की वृद्धि हो तो रोगी के शरीर, मन, वाणी आदि में मन्दता (Akinesia-Lethargy) के सूचक लक्षण पाये जाते हैं। मस्तिष्क में पित्त दोष की वृद्धि हो तो रोगी में असहनशीलता, क्रोध, व्यग्रता, तीव्रता, और शरीर में ताप की अधिकता के सूचक लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा :-

आयुर्वेदानुसार इस तीव्र मानस रोग में रोगी का अन्दर बाहर स्नेहन करके पहले उसे विरेचन औषधि दी जाती है और फिर समय समय पर निरूहवस्तियों, स्निग्ध वस्तियों, विरेचन नस्यों तथा स्नेहन नस्यों के द्वारा उसका मृदु शोधन जारी रखा जाता है जब तक उसे प्रबल वेग होता है। तीक्ष्ण नस्य तथा तीक्ष्ण अंजन का प्रयोग किया जाता है। दोष शोधन के साथ साथ तेलों से मालिश कराई जाती है और घृत दिन में २-३ बार पिलाया जाता है। कोई लोग पुराने घी को इस रोग के लिये विशेष हितकर बताते हैं। चरक ने भी पुराने घी को मेध्य और उन्माद रोग के लिये अति हितकर कहा है परन्तु अभी जब तक इस पर परीक्षण न हो जाएं, इसके विषय में ठीक ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता।

कुछ एक मेध्य औषधियाँ जैसे जटामांसी, वचा, हरितकी, शालिपर्णी, ब्राह्मी, सर्पगन्धा (नाकुली), शंखपुष्पी, कुष्ठ, शतावरी, सौंफ, हींग, तगर, लशुन आदि से साधित घृतों के पिलाने का विधान विशेष तौर से किया गया है। जीवनीय घृत, ब्राह्मीघृत, पैशाचिक घृत, कल्याण घृत आदि कुछ एक घृत विशेषत: इस रोग में हितकर कहे गये हैं।

सर्पगन्धा :-

सर्पगन्धा का प्रयोग इस रोग में बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। इस चूर्ण को ४०० मिलि० मात्रा में दिन में तीन बार प्रतिदिन या १५०० मिलि० सर्पगन्धा को काली मरिच के साथ पीसकर छानकर दिन में एक बार प्रतिदिन पिला दिया जाता है। इस तरह रोगी के अन्दर ३ मिलिग्राम के लगभग Reserpine प्रतिदिन पहुंच जाता है जिससे उसका चित्त शान्त होने लगता है।

वचा चूर्ण का प्रयोग भी इस रोग में चिरकाल से होता आ रहा है। उसके ५०० मिलि० चूर्ण को कुछ घृत युक्त दूध के २-४ घूंन्टे के साथ प्रतिदिन १-२ बार दिया जाता है। जिससे रोगी का चित शान्त होने लगता है। वचा के कुष्ठ तथा सिरस के बीजों के साथ मिलाकर बनाये चूर्ण का नस्य के रूप में भी इस रोग में प्रयोग होता है। ब्राह्मी वचा जटामांसी आदि पर इंअभी नवीन रीति से शोधन नहीं हुआ है।

उन्निद्रता :- Insomnia:-

निद्रा का कारण :-

Kleitman (१६२३) के अनुसार Thalamus के अन्दरले भाग में एक निद्रा केन्द्र या "स्लीप सेन्टर" है जिसके द्वारा जागते सोते हर समय सारे Cortex में एक मन्द मन्द विद्युत गति होती रहती है जिसका पता Electroencephalogram से चलता है।

मस्तिष्क में एक दूसरा केन्द्र जागृति केन्द्र (Waking सेन्टर) भी है जो मिडब्रेन तथा Hypothalamus के पिछले भाग में (Sympathetic के साथ) रहता है जो त्वचा, शाखाओं, आशयों तथा ऊपर मस्तिष्क के Cortex से आये संज्ञासूत्रों द्वारा उत्तेजित होता रहता है। जब तक यह केन्द्र उत्तेजित रहता है, निद्राकेन्द्र अभिभूत या दबा हुआ रहता है। सोने के समय शान्त होकर लेट जाने पर मस्तिष्क की ज्ञानेन्द्रियों, त्वचा आदि से आने वाली संज्ञायें जब क्रमशः शान्त हो जाती हैं तब निद्रा केन्द्र प्रबलतर हो जाता तथा जागृति केन्द्र मन्दतर हो जाता है जिससे नींद आ जाती है। फिर प्रातः होते होते बाहर के शोर गुल या प्रकाश या मल मूत्र आदि की प्रवृत्ति के कारण जागृति केन्द्र तो उत्तेजित होने लगता और निद्रा केन्द्र मन्द पड़ जाता है जिससे नींद टूट जाती है।

निद्राकाल में शरीर क्रिया विज्ञान :-

निद्राकाल में शरीर के मांसों में शिथिलता होती है, मस्तिष्क में होने वाली विद्युद्गतियां मन्दतर हो जाती हैं (अर्थात् १-२ सेकण्ड में १ गति होती है जिसे Delta wave कहते हैं)। Parasympathatic नाड़ी मण्डल प्रबल होता है जिससे हृदय, नाड़ी तथा श्वास की गतियां मन्द हो जाती हैं। पुतली सुकड़ जाती है तथा रक्तवाहिनियां फैल जाती हैं।

उन्निद्रता का कारण :-

किसी प्रकार की प्रबल चिन्ता या मानसिक विक्षोभ अर्थात् Sympathatic नाड़ी मण्डल का उत्तेजन उन्निद्रता का प्रधान कारण है। इसके अतिरिक्त कुछ गौण कारण भी हैं जैसे हृदय की निर्बलता से या मस्तिष्क धमनियों की कठोरता (Sclerosis) से जब मस्तिष्क का पोषण कम हो जाता है तब भी, निद्रा कम हो जाती है। रक्त में मूत्र विष (Uraemia) हो या चाय, काफी आदि का रात को प्रयोग किया जाय तो भी नींद कम हो जाती है। विटामिन B_1 तथा B_6 की कमी से भी निद्रा कम हो सकती है।

लक्षण :-

उन्निद्रता के कारण शरीर तथा मन दोनों थके हुए लगते हैं। शरीर की कार्य करने की शक्ति तथा दृढ़ता घट जाती है। मन की धृति, स्मृति, एकाग्रता, प्रसन्नता आदि शक्तियां घट जाती हैं। मन अशान्त, विषण्ण या क्रोधी रहता है। शरीर में Tendon Reflexes बढ़े हुए पाये जाते हैं।

मानसिक विषाद के कारण उन्निद्रता हो तो निद्रा आ जाती है। पर प्रात: शीघ्र टूट के फिर नहीं आती। मानसिक चिन्ता प्रबल हो तो बिस्तरे में पड़ जाने पर भी बहुत देर तक नींद नहीं आती या वह बार बार टूटती है। मस्तिष्क धमनियों की कठोरता के कारण जब नींद हलकी हो जाती है तब वह स्वल्प कारण से टूट जाती है।

चिकित्सा :-

शरीर की निर्बलता और अशक्ति के कारण भी मस्तिष्क के खोल या Cortex से आने वाली संज्ञाओं से जागृति केन्द्र उत्तेजित रहता है। इसलिये इस रोग में शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का यत्न करना चाहिये तथा मस्तिष्क शामक औषधियों का भी प्रयोग करना चाहिये। रात को हलका भोजन करने, सिर पर तथा शाखाओं पर मालिश या मर्दन करने या इनका गर्म स्नान करने, सोने से पहले किसी गर्म पेय जैसे एक गर्म दूध के प्याले या मद्य (Wine or Whisky १ औंस) के पीने, तथा १-२ घन्टे पहले गम्भीर विषयों या चिन्ताओं का परित्याग कर देने, दोपहर २-३ बजे के बाद चाय, काफी, इफेड्रीन, एम्फिटामीन, आदि का परित्याग कर देने से निद्रा में सहायता मिलती है। निद्राजनक औषधियों में से Butobarbitone (Soneryl) तथा Amylobarbitone (Amytal = १½, ३ ग्रेन) का निद्राजनक प्रभाव आधे घंटे बाद आरम्भ होकर ६ घन्टे तक बना रहता है तथा अगले दिन शरीर में आलस्य आदि कोई लक्षण नहीं रहता। Phenobarbitone (Luminal, Gardenal = १-३ ग्रेन) का निद्राजनक प्रभाव १-२ घन्टे में आरम्भ होता और ६-८ घन्टों तक रहता है। पर अगले दिन भी तबियत में कुछ सुस्ती सी बनी रहती है। Quinal Barbitone Sodium (Seconal Sodium १-२ ग्रेन) का निद्राजनक प्रभाव १५-२० मिनट में ही आरम्भ हो जाता, पर ३-४ घन्टे ही रहता है। Tuinal (Seconal Sodium तथा Sodium Amytal का मिश्रण) केप्सूल के १-, ३ ग्रेन की मात्रा में देने से ६-८ घन्टे निद्रा आ जाती है। Carbromal (Adalin Bayer) ५-१५ ग्रेन के देने से आधे घन्टे में निद्रा आरम्भ होकर ४-५ घन्टे रहती है। Sonergan (Promethazine, २५, ७५ मिलि०) के देने से १० घन्टे तक निद्रा आती है।

Butobarbitone

उठने के बाद भी शरीर में कुछ सुस्ती सी बनी रहती है । Cycloheptenyl Ethyl Melonyl Urea (Medomin-Geigy) ३ ग्रेन के देने से आधे घन्टे में नींद आ जाती है जो गहरी होती है और जल्दी नहीं टूटती । बाद में कुछ सुस्ती रहती है । Glutethimide २५० मिलि० मात्रा में शामक है, । ५०० मिलि०मात्रा में २० मिनट में निद्राजनक होता है । इसकी निद्रा ६ घन्टे तक रहती है । यह Doriden (सिबा) के नाम से मिलती है । इसकी निद्रा मधुर तथा गहरी होती है । उपर्युक्त औषधियां रात को भोजन से पहले जल से देनी चाहियें । भोजन के बाद देने से इनका प्रभाव बहुत देर से आरम्भ होता है ।

वार्धक्य सुलभ मानस रोग - वार्धक्य सुलभ बुद्धि भ्रंश :-(Senile Psychosis, Senile Dementia)

कारण :-

७०-७५ वर्ष की आयु में पहले से ही जो व्यक्ति वायु प्रकृति (Psychopathic Temperament) के होते हैं उनमें किसी मानसिक आघात जैसे स्त्री, पुत्र, धन, आदि के वियोग से उत्पन्न होने वाला यह मानस रोग है । जिसमें बुद्धि तथा स्मृति की मन्दता, साथ ही शील और स्वभाव के बदल जाने के लक्षण हो जाते हैं ।

विकृति :-

इस रोग में उर्ध्व मस्तिष्क के अन्दर विशेषत: Frontal Lobe में लघुता (Atrophy) की विकृति विशेष होती है अर्थात् उसमें नाड़ियों के सेलों तथा सूत्रों की संख्या कम हो जाती है । नाड़ियों पर चढ़े आवरण (Neuroglia Tissue) की मात्रा बढ़ जाती है । मस्तिष्क धमनियों में कुछ कुछ काठिन्य (Sclerosis) की विकृति भी होती है ।

लक्षण :-

मस्तिष्क में क्रमश: क्षीणता या लघुता के होते जाने से मनुष्य का स्वभाव तथा शील बदल जाता है अर्थात् बालकों के समान स्वार्थ, क्रोध हठ आदि दुर्गुण उसमें आने लग जाते हैं । बुद्धि के न्यून हो जाने के कारण उसकी ग्रहण करने की तथा किसी बात पर देर तक एकाग्र रहने की शक्ति नहीं रहती । स्वभाव में भी वह कुछ विषाद प्रधान हो जाता है । उसके चित्त का क्षेत्र संकुचित हो जाता है जिससे वह दूसरों की नहीं सोचता, । केवल अपने स्वास्थ्य, खाने पीने, आराम और धन के विषय में ही सोचता है । युवावस्था में विकसि त हुए अन्यान्य गुणों के नष्ट होते जाने से वह क्रमश: बालक वत् व्यवहार करने लगता है । उसका मिज़ाज भी खराब हो जाता है । थोड़े अपमान से ही क्रुद्ध हो उठता है, यद्यपि उसमें साधारणत: भावहीनता अर्थात् हर्ष, शोक आदि के भाव

की मन्दता का लक्षण होता है । वह परिवर्तन को पसन्द नहीं करता, क्योंकि नई अवस्थाओं के अनुसार जैसे युवक अपने को ढाल लेता है वह ऐसा कर नहीं सकता प्रत्युत नई अवस्थाओं में उसे रखदेने पर वह व्याकुल सा हो जाता है । उसकी स्मृति शक्ति भी बहुत कम हो जाती है । कल की बातें भूल जाती हैं, परिचित व्यक्तिओं के नाम तक भूल जाते हैं । उसमें अपने शरीर तथा वस्त्र आदि की स्वच्छ एवं ठीक रखने की तमीज भी नहीं रहती जिससे उसके कपड़े लत्ते मैले कुचैले, बेढंगे हो जाते हैं । यदि वह पहले से ही शंकाशील प्रकृति का हो तो अब बुद्धि या विवेक के न रहने से उसमें सन्देह शीलता का दोष उत्पन्न हो जाता है जिससे उसे दूसरों के विषय में नाना प्रकार के भ्रम होने लगते हैं । दूसरे उसे विष देने या कष्ट देने की सोच रहे हैं, - यह भ्रम उसे बहुधा होता है । इस रोगी की निद्रा भी बहुत घट जाती है । इस प्रकार वृद्धावस्था में पाये जाने वाला यह मानस रोग या तो विषाद प्रधान (Depressive किस्म का या Depressed-Agitated किस्म का होता है । जिसमें विषाद के साथ चिड़चिड़ेपन का लक्षण भी मिला रहता है । या उसका मानस रोग भ्रम प्रधान (Paronoid किस्म का) होता है अर्थात् यदि उसे सुनाई कम पड़ता हो या नजर कम आता हो तो उसे नाना प्रकार के सन्देह और भ्रम होने लगते हैं । बुद्धि भी नष्ट हो रही हो तो बेहूदा तथा निराधार भ्रम होने लगते हैं । कभी कभी चेष्टा प्रधान (Manic) मानस रोग भी उसे होता है जिसमें वह व्यर्थ की चेष्टायें लगा रहता है जो कभी कभी रात को भी जारी रहती है । यदि यह रोग ४०-५० वर्ष की आयु में हो तो इसे Presenile Psychosis कहते हैं ।

मस्तिष्क धमनी रोग जनित मानस रोग :-(Arterosclerotic Dementia)

यह रोग ५५-६० वर्ष की आयु के पुरुषों में होता है अर्थात् विशेषत: मस्तिष्क धमनियों में ही धमनी काठिन्य रोग (Sclerosis) के धीरे धीरे आरम्भ हो जाने से उनमें क्रमश: बुद्धि क्षय का लक्षण दीखने लगता है । मस्तिष्क धमनियों में काठिन्य होने की प्रवृत्ति कुछ एक परिवारों में होती है जो शारीरिक विषों (Infections) ,मद्यादि विषों, मधुमेह, रक्त में Cholesterol की वृद्धि (Cholesterolaemia) और आवेश पूर्ण मानसिक श्रम से प्रकट हो जाती है । मस्तिष्क में कहीं कहीं धमनियों में Astheroma की प्रक्रिया के होने से वहां मृदुता (Softening) तथा लघुता (Atrophy) की विकृति भी हो जाती है । सारे मस्तिष्क में लघुता (Atrophy) की [illegible] विकृति नहीं होती जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व वैसे नहीं बदलता जैसे उपर्युक्त रोग में । इस रोग में स्थानिक विकृति के लक्षण पाये जाते हैं । स्मृति नाश का लक्षण विशेष पाया जाता है जिससे कल की बातें भूल जाती हैं । असहन शीलता या विक्षोभ शीलता बढ़ जाती है । जिससे शीघ्र क्रोध का आवेश हो जाता है । या शीघ्र आंसू आ जाते हैं । उसके [illegible] तक सीमित

हो जाता है जिससे उसे दूसरों के सुख दु:ख का कोई ख्याल नहीं होता। उन्निद्रता का लक्षण विशेषत: रात को रहता है। यद्यपि दिन के बहुत से भाग में वह ऊंघता रहता है। वह सदा दु:खी या विषण्ण बदन रहता है। तथा विवेक की न्यूनता के कारण ही शंका शील भी हो जाता है। स्वभाव उसका बालकों का सा हो जाता है।

ऊर्ध्व मस्तिष्क में विकृति के कारण ऐसे शारीरिक लक्षण जैसे भाषण सम्बन्धी निर्बलता (Dysphasia) दोनों जांघों में स्तब्धता युक्त निर्बलता (Paraplegia), जिह्वा, गले कण्ठ आदि पर विवशता के कारण वह जीभ को बाहर नहीं निकाल सकता, भाषण उसका अस्पष्ट हो जाता, चर्वण और निगरण में उसे कुछ कठिनता (Dysphagia) होने लगती है। रक्तभार भी बढ़ा हुआ हो सकता है।

धमनी रोग जनित मानस रोगी इसी अवस्था में कई वर्षों तक जीवित रह सकता है। परन्तु अन्त में मूर्छा तथा पक्षाघात (Cerebral Thrombosis) के उपद्रव होने का भय रहता है।

चिकित्सा :-

धमनी रोग जनित मानस रोग में आहार की मात्रा कम कर देनी चाहिये तथा रोगी को सर्व प्रकार के मानसिक आवेशों से बचाना चाहिये इस प्रयोजन से मन:शामक औषधियों जैसे - Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax) १०-२५ मिलि० दिन में तीन बार या Chlorpromazine(Largactil २५-५० मिलि० दिन में तीन बार या Reserpine •२५ मिलि० दिन में २-३ बार या Meprabomate (Equanil) ४०० मिलि० दिन में तीन बार या (Halabak,Seconesin,Amytal) आदि स्वल्प मात्रा में देने से लाभ दायक हो सकती हैं। रोगी अति विक्षुब्ध हो तो इन औषधियों को बड़ी मात्रा में दें। सिरा प्रसारक (Vosodilator) औषधियां जैसे Priscoline. २५ मिलिग्राम मात्रा में अथवा Nicotinamide ५० मिलि०मात्रा में दिन में २-३ बार दी जा सकती हैं।

मन: शामक औषधियां :- (Ataroxic Drugs):-

औच्छिक नाड़ी मण्डल की शामक अथवा मस्तिष्क के खोल (Cortex) के नीचे के Hypothalamus सम्बन्धी प्रदेश पर शामक प्रभाव करने वाली औषधियां :- (Autonomic Suppressant):-

Phenothiazine के यौग :-

गुण :- चेष्टा प्रधान मानस रोग, चित्त विक्षेप या उन्माद, मांस स्तम्भ, वमन, हिक्का, श्वास, प्रलाप, शिरोभ्रम (Adrenolytic Paroxympatholytic)

दोष :- मुख शोष, मलबन्ध, तन्द्रा, खड़े होने पर रक्तभार का गिर जाना,

हृत्कम्प, धमनी रोग (A.Sclerosis) में अपथ्य।

(१)	Chlorpromazine Hydrochloride (Largactil M.& B. Thorazine) ...	मात्रा १०-२५ मिलि० दिन में २-४ बार।
(२)	Prochlorperazine (Stemetil- M.& B. Compazine Dimaleate) ...	मात्रा ५ मिलि० दिन में ३-४ बार भोजन से पहले।
(३)	Promazine Hydrochloride (Sparine.Wyeth) ...	मात्रा २५-५० मिलि० २-४ बार।
(४)	Mepazine Hydrochloride (Pecazine;Pacatal Warner) ...	मात्रा २५-५० मिलि० २-४ बार।
(५)	Triflupromazine (Siquil,Vespral,Squibb) ...	मात्रा १०-२५ मिलि० ३ बार।
(६)	Trifluperazine (Stelazine,Smith Kline & French Eskazine) ...	मात्रा २-१० मिलि० ३ बार।
(७)	Perphenazine (Trilafon,Fentazin,Allen Hanbury)...	मात्रा ५-१५ मिलि० ३ बार।
(८)	Thiopropazate Dihydrochloride (Dartalan Searle) ...	मात्रा ५-१० मिलि० ३ बार।
(९)	Acepromazine Maleate या Acetyl promazine (Notensil.Benger) ...	मात्रा १०-२५ मिलि० ३ बार।
(१०)	Thioridazine Hydrochloride (Melleril,Sandoz) ...	मात्रा १०-२५ मिलि० १,२ या ३ बार।

सर्पगन्धा के योग :- Rauwolfia Alkaloids:-

गुण :- चेष्टा प्रधान मानस रोग, भ्रम प्रधान मानस रोग, चिन्ता, तनाव शामक, रक्त भार शामक।

दोष :- विषाद रोग तथा आमाशय व्रण में अपथ्य।

(११)	Reserpine (Serpasil Ciba) ...	मात्रा .२५-१. मिलि० दैनिक मात्रा मुख से या त्वचासे।
(१२)	Syrosingopine (Alkaloids) (Singoserp.Ciba) ...	मात्रा .५-३. मिलि० दैनिक।
(१३)	Rescinnamine (Moderil) ...	मात्रा .२५-.५ मिलि० दिन में २ बार।

Diphenylmethane के योग या Benzhydrol के योग :-

गुण :- मनो भ्रम तथा प्रतीति भ्रम प्रधान मानस रोग (Delusions + Hallucinations) ,प्रलाप (Deliria) , मृदु चित्त विक्षेप (Schizophrenia Mildtype).

दोष :- तीव्र मानस रोगों में अनुपयोगी ।

(१४) Azacyclonol Hydrochloride (Frenquel.Riker) ... मात्रा २० मिलि० ३ बार ।

यहां लायें

गुण :- चिन्ता, तनाव, चेष्टा प्रधान मानस रोग, हृत्कम्प, स्वेद ।

दोष :- तन्द्रा दोष कर सकता है ।

(१५) Hydroxyzine Hydrochloride (Atarax.Pfizer) ... मात्रा १०-२० मिलि० दिन में ३ बार ।

यहां लायें

गुण :- चिन्ता रोग, तनाव, हृत्कम्प, स्वेद ।

दोष :- तीव्र मानस रोग, हिस्टीरिया, बुद्धिमन्दता ।

(१६) Benactyzine Hydrochloride (Suavitil Glaxo, Nutinal) ... मात्रा १ मिलि० ३ बार ।

यहां लायें

विषाद शामक (Anti Depressive) औषधियां :-

Monoamineoxidase Inhibitor औषधियां :-

गुण :- विषाद प्रधान मानस रोग ।-

दोष :- शिरोभ्रम, मलबन्ध, मूत्रावरोध, चेष्टाप्रधान मानस रोग में वर्जित।

(१) Iproniazid (Marsilid.Roche) ... मात्रा ५० मिलि० २ या ३ बार तीन सप्ताह बाद मात्रा कम कर दें । चालू मात्रा २५ मिलि० दैनिक ।

(२) Pheniprazine (Cavodil Benger) ... मात्रा ३-८ मिलि० ३ बार ।

(३) Phenelzine (Phenylethylhydrazine. Nardil.Warner) ... मात्रा १०-२० मिलि० ३ बार, चालू मात्रा १५ मिलि० एक बार ।

(४) (Hydrazid Compounds):- Isocarboxazid (Marplan.Roche) ... मात्रा १०-२० मिलि० २-३ बार ।

(५) Nialamide (Niamid.Pfizer) ... मात्रा २५ मिलि० ३,४ बार ।

(६) b-Pheylisopropylhydrazine (Catron.Lakeside.Cavodil. Benger) ... मात्रा १२ मिलि० प्रात: १ बार उच्चतम मात्रा २४ मिलि० ।

गुण :- विषाद शामक उत्तम औषधि ।

दोष :- शिरोभ्रम, मुख शोष, स्वेद, वेष्टा, तनाव, कम्प, उन्निद्रता ।

(७) Iminodibenzyl का योग :-

(मस्तिष्क में Serotonin वर्धक)

Imipramine
(Tofranil.Geigy) ... मात्रा २५-५० मिलि० तीन बार ।

मस्तिष्क उत्तेजक :-(Cerebral Exictant)

Amphetamine के योग :-(Monoamine Oxidase Inhibitors).

गुण :- मस्तिष्क (उसके Cortex तथा Medulla) के लिये उत्तेजक, मृदु विषाद रोगहर, रक्तभार हर, मानसिक श्रान्ति हर ।

दोष :- अति विषाद में अनुपयोगी ।

(१) Amphetamine Sulphate
(Benzedrine) ... मात्रा ५ मिलि० २-३ बार ।

(२) Dextro Amphetamine Sulphate
(Dexedrine)
(Smith.Kline and French) ... मात्रा २.५-५ मिलि० दिन में २ बार ।

(३) Methylamphetamine या Methamphetamine Hydrochloride.
(Desoxyn, Methedrine) (B.W.Co.) ... मात्रा २.५-१० मिलि० दिन में २ बार ।

(४) Drinamyl (Dexamphetomine Sulphate ५, Amylobarbitone ३२ मिलि० Smith Kline French), मात्रा दिन में २ गोली ।

(५) Methylphenidate
(Ritalin Ciba) ... मात्रा १० मिलि० दिन में दो बार ।

(६) Pippadol Hydrochloride
(Meratran, Riker) ... मात्रा १-२ मिलि० दो बार ।

ऊर्ध्व मस्तिष्क शामक (Central Relaxant) औषधियां:

गुण :- चिन्ता, तनाव, उन्निद्रता, स्तम्भ, आमवात, विद्रोही विचार सम्बन्धी मानस रोग ।

दोष :- तन्द्रालुता, अस्थिरता ।

(१) Meprobomate.
(Miltown.Lederle.Equanil;
Wyeth.Mepavlon) ... मात्रा २००-४०० मिलि० २-३ बार ।

(२) Mephenesin:-(Myanesin B.D.H.Tolseram, Seconesin Squibb) जिसमें यह ४०० Quinal Barbitone ३० मिलि० है। Halabak जिसमें यह २००, दूसरी दवा १५ मिलि० है) । मात्रा $\frac{1}{2}$, १ ग्राम २-३ बार ।

(३) Methylpentinol.(Oblivon.B.Schering.
Somnesin. $\frac{1}{4}$ ग्राम केप्सूल B.D.H) मात्रा $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{2}$ ग्राम २-३ बार।

Barbiturate औषधियां :-

(४) Amylobarbitone (Amytal Lilly) ... मात्रा $\frac{1}{2}$,$\frac{3}{4}$ ग्रेन २-३ बार।

(५) Sodium Barbitone (Medinal) ... मात्रा २ ग्रेन २-३ बार।

(६) Phenobarbitone (Gardenal M.B.Luminal,Bayer) ... मात्रा $\frac{1}{2}$,१ ग्रेन २-३ बार।

(७) Quinal Barbitone Seconal Sodium (Lilly) ... मात्रा $\frac{3}{4}$ ग्रेन २-३ बार।

(८) Cyclobarbitone (Phanodorm.Bayer) ... मात्रा १$\frac{1}{2}$ ग्रेन २-३ बार।

(९) Butobarbitone Sodium (Soneryl M.B.) ... मात्रा $\frac{1}{8}$।$\frac{3}{4}$ ग्रेन २-३ बार।

(१०) Carbromal. ... मात्रा ५ ग्रेन २ बार।

(११) Glutethimide (Doriden Ciba) ... मात्रा .२५ ग्राम भोजन बाद दो बार।

निद्राजनक (Hypnotic) औषधियां :-

गुण :- उन्निद्रता।

(१) Amylobarbitone या Amylobarbitone Sodium (Amytal या Sodium Amytal Lilly Dorminal.Boots) ... मात्रा १$\frac{1}{2}$,६ ग्रेन रात भोजन से पहले।

(२) Pentobarbitone. (Nembutal.Abbot) ... मात्रा १$\frac{1}{2}$,३ ग्रेन रात भोजन से पहले।

गुण :- ६-८ घन्टे की नींद।

(३) Butobarbitone Sodium (Soneryl M.B.) ... मात्रा $\frac{3}{4}$,३ ग्रेन रात भोजन से पहले।

(४) Carbromal Carbrital - P.D. में (इसका तथा Pento Barbital Sodium का मिश्रण)। मात्रा ५-१५ ग्रेन रात को एक बार भोजन से पहले।

गुण :- ५-६ घन्टे की निद्रा, बाद में सुस्ती नहीं रहती।

(५) Quinal Barbitone Sodium (Seconal Sodium) ... मात्रा $\frac{3}{4}$,३ ग्रेन रात एक बार भोजन से पहले।

(६) Ethchloryynal (Placidyl) केप्सूल। मात्रा ५०० मिलि० एक बार भोजन से पहले।

गुण :- $\frac{1}{2}$ घन्टे में निद्राजनक ५-७ घन्टे निद्रा देता है।

(७) Glutethimide. (Doriden Ciba) ... मात्रा .५ ग्राम १ बार भोजन से पहले।

गुण :- ८ घन्टे देता है, बाद में कुछ सुस्ती रहती है।

(८) Cyclohep Ethyl Malonyl Urea (Medominy). ... मात्रा ३ ग्रेन एक बार भोजन से पहले।

(९) Sonergen)(Butobarbitone ७५ मिलि० + Prometha १५° मिलि०) । ... मात्रा १ गोली भोजन से पहले।

===========